॥ श्रीहरिः ॥

1985

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीलिङ्गमहापुराण

[सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित]

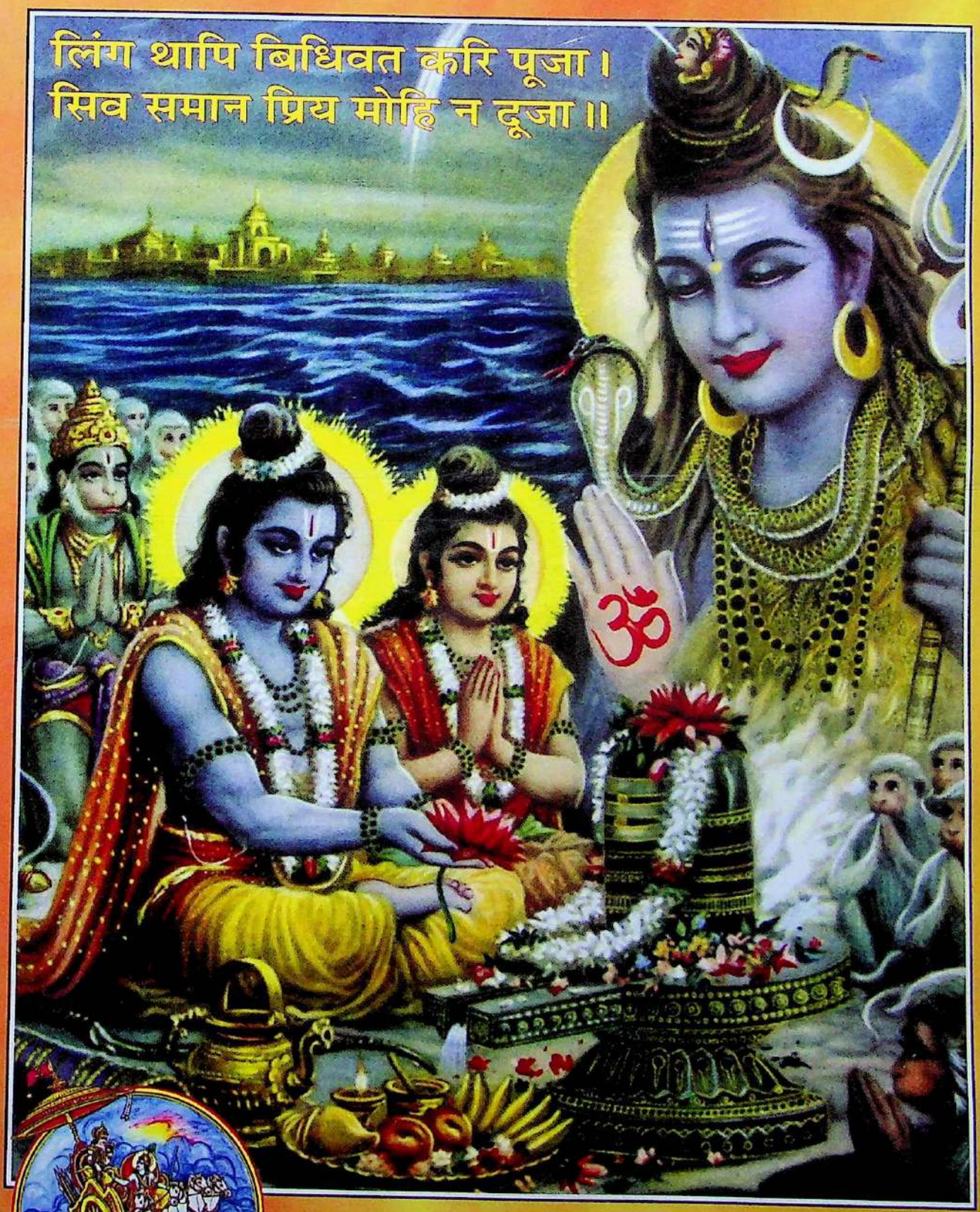

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस गोरखपुर

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

॥ श्रीहरिः ॥

1985

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीलिङ्गमहापुराण

[सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

1985 Lingamahapuran_Section_1_1_Front

सं० २०७१ द्वितीय पुनर्मुद्रण ५,०००
कुल मुद्रण १०,०००

❖ मूल्य—₹ २००
(दो सौ रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : **booksales@gitapress.org** website : **www.gitapress.org**

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi 285 Lingamahapuran_Section_1_1_Back

सम्पादकीय निवेदन

पुराण भारतीय सनातन संस्कृतिकी अमूल्य निधि हैं। ये अनन्त ज्ञानराशिके भण्डार हैं। पुराणोंमें वेदोंके अर्थोंका उपबृंहण—विस्तार हुआ है, अतः इनकी वेदवत् प्रतिष्ठा है, वेदवत् प्रामाण्य है। पुराणोंको पंचम वेद कहा गया है—'इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते' (श्रीमद्भागवत १।४।२०)। पुराणोंकी महिमामें कहा गया है कि जो बातें वेदोंमें प्राप्त नहीं होतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं। इसीलिये पुराणोंके श्रवण एवं पठनका विशेष माहात्म्य है। पुराणोंके श्रवणसे सारे पापोंका क्षय होता है, धर्मकी अभिवृद्धि होती है और मनुष्य ज्ञानी हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

वेद प्रभुसम्मित वचन हैं, किंतु पुराण सुहृत्सम्मित हैं, पुराण आज्ञा नहीं देते, अपितु सच्चे मित्रकी भाँति कल्याणकारी बातोंका सत्परामर्श प्रदान करते हैं। पुराणोंका यह अपूर्व वैशिष्ट्य है कि इसमें वेदोंके गूढ़तम अर्थोंको आख्यान-शैलीमें कथानकके माध्यमसे प्रस्तुत किया गया है। अतः रोचक होनेसे ये अधिक सुगम एवं सहज ग्राह्य हैं, यथा—वेदोंमें 'सत्यं वद'—सत्य बोलोका उपदेश है। पुराणमें इसी उपदेशको महाराज हरिश्चन्द्रके आख्यानके माध्यमसे समझाया गया है, इसी कारण पुराणोंको विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है। पुराणोंमें न केवल मानवमात्रके कल्याणकी बातें आयी हैं, अपितु जीवमात्रके कल्याणकी बातें हैं। वास्तवमें पुराण सच्चे अर्थोंमें पारमार्थिक कल्याणके सर्वोत्कृष्ट साधन हैं।

पुराण संख्यामें अठारह हैं, जो श्रीमद्भागवत, श्रीदेवीभागवत, विष्णुपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इन्हीं अठारह महापुराणोंमें श्रीलिङ्गमहापुराणका भी परिगणन है। अन्य महापुराणोंके समान ही सर्गादि पंचलक्षणोंका निरूपण, भक्ति, ज्ञान, सदाचारकी महिमा तथा जीवका श्रेयः-सम्पादन और उसे भगवन्मार्गमें प्रतिष्ठित करा देना लिङ्गमहापुराणका तात्पर्य-विषयीभूत अर्थ है। श्रीहरिके पुराणमय विग्रहमें लिङ्गपुराणको भगवान्‌का गुल्फदेश माना गया है—'लैङ्गं तु गुल्फकम्।' (पद्मपुराण)

इस पुराणका यह नाम इसलिये दिया गया है कि इसमें परमात्मा परमशिवको लिङ्गी—निर्गुण-निराकार अर्थात् अलिङ्ग कहा गया है। यह परमात्मा अव्यक्त प्रकृतिका मूल है, लिङ्गका अर्थ है अव्यक्त अर्थात् प्रकृति—'अलिङ्गं लिङ्गमूलं तु अव्यक्तं लिङ्गमुच्यते।' (लिङ्गपुराण पू० १।३।१) 'लिङ्ग' शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—सबको अपनेमें लीन रखनेवाला या विश्वके सभी प्राणि-पदार्थोंका उद्भावक, परिचायक चिह्न अथवा सम्पूर्ण विश्वमय परमात्मा—'लयन्नाल्लिङ्गमुच्यते।' (लिङ्गपुराण पू० १।१९।१६) प्रकृति-पुरुषात्मक समग्र विश्वरूपी वेदी या वेर तो महादेवी पार्वती हैं और लिङ्ग साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप है—'लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।' लिङ्गसे लिङ्गीका ख्यापन ही लिङ्गमहापुराणका विषय है। इसी विषय-वस्तुका प्रतिपादन लिङ्गपुराणमें विस्तारसे विविधरूपोंमें हुआ है।

लिङ्गपुराण दो भागोंमें विभक्त है—पूर्वभागमें एक सौ आठ अध्याय हैं और उत्तरभागमें पचपन अध्याय हैं। इसके पूर्वभागमें माहेश्वरयोगका प्रतिपादन, सदाशिवके ध्यानका स्वरूप, योगसाधना, भगवान् शिवकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन, भक्तियोगका माहात्म्य, भगवान् शिवके सद्योजात, वामदेव आदि अवतारोंकी कथा, ज्योतिर्लिङ्गके प्रादुर्भावका आख्यान, अट्ठाईस व्यासों तथा अट्ठाईस शिवावतारोंकी कथा, लिङ्गार्चन-विधि तथा लिङ्गाभिषेककी महिमा, भस्म एवं रुद्राक्ष-

धारणकी महिमा, शिलादपुत्र नन्दीश्वरके आविर्भावका आख्यान, भुवनसन्निवेश, ज्योतिश्चक्रका स्वरूप, सूर्य-चन्द्रवंश-वर्णन, शिवभक्ततण्डीप्रोक्त शिवसहस्रनामस्तोत्र, शिवके निर्गुण एवं सगुण स्वरूपका निरूपण, शिवपूजाकी महिमा, पाशुपतव्रतका उपदेश, सदाचार, शौचाचार, द्रव्यशुद्धि एवं अशौच-निरूपण, अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका माहात्म्य, दक्षपुत्री सती एवं हिमाद्रिजा पार्वतीका आख्यान, भगवान् शिव एवं पार्वतीके विवाहकी मांगलिक कथा तथा शिवभक्त उपमन्युकी शिवनिष्ठा आदि विषयोंका वर्णन है।

उत्तरभागमें भगवद्गुणगानकी महिमा, विष्णुभक्तोंके लक्षण, लक्ष्मी एवं अलक्ष्मी (दरिद्रा)-के प्रादुर्भावका रोचक वृत्तान्त, दरिद्राके निवासयोग्य स्थान, द्वादशाक्षर मन्त्रकी महिमा, पशुपाशविमोचन, भगवान् शिव एवं पार्वतीकी विभूतियोंका निदर्शन, शिवकी अष्टमूर्तियोंकी कथा, शिवाराधना, शिवदीक्षा-विधान, तुलापुरुष आदि षोडश महादानोंकी विधि, जीवच्छ्राद्धका माहात्म्य तथा मृत्युंजय-मन्त्र-विधान आदि विषय विवेचित हैं। अन्तमें लिङ्गमहापुराणके श्रवण-मनन एवं पाठकी फलश्रुति निरूपित है। स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी इस पुराणकी महिमा बताते हुए कहते हैं—

'जो मनुष्य इस सम्पूर्ण लिङ्गपुराणको आदिसे अन्ततक पढ़ता है अथवा सुनता है अथवा द्विजोंको सुनाता है, वह परमगति प्राप्त करता है। उस महात्माकी श्रद्धा मुझ (ब्रह्मा)-में, नारायणमें तथा भगवान् शिवमें हो जाती है।' 'लैङ्गमाद्यन्तमखिलं यः पठेच्छृणुयादपि॥ द्विजेभ्यः श्रावयेद्वापि स याति परमां गतिम्। ××× मयि नारायणे देवे श्रद्धा चास्तु महात्मनः॥' (लिङ्गपुराण, उत्तर०, अ० ५५)

इस प्रकार सम्पूर्ण लिङ्गपुराण विशेष रूपसे शिवोपासनामें पर्यवसित है। इसमें भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णुका अभेदत्व प्रतिपादित हुआ है। इसमें आयी स्तुतियाँ अत्यन्त गेय तथा कण्ठ करने योग्य हैं। इसके आख्यान बड़े ही रोचक और भगवद्भक्तिको स्थिर करनेवाले हैं। इस पुराणमें सदाचारधर्मकी बड़ी प्रतिष्ठा वर्णित है और नित्यकर्मोंके सम्पादनकी बड़ी महिमा आयी है। इसमें आये सुभाषित बड़े ही ग्राह्य और कल्याणकारक हैं।

एक उपदेशमें बताया गया है कि सभी शास्त्रोंके बार-बार आलोडन तथा पुनः पुनः विचार करनेके बाद यही निश्चित होता है कि सदा नारायणका ध्यान करना चाहिये—'आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः॥ इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।' (उत्तरभाग ७। १०-११) इस प्रकार लिङ्गपुराण बहुत ही उपयोगी है तथा इसके उपदेश अत्यन्त उपकारक हैं।

पं० लक्ष्मीधरविरचित 'कृत्यकल्पतरु' नामक एक अत्यन्त प्रसिद्ध धर्मशास्त्रीय निबन्ध-ग्रन्थ है, उसमें लिङ्गपुराणके नामसे सोलह अध्याय प्राप्त हैं, जो वर्तमानमें उपलब्ध लिङ्गपुराणसे अतिरिक्त हैं, इन सोलह अध्यायोंमें अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका माहात्म्य तथा यहाँके शिवायतनों एवं लिङ्गोंकी महिमा प्रतिपादित है। लिङ्गपुराण-परिशिष्टके नामसे उन्हें भी मूल तथा हिन्दी अनुवादके साथ इसमें दिया जा रहा है।

सम्पूर्ण श्रीलिङ्गमहापुराणका हिन्दी अनुवाद वर्ष २०१२ ई० के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था। तभीसे सुधीजनोंकी यह भावना थी कि भाषा-टीकासहित मूल लिङ्गमहापुराणका भी प्रकाशन किया जाय। इसी दृष्टिसे मूल संस्कृत तथा उसका हिन्दी अनुवादके साथ पुस्तकरूपमें इसका प्रकाशन किया जा रहा है। आशा है, प्रेमी पाठकोंको इससे प्रसन्नता होगी और वे लाभान्वित होंगे।

—राधेश्याम खेमका

श्रीहरिः

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

पूर्वभाग

१- देवर्षि नारदजीका नैमिषारण्य-आगमन, श्रीसूत-शौनक-संवादमें लिङ्गमहापुराणका उपक्रम ११

२- लिङ्गपुराणका परिचय तथा इसमें प्रतिपादित विषयोंका वर्णन १३

३- अलिङ्ग एवं लिङ्गतत्त्वका स्वरूप, शिवतत्त्वकी व्यापकता, महदादि तत्त्वोंका विवेचन, जगत्की उत्पत्तिका क्रम तथा महेश्वर शिवकी महिमा १८

४- ब्रह्माजीकी आयुका परिमाण, कालका स्वरूप, कल्प, मन्वन्तर एवं युगादिका मान तथा ब्रह्माजीद्वारा विभिन्न लोकोंकी संरचना २२

५- ब्रह्माजीद्वारा पंचपर्वा अविद्याकी सृष्टि, नौ प्रकारकी सृष्टि (नवविध सर्ग)-की संरचना, मरीचि आदि ऋषियोंकी उत्पत्ति, मनु-शतरूपाका प्रादुर्भाव तथा दक्षप्रजापतिकी कन्याओंका वंशवर्णन २७

६- अग्नि तथा पितरोंके वंशका वर्णन, ब्रह्माजीसे रुद्रोंका प्रादुर्भाव, परमेष्ठी सदाशिवकी महिमा ३२

७- माहेश्वरयोगका प्रतिपादन, अट्ठाईस व्यासों तथा चौदह मनुओंकी नामावली, विभिन्न युगोंमें हुए माहेश्वरयोगावतारोंका वर्णन ३५

८- शरीरमें स्थित योगस्थानों (चक्रों)-का वर्णन, योगका स्वरूप, अष्टांगयोगका वर्णन, विषयभोगोंकी निस्सारता, प्राणायामकी महिमा, सदाशिवके ध्यानका स्वरूप ३९

९- योगसाधनाके अन्तराय (विघ्न), योगसे प्राप्त होनेवाली विघ्नरूप विभिन्न सिद्धियाँ तथा ऐश्वर्य, गुणवैतृष्ण्य तथा वैराग्यसे पाशुपतयोगकी प्राप्ति ४९

१०- योगसिद्धिप्राप्त पुरुषोंके लक्षण, साधुधर्मका स्वरूप, भगवान् शिवके साक्षात्कारके उपायोंका वर्णन तथा भक्तिभावमें श्रद्धाकी महत्ता ५५

११- श्वेतलोहितकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् सद्योजातका प्रादुर्भाव तथा उनकी महिमा ६१

१२- रक्तकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् वामदेवका प्रादुर्भाव तथा उनकी महिमा ६२

१३- पीतवासाकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् तत्पुरुषका प्रादुर्भाव तथा उनका माहात्म्य ६३

१४- असितकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् अघोरका प्राकट्य और उनका माहात्म्य ६५

१५- अघोरेशमाहात्म्य तथा अघोरमन्त्रके जपसे विविध पातकोंका विनाश ६६

१६- विश्वरूप नामक कल्पमें शिवस्वरूप भगवान् ईशानका प्रादुर्भाव, ब्रह्माजीद्वारा ईशानकी स्तुति ६९

१७- ब्रह्मा तथा विष्णुके समक्ष ज्योतिर्मय महालिङ्गका प्राकट्य, ब्रह्मा और विष्णुद्वारा हंस एवं वाराहरूप धारणकर लिङ्गके मूलस्थानका अन्वेषण, लिङ्गमध्यसे शब्दमय उमामहेश्वरका प्रादुर्भाव और ईशानादि पाँच शिवरूपोंकी उत्पत्ति ७३

१८- विष्णुद्वारा की गयी भगवान् महेश्वरकी स्तुति तथा उसका माहात्म्य ८१

१९- महादेवजीद्वारा ब्रह्मा एवं विष्णुको वर प्रदान करना तथा उमामहेश्वर-पूजनके रूपमें लिङ्गपूजनकी परम्पराका प्रारम्भ ८४

२०- शेषशय्यापर आसीन भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव, भगवान् शिवकी मायासे दोनोंका विमोहित होना, विष्णुद्वारा ब्रह्माके प्रति शिव-माहात्म्यका कथन ८६

२१- ब्रह्मा तथा विष्णुद्वारा की गयी भगवान् महेश्वरकी स्तुति एवं उसका माहात्म्य ९४

२२- महादेवजीद्वारा विष्णु और ब्रह्माको वरदान, सृष्टिके लिये ब्रह्माजीद्वारा तप करना तथा सर्पों एवं रुद्रोंकी सृष्टि १०२

२३- विभिन्न कल्पोंमें होनेवाले सद्योजातादि शिवावतारोंका वर्णन, विभिन्न लोकोंकी स्थिति तथा महारुद्रका विश्वरूपत्व १०५

२४- श्वेतवाराहकल्पके अट्ठाईस द्वापरोंके अन्तमें प्रकट होनेवाले अट्ठाईस व्यासों, अट्ठाईस शिवावतारों तथा विविध शिवयोगियोंका वर्णन १०९

२५- लिङ्गार्चनविधिके अन्तर्गत शरीर एवं मनकी शुद्धिके लिये अन्तः एवं बाह्य स्नानकी प्रक्रिया और विविध मन्त्रोंसे आत्माभिषेचन ११९

२६- भगवती गायत्रीका आवाहन तथा जप, सूर्यकी प्रार्थना, सूर्यसूक्तोंका पाठ, देव-ऋषि-पितृतर्पण, पंचमहा-यज्ञोंका अनुष्ठान, भस्मस्नान एवं मन्त्रस्नान १२२

२७- लिङ्गार्चनविधिके अन्तर्गत महेश्वरस्वरूप होकर विविध उपचारोंद्वारा लिङ्गपूजाका विधान, लिङ्गा-भिषेककी महिमा तथा अभिषेकके मन्त्र १२६

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२८-	भगवान् महेश्वरके आभ्यन्तरपूजनका स्वरूप, सकल एवं निष्कल तत्त्वकी व्याख्या, छब्बीस तत्त्वोंका परिगणन एवं सम्पूर्ण चराचर जगत्की शिवरूपता	१३१
२९-	देवदारुवनका वृत्तान्त, अतिथिमाहात्म्यमें सुदर्शन-मुनिका आख्यान तथा संन्यासधर्मका वर्णन	१३४
३०-	शिवाराधनाके माहात्म्यमें श्वेतमुनिका आख्यान	१४१
३१-	देवदारुवननिवासी मुनिगणोंद्वारा शिवाराधना	१४५
३२-	मुनियोंद्वारा की गयी शिवस्तुति	१४९
३३-	मुनियोंको शिवभक्तिका उपदेश	१५०
३४-	भगवान् शिवद्वारा भस्म, भस्मस्नान एवं शिवयोगियोंकी महिमाका प्रतिपादन	१५२
३५-	महर्षि दधीच एवं राजा क्षुपकी कथा तथा महा-मृत्युंजयमन्त्रकी स्वरूपमीमांसा	१५५
३६-	राजा क्षुपद्वारा विष्णुकी आराधना, विष्णुद्वारा शिव-भक्तोंकी महिमाका कथन	१५८
३७-	नन्दीके जन्मका वृत्तान्त, ब्रह्मा तथा विष्णुका परस्पर संवाद और शिवद्वारा दोनोंपर अनुग्रह करना	१६५
३८-	विष्णुद्वारा महेश्वरके माहात्म्यका कथन तथा नारायण-द्वारा सृष्टिका वर्णन	१६८
३९-	सत्ययुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुगका वर्णन, द्वापरमें वेदसंहिताके विभाजनका एवं कल्पभेदसे विविध पुराणोंके अनुक्रमका वर्णन	१७०
४०-	कलियुगके धर्मोंका वर्णन, कलियुगमें धर्म आदिका ह्रास तथा स्वल्प भी धर्माचरणका महत्फल एवं कलियुगके अन्तमें पुनः सत्ययुगकी प्रवृत्ति	१७६
४१-	विभिन्न कल्पोंमें त्रिदेवोंका परस्पर प्राकट्य तथा ब्रह्माद्वारा महेश्वरकी नामाष्टकस्तुतिका वर्णन	१८५
४२-	शिलादद्वारा तप करनेसे भगवान् महेश्वरका नन्दी नामसे उनके पुत्रके रूपमें प्रकट होना और शिलादद्वारा नन्दिकेश्वर शिवकी स्तुति	१९०
४३-	शिलादद्वारा पुत्र नन्दिकेश्वरको वेदादिकी शिक्षा प्रदान करना, ऋषियोंद्वारा नन्दिकेश्वरकी आयु अल्प बतानेपर शिलादका दुःखी होना तथा नन्दिकेश्वरद्वारा त्र्यम्बकमन्त्रका जप एवं महेश्वर-पार्वतीद्वारा उन्हें अपने पुत्ररूपमें अमर होनेका वरदान देना	१९३
४४-	भगवान् शिवद्वारा नन्दिकेश्वरको गणोंके अधिपतिके रूपमें प्रतिष्ठित करना एवं सभी देवोंके द्वारा नन्दि-केश्वरका अभिषेक तथा शिवनाममन्त्रकी महिमा	१९७
४५-	भगवान् रुद्रके विराट् स्वरूप तथा सात पाताललोकोंका वर्णन	२०१
४६-	भुवनसन्निवेशमें सात द्वीपों तथा सात समुद्रोंका वर्णन एवं सर्वत्र भगवान् शिवकी व्यापकता, स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्रियव्रतादि राजवंशोंका वर्णन, जम्बूद्वीप, कुशद्वीप तथा क्रौंचद्वीपके राजाओंका वर्णन	२०३
४७-	जम्बूद्वीपके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र महाराज आग्नीध्रका वंशवर्णन तथा आग्नीध्रके शिवभक्त नौ पुत्रोंका अजनाभवर्ष (भारतवर्ष), किम्पुरुषवर्ष आदि नौ वर्षों (देशों)-का स्वामी बनना	२०६
४८-	भूमध्यमें स्थित मेरु (सुमेरु) पर्वत और इन्द्र आदि लोकपालोंकी पुरियोंका वर्णन	२०८
४९-	जम्बूद्वीपका विस्तृत वर्णन, वहाँके कुलपर्वतों, नदियों, वनों तथा वहाँ रहनेवाले लोगोंका वर्णन	२११
५०-	भुवनविन्यासमें विभिन्न कुलाचल पर्वतोंपर रहनेवाली देवयोनियों आदिका वर्णन	२१६
५१-	दिव्य भूतवनमें महादेवके निवासस्थानका वर्णन, कैलास तथा वहाँकी पवित्र नदियोंका वर्णन	२१८
५२-	विभिन्न द्वीपोंकी नदियोंका वर्णन, केतुमाल, कुरुवर्ष, भारतवर्ष, किम्पुरुष आदि वर्षोंमें रहनेवाले लोगों तथा उनकी लोकवृत्तिका वर्णन	२२०
५३-	भुवनकोशवर्णनमें प्लक्ष, शाल्मलि, क्रौंचद्वीपोंके महापर्वतों, ऊर्ध्वलोकों तथा नरकोंका वर्णन, सर्वत्र सदाशिवकी व्यापकता एवं यक्षरूप शिव और भगवती उमाका माहात्म्य	२२४
५४-	ज्योतिःसन्निवेशवर्णनमें लोकपालोंकी पुरियोंका वर्णन, सूर्यकी स्थिति तथा उसकी गतिसे होनेवाले अयन एवं ऋतुओंकी स्थिति, ध्रुवस्थान तथा मेघोंका स्वरूप और वृष्टिका प्रादुर्भाव	२२९
५५-	शिवस्वरूप भगवान् सूर्यके रथ तथा चैत्रादि बारह मासोंमें रथके साथ भ्रमण करनेवाले देवता, मुनि, नाग, गन्धर्व आदिका वर्णन	२३४
५६-	सोम (चन्द्रमा)-की स्थिति एवं गतिका निरूपण, चन्द्रकलाओंके ह्रास तथा वृद्धिका वर्णन	२४०
५७-	बुध आदि ग्रहोंके रथोंका स्वरूप, ग्रह-नक्षत्रों एवं तारागणोंद्वारा ध्रुवका परिभ्रमण, ग्रहोंका स्वरूप-विस्तार तथा उनकी गतिका निरूपण	२४१
५८-	ब्रह्माद्वारा शिवके आदेशसे ग्रहों, नक्षत्रों, जलों आदिके अधिपतिके रूपमें सूर्य, चन्द्रमा, वरुण आदिकी प्रतिष्ठाका निरूपण	२४४
५९-	पार्थिव, शुचि तथा वैद्युत नामसे अग्निके तीन रूपोंका वर्णन, बारह मासके बारह सूर्योंका नामनिर्देश एवं सूर्यरश्मियोंका वर्णन	२४६

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
६०-	मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि आदि ग्रहों एवं सूर्यके माहात्म्यका वर्णन	२४९
६१-	ज्योति:सन्निवेशमें ग्रहोंके स्वरूप तथा नक्षत्रों और ग्रहोंकी पारस्परिक स्थितिका वर्णन	२५१
६२-	उत्तानपादके पुत्र ध्रुवका आख्यान, ध्रुवकी तपस्या तथा ध्रुवलोकसंस्थानका वर्णन	२५६
६३-	दक्षप्रजापतिद्वारा मैथुनी सृष्टिका प्रादुर्भाव, दक्षकन्याओंकी वंश-परम्परा तथा ऋषिवंश-वर्णन	२५९
६४-	वसिष्ठपुत्र शक्तिका आख्यान तथा महर्षि पराशरकी कथा	२६६
६५-	सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशका वर्णन एवं शिवभक्त तण्डीप्रोक्त रुद्रसहस्रनाम	२७५
६६-	इक्ष्वाकुवंशी राजाओंकी कथा तथा ययातिवंश-वर्णन	२८६
६७-	राजर्षि ययातिका आख्यान तथा ययातिगाथा	२९२
६८-	ययातिपुत्र यदुके वंशका वर्णन	२९४
६९-	चन्द्रवंश-वर्णनमें भगवान् श्रीकृष्णके अवतारकी कथा तथा संक्षेपमें कृष्णचरितका वर्णन	२९८
७०-	महेश्वरसे होनेवाली आदिसृष्टिका स्वरूप, नवविध-सर्गवर्णन एवं प्राजापत्यसर्गनिरूपण तथा भगवती सतीकी देहसे अनेक देवियोंका प्रादुर्भाव	३०५
७१-	तारकासुरके पुत्रों—विद्युन्माली, तारकाक्ष तथा कमलाक्षका वृत्तान्त एवं तपस्याद्वारा इन्हें कामचारी तीन पुरोंकी प्राप्ति, त्रिपुरासुरके विनाशके लिये देवताओंका उद्योग तथा भगवान् शंकरका उनपर अनुग्रह	३३२
७२-	त्रिपुरासुरके वधके लिये विश्वकर्माद्वारा एक दिव्य रथका निर्माण तथा भगवान् महेश्वरका उस रथपर आरूढ़ हो त्रिपुरासुरको दग्ध करना एवं ब्रह्माद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति	३४५
७३-	लिङ्गार्चनकी विधि तथा उसकी महिमा	३६१
७४-	ब्रह्माकी आज्ञासे विश्वकर्माद्वारा विभिन्न लिङ्गोंका निर्माण करके देवताओंको प्रदान करना एवं देवताओंद्वारा उन-उन लिङ्गोंका पूजन, लिङ्गोंके विविध भेद तथा उनकी स्थापनाका माहात्म्य	३६३
७५-	शिवके निर्गुण एवं सगुणस्वरूपका निरूपण	३६६
७६-	विविध शिवस्वरूपोंकी प्रतिष्ठा एवं उपासनाका फल	३६९
७७-	शिवमन्दिरोंके निर्माणका फल, शिवक्षेत्रों तथा शिव-तीर्थोंके सेवनकी महिमा, शिवमन्दिरके उपलेपन आदिका माहात्म्य	३७४
७८-	शिवाचारके परिपालनमें अहिंसाधर्मकी महिमा एवं शिवभक्तिका माहात्म्य	३८२
७९-	शिवपूजासे सभीका कल्याण, शिवपूजाकी विधि एवं शिवमन्दिरमें दीपदानकी महिमा	३८५
८०-	देवताओंका कैलासपुरी आकर वहाँ विराजमान उमासहित भगवान् शिवके दर्शन करना तथा भगवान् शिवद्वारा देवताओंको पाशुपतव्रतका उपदेश प्रदान करना	३८७
८१-	विविध मासोंमें किये जानेवाले पशुपाशविमोचक लिङ्ग-व्रतका विधान तथा उसका माहात्म्य	३९२
८२-	सभी पापोंका उच्छेदक तथा शिवसायुज्य प्रदान करनेवाला व्यपोहनस्तव और उसके पाठका फल	३९७
८३-	विभिन्न मासोंमें किये जानेवाले शिवव्रतोंका विधान	४०५
८४-	उमामहेश्वरव्रतका वर्णन तथा पूजाविधान	४०९
८५-	पंचाक्षरीविद्या (पंचाक्षरमन्त्र), जपविधान तथा उसकी महिमा	४१५
८६-	पाशुपतयोगज्ञानका स्वरूप तथा उसकी महिमा	४३४
८७-	सनकादि मुनीश्वरोंको शिवज्ञानका उपदेश	४४६
८८-	पाशुपतयोगसे प्राप्त होनेवाली अष्टसिद्धियोंका वर्णन तथा प्राणाग्निहोमका स्वरूप	४४८
८९-	सदाचार तथा शौचाचारका निरूपण, द्रव्यशुद्धि, अशौचप्रवृत्ति एवं स्त्रीधर्मविवेचन	४५६
९०-	यतियोंके लिये प्रायश्चित्तनिरूपण	४६६
९१-	आसन्नमृत्युसूचक लक्षण एवं योगसाधनामें प्रणवका माहात्म्य तथा शिवोपासनानिरूपण	४६८
९२-	अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका माहात्म्य तथा श्रीविश्वेश्वर-पूजाविधिवर्णन	४७५
९३-	हिरण्याक्षपुत्र अन्धकासुरका आख्यान तथा शिवानुग्रहसे उसे गाणपत्यपदकी प्राप्ति	४९०
९४-	भगवान्‌के वाराहावतारकी कथा, हिरण्याक्षका वध तथा देवताओंद्वारा भगवान् वाराहकी स्तुति	४९२
९५-	नृसिंहावतारके सन्दर्भमें भक्त प्रह्लादकी कथा, हिरण्य-कशिपुका वध, भगवान् नृसिंहके उग्ररूपको देखकर देवताओंका भयभीत होकर भगवान् महेश्वरकी स्तुति करना, महेश्वरके शरभावतारका प्राकट्य	४९६
९६-	भगवान् महेश्वरद्वारा वीरभद्रका आवाहन और नृसिंहके तेजको शमन करनेके लिये भेजना, वीरभद्र तथा नृसिंहका संवाद, भगवान् शिवका शरभावतार धारणकर नृसिंहतेजको शान्त करना एवं नृसिंहद्वारा शिवस्तुति	५०२
९७-	जलन्धर-वधकी कथा	५१२
९८-	भगवान् विष्णुद्वारा एक सहस्र नामोंसे भगवान् शिवकी स्तुति करना तथा प्रसन्न होकर महेश्वरद्वारा उन्हें सुदर्शनचक्र प्रदान करना	५१६

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
९९-	भगवान् शिवके वामभागसे शिवाका प्रादुर्भाव तथा शिवाका दक्षपुत्री सतीके रूपमें पुनः मेनाकी कन्या पार्वतीके रूपमें प्राकट्य	५२८
१००-	वीरभद्रद्वारा दक्षयज्ञभंग तथा भगवान् महेश्वरका दक्षप्रजापतिपर अनुग्रह	५३०
१०१-	सतीका हिमवान्‌की पुत्री पार्वतीके रूपमें प्राकट्य, शिवकी प्राप्तिके लिये उनका कठोर तप, तारकासुरद्वारा देवताओंको पराजित करना, शिवद्वारा कामदेवका दहन तथा पुनः जीवित करना	५३४
१०२-	पार्वतीकी तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् शिवका ब्राह्मणवेषमें आकर उन्हें वरदान देना, हिमालयद्वारा पार्वतीस्वयंवरकी घोषणा, स्वयंवरमें भगवान् शिवका बालरूपमें उपस्थित होकर सभीको मोहित करना, पुनः ब्रह्माकी स्तुतिसे प्रसन्न हो महेश्वरका मनोहर वररूप धारणकर सबको आनन्दित करना	५३८
१०३-	भगवान् शिव एवं पार्वतीके विवाहकी मांगलिक कथा तथा विवाहके अनन्तर भगवान् शिवका काशी-आगमन और पार्वतीको मुक्तिक्षेत्र काशीकी महिमा बताना	५४४
१०४-	गजाननका प्राकट्य करानेके लिये देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति	५५०
१०५-	विघ्ननाशक श्रीगणेशजीके प्राकट्यकी कथा	५५३
१०६-	दारुकासुरके विनाशके लिये भगवान् शिवद्वारा अपने शरीरसे काली तथा अष्टभैरवोंको प्रकट करना एवं शिवताण्डवनृत्यकी कथा	५५६
१०७-	शिवभक्त उपमन्युकी कथा तथा उमामहेश्वरद्वारा उसपर अनुग्रह करना	५५८
१०८-	भगवान् श्रीकृष्णका गुरु उपमन्युके आश्रममें जाना और उनसे पाशुपतज्ञान प्राप्त करना तथा पाशुपतव्रतका माहात्म्य	५६४

उत्तरभाग

१-	भगवद्गुणगानकी महिमामें कौशिक ब्राह्मणकी कथा	५६७
२-	भगवद्गुणगानका माहात्म्य	५७४
३-	भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे श्रीनारदजीको गानबन्धु, जाम्बवती आदिसे गानविद्याकी प्राप्ति	५७४
४-	वासुदेवपरायण विष्णुभक्तोंके लक्षण तथा उनकी महिमा	५८४
५-	विष्णुभक्त राजर्षि अम्बरीषका आख्यान, विष्णुमायाद्वारा नारद एवं पर्वत मुनिका वानरमुख होना तथा इसीका रामावतारमें हेतु बनना	५८५
६-	भगवान् विष्णुसे अलक्ष्मी (ज्येष्ठा—दरिद्रा) तथा लक्ष्मीका प्रादुर्भाव एवं लक्ष्मी तथा दरिद्राके निवासयोग्य स्थानोंका वर्णन	५९९
७-	भगवान् विष्णुके अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर मन्त्रजपकी महिमामें ऐतरेय ब्राह्मणकी कथा	६०६
८-	शिवमहामन्त्रके जपसे ब्राह्मणपुत्र दुराचारी धुन्धुमूकका शिवकी कृपासे शिवगणत्वको प्राप्त करना	६०९
९-	पशु, पाश एवं पशुपतिकी व्याख्या, पाशुपतयोगका माहात्म्य तथा पशुपाशमोक्षविवरण	६१२
१०-	उमापति शिवके माहात्म्यका वर्णन तथा शिवके आदेशसे ही सृष्टि-पालन आदि सभी कार्योंका संचालन	६१७
११-	भगवान् शिव तथा देवी पार्वतीकी विभूतियोंका वर्णन एवं लिङ्गपूजनका माहात्म्य	६२०
१२-	भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंका स्वरूप तथा उनकी विश्वरूपता	६२४
१३-	भगवान् सदाशिवके शर्व, भव आदि आठ स्वरूपों तथा उनकी शक्तियों एवं पुत्रोंका वर्णन	६२७
१४-	भगवान् महेश्वरके पंचब्रह्मात्मक ईशान, तत्पुरुष आदि स्वरूपोंका वर्णन	६३०
१५-	शिवमाहात्म्यका वर्णन	६३३
१६-	विविध नाम-रूपोंमें शिवकी आराधनाकी महिमा	६३५
१७-	भगवान् शिवद्वारा देवताओंसे अपने यथार्थ स्वरूपका कथन	६३७
१८-	देवताओंद्वारा भगवान् महेश्वरकी स्तुति	६३९
१९-	देवताओं तथा मुनियोंको सूर्यमण्डलमें उमासहित नीललोहित पंचमुख सदाशिवके विराट्स्वरूपका दर्शन होना और उनकी पूजा एवं स्तुति करना	६४५
२०-	पाशुपतयोग एवं शैवी दीक्षाका वर्णन तथा शिवयोगकी महिमा	६४८
२१-	शिवदीक्षाविधि-वर्णन एवं शिवार्चनका माहात्म्य	६५३
२२-	शिवदीक्षा-प्रकरणमें सौरस्नानविधि तथा भास्करार्चाका वर्णन	६५९
२३-	हृदयदेशमें भगवान् शिवकी मानसपूजा एवं न्यासयोगका वर्णन	६६६
२४-	न्यास एवं तत्त्वशुद्धिपूर्वक विविध उपचारोंसे भगवान् सदाशिवका पूजन और शिवार्चाका माहात्म्य	६६९

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२५-	शिवहोमार्चाके लिये कुण्ड-मेखला-निर्माण, अरणि-मन्थन, पात्रासादन, आज्यसंस्कार, अग्निसंस्कार तथा हवन-विधानका वर्णन	६७५
२६-	शिवलिङ्गमें अघोरार्चनकी विधि और उसका माहात्म्य	६८५
२७-	राजाओंको विजयप्राप्ति करानेवाले विजयमण्डलके निर्माण तथा पूजनकी विधि एवं जयाभिषेकका वर्णन; स्वायम्भुव मनु और विभिन्न देवताओंके जयाभिषेकका विवरण	६८८
२८-	स्वायम्भुव मनुके प्रति सनत्कुमारप्रोक्त षोडश महादानोंमें तुलापुरुषदानकी विधिका वर्णन	७०७
२९-	षोडशमहादानान्तर्गत हिरण्यगर्भदानकी विधि	७१५
३०-	तिलपर्वतदानविधि	७१६
३१-	सूक्ष्म तिलपर्वतदानकी विधि	७१७
३२-	सुवर्णपृथ्वीमहादानविधि	७१८
३३-	कल्पपादपदानविधि	७१९
३४-	गणेशेशदानविधि	७२०
३५-	सुवर्णधेनुदानविधि	७२०
३६-	ऐश्वर्यप्रद महालक्ष्मीदानविधि	७२१
३७-	तिलधेनुदानविधिनिरूपण	७२२
३८-	महादानोंमें परिगणित गोसहस्रदानकी विधि	७२४
३९-	हिरण्याश्वदानविधि	७२५
४०-	कन्यादानविधि	७२६
४१-	हिरण्यवृषमहादानविधि	७२६
४२-	सुवर्णगजदानविधि	७२७
४३-	लोकपालाष्टकमहादानविधि	७२८
४४-	त्रिमूर्तिदानविधि	७२९
४५-	जीवितावस्थामें किये जानेवाले जीवच्छ्राद्धका विधान	७३०
४६-	लिङ्गमें सभी देवताओंकी स्थितिका वर्णन और लिङ्गार्चनसे सभीके पूजनका फलनिरूपण	७३४
४७-	लिङ्गमूर्तिकी प्रतिष्ठाकी विधि	७३६
४८-	देवताओंकी प्रतिमाओंकी संक्षेपमें प्रतिष्ठा-विधि तथा विविध देवताओंके गायत्रीमन्त्र	७४०
४९-	अघोरेश्वररूप भगवान् शिवके निमित्त किये गये जप, हवन एवं पूजनका फल	७४४
५०-	विभिन्न कामनाओंके लिये अघोरमन्त्रसिद्धिका विधान	७४५
५१-	भगवान् शिवकी संहारिका शक्ति—वज्रेश्वरीविद्याके माहात्म्यमें वृत्रासुरकी उत्पत्तिकी कथा	७४९
५२-	वज्रेश्वरीविद्याकी सिद्धिका विधान	७५१
५३-	मृत्युंजयहवन-विधान	७५३
५४-	मृत्युहर त्रियम्बकमन्त्रका माहात्म्य तथा मन्त्रका व्याख्यान	७५३
५५-	योगमार्गके द्वारा भगवान् महेश्वरके ध्यानकी विधि, पाँच प्रकारके योग, शिवपाशुपतयोगकी महिमा, श्रीलिङ्गमहापुराणका परिचय तथा श्रीलिङ्गमहापुराणके श्रवण एवं पठनका माहात्म्य	७५६

श्रीलिङ्गमहापुराण-परिशिष्ट

१-	अविमुक्तक्षेत्रकी महिमा और वहाँ स्थित लिङ्गायतनोंका वर्णन	७६२
२-	मातृमण्डल और आकाशलिङ्गका वर्णन	७७०
३-	सगरेश्वर, भद्रेश्वर, शूलेश्वर, नारदेश्वर, वरणेश्वर तथा कोटीश्वर आदि लिङ्गोंका वर्णन	७७२
४-	कपालमोचन, ऋणमोचन एवं कपिलेश्वर आदि तीर्थोंका माहात्म्य	७७४
५-	कपिलेश्वरमें सिद्धि प्राप्त करनेवाले मुनियोंका वर्णन	७७८
६-	श्रीकण्ठ, ओंकारेश्वर और बृहस्पतीश्वर आदि लिङ्गोंकी महिमाका वर्णन	७७९
७-	कामेश्वर, भीष्मेश्वर, वालखिल्येश्वर, सनकेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, दधीचेश्वर तथा कालेश्वर आदि लिङ्गोंका वर्णन	७८२
८-	कृत्तिवासेश्वर तथा उसके समीपस्थ लिङ्गोंका वर्णन	७९२
९-	व्याघ्रेश्वर, दण्डीश्वर, जैगीषव्येश्वर तथा शातातपेश्वर आदि लिङ्गोंका वर्णन	८००
१०-	गभस्तीश्वर तथा उसके समीपस्थ लिङ्गोंका माहात्म्य एवं कलशेश्वरलिङ्गकी उत्पत्ति-कथा	८०४
११-	कलशेश्वरके समीपस्थ लिङ्गोंके माहात्म्यका वर्णन	८११
१२-	अविमुक्त तथा उसके समीपस्थ लिङ्गोंका माहात्म्य-वर्णन	८१६
१३-	भगवान् श्रीराम, दत्तात्रेय, हरिकेश, प्रियव्रत तथा ब्रह्माजीद्वारा स्थापित लिङ्गोंका वर्णन	८१९
१४-	हरिश्चन्द्रेश्वर, नैर्ऋतेश्वर, अम्बरीषेश्वर, शंकुकर्णेश्वर, कपर्दीश्वर, अंगारेश्वर तथा छागलेश्वर आदि लिङ्गोंकी महिमाका वर्णन	८२२
१५-	चतुर्दशायतन, अष्टायतन तथा पंचायतनयात्राका वर्णन	८२५
१६-	काशीमें लिङ्गार्चनकी महिमा	८३०

चित्र-सूची

(रेखा-चित्र)

१- देवर्षि नारदजी १२
२- ॐकारमें सशक्तिक शिव..... १३
३- ब्रह्माजीके एक भाग से मनु तथा दूसरे भागसे शतरूपाका प्राकट्य..... १४
४- प्राणायामकी विधि ४४
५- ब्रह्माजीद्वारा ईशान भगवान् शिवकी स्तुति..... ७१
६- ज्योतिर्मय लिङ्गका प्राकट्य ७६
७- देवताओंसहित भगवान् विष्णुद्वारा शिवजीकी स्तुति. ८२
८- शेषशायी विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्राकट्य..... ८८
९- भगवान् शंकरका विष्णु एवं ब्रह्माजीके सामने प्रकट होना १०३
१०- सूर्यार्घ्यदान..... १२३
११- हाथोंमें तीर्थ १२३
१२- पंचमहायज्ञ १२४
१३- भगवान् विष्णुको शाप देते महर्षि भृगु..... १३६
१४- मुनियोंका भगवान् ब्रह्मासे निवेदन १३७
१५- भगवान् शिवजीका ब्रह्माजीके समक्ष स्त्री-पुरुषरूपमें प्रकट होना १८५
१६- भगवान् वृषध्वजद्वारा नन्दिकेश्वरको शतदलकमलकी माला पहनाना १९५
१७- शिवरूप यक्षके समीप देवताओंका अनिश्चयकी स्थितिमें शक्तिहीन होना २२७
१८- देवर्षि नारदजीद्वारा दक्षपुत्रोंको उपदेश देना..... २६०
१९- भगवान् विष्णुद्वारा ब्रह्मर्षि वसिष्ठको आश्वासन .. २६७
२०- कुवलाश्वद्वारा महाबली धुन्धुका वध..... २७८
२१- महर्षि विश्वामित्रद्वारा त्रिशंकुको सशरीर स्वर्ग भेजना २८७
२२- राजा त्रय्यारुणद्वारा अपने पुत्रका त्याग..... २८७
२३- भगवान् परशुरामद्वारा सहस्रार्जुनका वध २९५
२४- माता देवकीके गर्भसे भगवान् श्रीकृष्णका अवतार.. ३०१
२५- अष्टभुजारूप कन्याका कंसके हाथसे छूटकर अन्तरिक्षमें स्थित होना ३०२
२६- भगवान् श्रीकृष्णद्वारा बाणासुरकी भुजाओंका छेदन. ३०४
२७- शतरूपाकी तपस्या..... ३२६
२८- भगवान् शिवजीद्वारा ब्रह्माके समक्ष अपने ही समान हजारों पुत्रोंकी मानस-सृष्टि करना..... ३२८
२९- प्रजापति दक्षद्वारा देवीकी आराधना..... ३३०
३०- ब्रह्माजीद्वारा तारकपुत्रोंको वरप्रदान ३३३
३१- भगवान् शिवजीद्वारा एक ही बाणसे त्रिपुरको ध्वस्त करना ३५४
३२- नेत्ररूपी कमलदानसे प्रसन्न शिवजीद्वारा विष्णुको सुदर्शनचक्र प्रदान करना ३७३
३३- सूतजीद्वारा ऋषियोंको कथा सुनाना ३८५
३४- भक्तद्वारा शिवलिङ्गका पूजन करना..... ४०९
३५- माता पार्वतीको भगवान् शिवजीद्वारा पंचाक्षरीविद्याका उपदेश ४१५
३६- योगीद्वारा ओंकारकी साधना ४७२
३७- देवी पार्वतीको भगवान् शंकरद्वारा अविमुक्तेश्वरलिङ्गका दर्शन कराना ४७५
३८- शिव-पार्वती-संवाद ४७९
३९- मुनि शुक्राचार्यद्वारा शुक्रेश्वरलिङ्गका स्थापन ४८३
४०- ब्रह्माजीद्वारा वाराहरूप भगवान्की स्तुति ४९४
४१- दैत्योंद्वारा भक्त प्रह्लादके वधका प्रयास ४९७
४२- भगवान् शिवका दक्षयज्ञविध्वंसहेतु वीरभद्रको भेजना ५३०
४३- प्रजापति दक्षद्वारा भगवान् शंकरकी स्तुति ५३३
४४- इन्द्रादि देवताओंको लेकर देवगुरु बृहस्पतिका ब्रह्माजीके पास जाना..... ५३६
४५- द्विजवेषधारी भगवान् शंकरको देवी पार्वतीका नमन ५३९
४६- शिशुरूप शिवद्वारा वज्रसहित इन्द्रका स्तम्भन ५४१
४७- भगवान् शंकरके चरणोंमें देवी पार्वतीद्वारा मालाका अर्पण..... ५४३
४९- देवताओंद्वारा भगवान् गणेशजीको प्रणाम करना ... ५५४
४९- इन्द्रका रूप धारणकर भगवान् शंकरका उपमन्युके आश्रममें आगमन ५६१
५०- उपमन्युद्वारा भगवान् शंकर-पार्वतीको साष्टांग प्रणाम .. ५६४
५४- ऋषि उपमन्युको भगवान् श्रीकृष्णद्वारा नमन..... ५६५
५५- महामुनि मार्कण्डेय एवं राजा अम्बरीषका संवाद ... ५६७
५६- यमराजका ब्रह्माजीसे अपनी चिन्ता प्रकट करना ५७०
५७- तपस्यारत देवर्षि नारदजी..... ५७३
५८- गरुडपर आसीन भगवान् नारायण एवं देवर्षि नारद ... ५८०
५९- देवर्षि नारदको राजा अम्बरीषद्वारा पुत्रीका परिचय देना ५९०
६०- भगवान् नारायणको प्रणाम करते हुए देवर्षि नारद.... ५९२
६१- भगवती महालक्ष्मीका प्रादुर्भाव ५९९
६२- घरमें कलहसे अलक्ष्मीका निवास..... ६०२
६३- ऐतरेय एवं उनकी माताका संवाद ६०८
६४- शिवलिङ्गकी स्थापना करते भगवान् श्रीराम..... ६२३
६५- सूतजीसे मुनियोंद्वारा प्रश्न करना ६४९
६६- गुरुका शिवभावसे पूजन..... ६५०
६७- रावणद्वारा पूजित भगवान् रावणेश्वर ८०७

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

ॐ नमः शिवाय

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीलिङ्गमहापुराण

[पूर्वभाग]

पहला अध्याय

देवर्षि नारदजीका नैमिषारण्य-आगमन, श्रीसूत-शौनक-संवादमें लिङ्गमहापुराणका उपक्रम

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
॥ ॐ नमः शिवाय ॥

नमो रुद्राय हरये ब्रह्मणे परमात्मने।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥ १

नारदोऽभ्यर्च्य शैलेशे शङ्करं सङ्गमेश्वरे।
हिरण्यगर्भे स्वर्लीने ह्यविमुक्ते महालये ॥ २

रौद्रे गोप्रेक्षके चैव श्रेष्ठे पाशुपते तथा।
विघ्नेश्वरे च केदारे तथा गोमायुकेश्वरे ॥ ३

हिरण्यगर्भे चन्द्रेशे ईशान्ये च त्रिविष्टपे।
शुक्रेश्वरे यथान्यायं नैमिषं प्रययौ मुनिः ॥ ४

नैमिषेयास्तदा दृष्ट्वा नारदं हृष्टमानसाः।
समभ्यर्च्यासनं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन् ॥ ५

सोऽपि हृष्टो मुनिवरैर्दत्तं भेजे तदासनम्।
सम्पूज्यमानो मुनिभिः सुखासीनो वरासने ॥ ६

चक्रे कथां विचित्रार्थां लिङ्गमाहात्म्यमाश्रिताम्।
एतस्मिन्नेव काले तु सूतः पौराणिकः स्वयम् ॥ ७

जगाम नैमिषं धीमान् प्रणामार्थं तपस्विनाम्।
तस्मै साम च पूजाञ्च यथावच्चक्रिरे तदा ॥ ८

॥ श्रीगणेशजीको नमस्कार है ॥
॥ भगवान् शिवको नमस्कार है ॥

जगत्की उत्पत्ति, स्थिति एवं अन्तके कारणीभूत [कारक] ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपात्मक प्रधान-पुरुषाधीश परमात्मा सदाशिवको नमस्कार है ॥ १ ॥

मुनि नारद शैलेश, संगमेश्वर, हिरण्यगर्भ, स्वर्लीन, अविमुक्त, महालय, रौद्र, गोप्रेक्षक, श्रेष्ठ पाशुपत, विघ्नेश्वर, केदार, गोमायुकेश्वर, हिरण्यगर्भ, चन्द्रेश, ईशान्य, त्रिविष्टप तथा शुक्रेश्वर आदि तीर्थस्थानोंमें भगवान् शंकरकी यथोचित आराधना करके नैमिषारण्य पहुँचे ॥ २—४ ॥

नारदजीको देखकर नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले ऋषियोंके मनमें अतीव प्रसन्नता हुई। उन्होंने नारदजीकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करके उनके लिये उचित आसन प्रदान किया ॥ ५ ॥

उन नारदजीने भी मुनियोंके द्वारा प्रदत्त उस आसनको सहर्ष स्वीकार किया और उन मुनियोंसे भलीभाँति पूजित होकर तथा उस उत्तम आसनपर सुखपूर्वक विराजमान होकर वे लिङ्गमाहात्म्यसे सम्बद्ध विचित्र रहस्योंवाली कथा सुनाने लगे ॥ ६ १/२ ॥

इसी समय पुराणोंके ज्ञाता परम बुद्धिमान् सूतजी तपस्वी मुनियोंको प्रणाम करनेकी कामनासे नैमिषारण्य तीर्थमें पधारे। नैमिषारण्यवासी ऋषियोंने व्यासजीके

नैमिषेयास्तु शिष्याय कृष्णद्वैपायनस्य तु।
अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत॥ ९
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं रोमहर्षणम्।
अपृच्छंश्च ततः सूतमृषिं सर्वे तपोधनाः॥ १०
पुराणसंहितां पुण्यां लिङ्गमाहात्म्यसंयुताम्।

नैमिषेया ऊचुः

त्वया सूत महाबुद्धे कृष्णद्वैपायनो मुनिः॥ ११
उपासितः पुराणार्थं लब्धा तस्माच्च संहिता।
तस्माद्भवन्तं पृच्छामः सूत पौराणिकोत्तम॥ १२
पुराणसंहितां दिव्यां लिङ्गमाहात्म्यसंयुताम्।
नारदोऽप्यस्य देवस्य रुद्रस्य परमात्मनः॥ १३
क्षेत्राण्यासाद्य चाभ्यर्च्य लिङ्गानि मुनिपुङ्गवः।
इह सन्निहितः श्रीमान् नारदो ब्रह्मणः सुतः॥ १४
भवभक्तो भवांश्चैव वयं वै नारदस्तथा।

अस्याग्रतो मुनेः पुण्यं पुराणं वक्तुमर्हसि॥ १५
सफलं साधितं सर्वं भवता विदितं भवेत्।
एवमुक्तः स हृष्टात्मा सूतः पौराणिकोत्तमः॥ १६
अभिवाद्याग्रतो धीमान्नारदं ब्रह्मणः सुतम्।
नैमिषेयांश्च पुण्यात्मा पुराणं व्याजहार सः॥ १७

सूत उवाच

नमस्कृत्य महादेवं ब्रह्माणञ्च जनार्दनम्।
मुनीश्वरं तथा व्यासं वक्तुं लिङ्गं स्मराम्यहम्॥ १८
शब्दब्रह्मतनुं साक्षाच्छब्दब्रह्मप्रकाशकम्।
वर्णावयवमव्यक्तलक्षणं बहुधा स्थितम्॥ १९

शिष्य उन सूतजीकी सम्यक् प्रकारसे स्तुति तथा पूजा की॥ ७-८$^{१}/_{२}$॥

तत्पश्चात् अपनी कथाओंसे रोमांचित कर देनेवाले सूतजीको अतिविश्वस्त विद्वान् जानकर उन मुनियोंकी उनसे पुराण सुननेकी इच्छा हो गयी॥ ९$^{१}/_{२}$॥

तब सभी तपस्वी ऋषियोंने मुनिवर सूतजीसे लिङ्गमाहात्म्यसे युक्त पुण्यदायिनी पुराणसंहिताके विषयमें पूछा॥ १०$^{१}/_{२}$॥

नैमिषारण्यवासी ऋषि बोले—महान् बुद्धिवाले हे सूतजी! पुराणोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपने श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीकी उपासना की तथा उनसे पुराणसंहिता प्राप्त भी की है॥ ११$^{१}/_{२}$॥

अतएव पौराणिकोंमें उत्तम हे सूतजी! लिङ्ग-माहात्म्यसे युक्त दिव्य पुराणसंहिता (लिङ्गपुराण)-के विषयमें हम आपसे पूछ रहे हैं॥ १२$^{१}/_{२}$॥

ब्रह्माके पुत्र श्रीमान् मुनिश्रेष्ठ नारदजी भी परमेश्वर रुद्रदेवके पावन क्षेत्रोंमें जाकर वहाँ उनके लिङ्गोंकी पूजा-अर्चना सम्पन्न करके अब यहाँ विराजमान हैं॥ १३-१४॥

शिवभक्त, आप, हम मुनिगण तथा नारदजी यहाँ उपस्थित हैं। इन मुनिके आगे आप पवित्र लिङ्गपुराणकी कथा कहनेमें समर्थ हैं। आपने सब कुछ सफलतापूर्वक सिद्ध कर लिया है। आपको तो सब कुछ विदित होगा॥ १५$^{१}/_{२}$॥

मुनियोंके इस प्रकार कहनेपर पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीका मन प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो गया। सर्वप्रथम ब्रह्माजीके पुत्र देवर्षि नारद तथा नैमिषारण्यवासी मुनियोंका अभिवादन करके बुद्धिमान् तथा पुण्यात्मा सूतजीने लिङ्गपुराण कहना आरम्भ किया॥ १६-१७॥

सूतजी बोले—शिव, ब्रह्मा, विष्णु तथा मुनीश्वर व्यासजीको नमस्कार करके लिङ्गपुराणकी कथा कहनेके लिये मैं इस पुराणमें प्रतिपादित विषयका स्मरण करता हूँ॥ १८॥

शब्दब्रह्म ही इसका शरीर है—यह साक्षात्

अकारोकारमकारं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।
ओङ्काररूपमृग्वक्त्रं सामजिह्वासमन्वितम्॥ २०
यजुर्वेदमहाग्रीवमथर्वहृदयं विभुम्।
प्रधानपुरुषातीतं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्॥ २१
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम्॥ २२

प्रधानावयवं व्याप्य सप्तधाधिष्ठितं क्रमात्।
पुनः षोडशधा चैव षड्विंशकमजोद्भवम्॥ २३
सर्गप्रतिष्ठासंहारलीलार्थं लिङ्गरूपिणम्।
प्रणम्य च यथान्यायं वक्ष्ये लिङ्गोद्भवं शुभम्॥ २४

शब्दब्रह्म (स्वस्वरूप)-का प्रकाशक है। अकारादि-क्षकारान्त वर्ण ही इसके अवयव हैं, अनेक रूपोंमें स्थित होनेपर भी यह अव्यक्त है, परात्पर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म होनेपर यह अकार, उकार तथा मकारात्मक स्थूल शरीरवाला है, ऐसे स्वयं-प्रकाश्य शब्दब्रह्म ॐकारका ऋग्वेद मुख है, सामवेद इसकी जिह्वा है, यजुर्वेद इसकी महाग्रीवा है तथा अथर्ववेद इसका हृदय है, यह व्यापक है, यह प्रकृति तथा पुरुषसे अतीत एवं प्रलय तथा उत्पत्तिसे रहित है॥ १९—२१॥

जो तमोगुणसे युक्त होनेपर कालरुद्र, रजोगुणसे युक्त होनेपर हिरण्यगर्भस्वरूप, सत्त्वगुणसे आविष्ट होनेपर सर्वव्यापी विष्णुरूप तथा गुणोंसे रहित होनेपर महेश्वरस्वरूपमें प्रकट होता है॥ २२॥

प्रकृत्याश्रित होकर जो महत्, अहंकार तथा पंच-तन्मात्रात्मक (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)—सात रूपोंमें, तदनन्तर दस इन्द्रियों, पाँच महाभूतों तथा मन इत्यादि षोडश रूपोंमें, पुनः इन षोडश रूपों और अव्यक्त, ध्याता (जीव) एवं ध्येय (शिव) इत्यादिको लेकर छब्बीस रूपोंमें व्यक्त होते हैं, जो पितामह ब्रह्माके भी पिता हैं, उन सृष्टि-पालन तथा संहाररूप लीलाके लिये लिङ्गस्वरूप धारण करनेवाले महेश्वर शिवको प्रणाम करके शुभकारक लिङ्गोद्भवकी कथासे युक्त लिङ्गपुराणका मैं यथोचितरूपसे वर्णन करूँगा॥ २३-२४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे लिङ्गोद्भवप्रतिज्ञावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'लिङ्गोद्भवप्रतिज्ञावर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

लिङ्गपुराणका परिचय तथा इसमें प्रतिपादित विषयोंका वर्णन

सूत उवाच

ईशानकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य महात्मना।
ब्रह्मणा कल्पितं पूर्वं पुराणं लैङ्गमुत्तमम्॥ १
ग्रन्थकोटिप्रमाणं तु शतकोटिप्रविस्तरे।
चतुर्लक्षेण सङ्क्षिप्ते व्यासैः सर्वान्तरेषु वै॥ २
व्यस्तेऽष्टादशधा चैव ब्रह्मादौ द्वापरादिषु।
लिङ्गमेकादशं प्रोक्तं मया व्यासाच्छ्रुतञ्च तत्॥ ३

सूतजी बोले—ईशानकल्पमें लिङ्गके प्रादुर्भाव आदिसे सम्बद्ध वृत्तान्तोंको आश्रित करके महात्मा ब्रह्माने सर्वप्रथम श्रेष्ठ लिङ्गपुराणकी उद्भावना की॥ १॥

सौ करोड़ विस्तारवाले पुराणसमुच्चयमें एक करोड़ श्लोकोंवाला यह लिङ्गपुराण सभी मन्वन्तरोंमें विभिन्न व्यासोंके द्वारा चार लाख श्लोकोंमें संक्षिप्त किया गया॥ २॥

वही बृहद् पुराणसंहिता प्रत्येक द्वापरयुगमें

अस्यैकादशसाहस्त्रे ग्रन्थमानमिह द्विजाः।
तस्मात् सङ्क्षेपतो वक्ष्ये न श्रुतं विस्तरेण यत्॥ ४

चतुर्लक्षेण सङ्क्षिप्ते कृष्णद्वैपायनेन तु।
अत्रैकादशसाहस्त्रैः कथितो लिङ्गसम्भवः॥ ५

सर्गः प्राधानिकः पश्चात्प्राकृतो वैकृतानि च।
अण्डस्यास्य च सम्भूतिरण्डस्यावरणाष्टकम्॥ ६

अण्डोद्भवत्वं शर्वस्य रजोगुणसमाश्रयात्।
विष्णुत्वं कालरुद्रत्वं शयनं चाप्सु तस्य च॥ ७

प्रजापतीनां सर्गश्च पृथिव्युद्धरणं तथा।
ब्रह्मणश्च दिवारात्रमायुषो गणनं पुनः॥ ८

सवनं ब्रह्मणश्चैव युगकल्पश्च तस्य तु।
दिव्यञ्च मानुषं वर्षमार्षं वै ध्रौव्यमेव च॥ ९

पित्र्यं पितॄणां सम्भूतिर्धर्मश्चाश्रमिणां तथा।
अवृद्धिर्जगतो भूयो देव्याः शक्त्युद्भवस्तथा॥ १०

स्त्रीपुम्भावो विरिञ्चस्य सर्गो मिथुनसम्भवः।
आख्याष्टकं हि रुद्रस्य कथितं रोदनान्तरे॥ ११

ब्रह्मविष्णुविवादश्च पुनर्लिङ्गस्य सम्भवः।
शिलादस्य तपश्चैव वृत्रारेर्दर्शनं तथा॥ १२

ब्रह्मपुराणादि अठारह पुराणोंके रूपमें व्यासजीद्वारा विभक्त होती है, उनमें ग्यारहवाँ लिङ्गपुराण कहा गया है, जिसका श्रवण मैंने व्यासजीसे किया है॥ ३॥

हे विप्रो! [चार लाख श्लोकोंमें संक्षेपके पश्चात्] इस ग्रन्थमें श्लोकोंकी संख्या मात्र ग्यारह हजार है। अतः मैं संक्षेपमें ही इसका वर्णन कर रहा हूँ; क्योंकि मैं इसे विस्तारसे नहीं सुन सका हूँ॥ ४॥

विभिन्न मन्वन्तरोंमें अनेक व्यासोंद्वारा चार लाख श्लोकोंमें संक्षिप्त किये गये इस लिङ्गपुराणमेंसे वैवस्वत मन्वन्तरमें श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीने ग्यारह हजार श्लोकोंमें लिङ्गपुराणका वर्णन किया है॥ ५॥

इसमें सर्वप्रथम प्राधानिक तदनन्तर प्राकृत तथा वैकृत सृष्टिका वर्णन किया गया है। इस अण्डकी उत्पत्ति तथा अण्डके आठ आवरणोंका इसमें वर्णन है॥ ६॥

सदाशिवके ही रजोगुणके समाश्रयणसे अण्डके मध्यसे ब्रह्मारूपमें, (सत्त्वके आश्रयसे) विष्णुरूपमें, (तमोगुणके आश्रयसे) कालरुद्ररूपमें प्रादुर्भावका तथा अन्तमें उन्हीं सदाशिवका ही प्रलयकालीन जलराशिमें (नारायणके रूपमें) शयनका वर्णन किया गया है॥ ७॥

इस पुराणके अन्तर्गत प्रजापतियोंकी सृष्टि, पृथ्वीके उद्धारकी कथा तथा ब्रह्माके दिन-रात और उनकी आयुकी गणनाका वर्णन किया गया है॥ ८॥

इसमें ब्रह्माकी उत्पत्ति तथा उनके युग एवं कल्प वर्णित हैं। दिव्य वर्ष, मानुष वर्ष, आर्षवर्ष, ध्रौव्यवर्ष तथा पित्र्यवर्षका इसमें वर्णन है। पितरोंकी उत्पत्ति, आश्रमियोंके धर्म, सृष्टि-विस्तारकी प्रारम्भिक दशामें सृष्टिके त्वरित अभीष्ट विकासके अभाव तथा शक्तिस्वरूपा देवीके उद्भवका वर्णन इसमें किया गया है॥ ९-१०॥

मनु तथा शतरूपाकी उत्पत्तिरूपमें ब्रह्माके स्त्री-पुरुष भावका वर्णन, मैथुनी सृष्टिका वर्णन तथा रुद्रके रुदनके पश्चात् उनके आठ नामोंका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें किया गया है॥ ११॥

ब्रह्मा-विष्णुके विवाद तथा उसके बाद शिवलिङ्गके प्राकट्यका वर्णन इसमें विद्यमान है। शिलादकी तपस्या

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

प्रार्थनायोनिजस्याथ दुर्लभत्वं सुतस्य तु।
शिलादशक्रसंवादः पद्मयोनित्वमेव च॥ १३

भवस्य दर्शनञ्चैव तिष्येष्वाचार्यशिष्ययोः।
व्यासावताराश्च तथा कल्पमन्वन्तराणि च॥ १४

कल्पत्वं चैव कल्पानामाख्याभेदेष्वनुक्रमात्।
कल्पेषु कल्पे वाराहे वाराहत्वं हरेस्तथा॥ १५

मेघवाहनकल्पस्य वृत्तान्तं रुद्रगौरवम्।
पुनर्लिङ्गोद्भवश्चैव ऋषिमध्ये पिनाकिनः॥ १६

लिङ्गस्याराधनं स्नानविधानं शौचलक्षणम्।
वाराणस्याश्च माहात्म्यं क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्॥ १७

भुवि रुद्रालयानां तु संख्या विष्णोर्गृहस्य च।
अन्तरिक्षे तथाण्डेऽस्मिन् देवायतनवर्णनम्॥ १८

दक्षस्य पतनं भूमौ पुनः स्वारोचिषेऽन्तरे।
दक्षशापश्च दक्षस्य शापमोक्षस्तथैव च॥ १९

कैलासवर्णनञ्चैव योगः पाशुपतस्तथा।
चतुर्युगप्रमाणञ्च युगधर्मः सुविस्तरः॥ २०

सन्ध्यांशकप्रमाणञ्च सन्ध्यावृत्तं भवस्य च।
श्मशाननिलयश्चैव चन्द्ररेखासमुद्भवः॥ २१

उद्वाहः शङ्करस्याथ पुत्रोत्पादनमेव च।
मैथुनातिप्रसङ्गेन विनाशो जगतां भयम्॥ २२

शापः सत्या कृतो देवान् पुरा विष्णुञ्च पालितम्।
शुक्रोत्सर्गस्तु रुद्रस्य गाङ्गेयोद्भव एव च॥ २३

ग्रहणादिषु कालेषु स्नाप्य लिङ्गं फलं तथा।
क्षुब्दधीचविवादश्च दधीचोपेन्द्रयोस्तथा॥ २४

तथा उन्हें वृत्रारि (इन्द्र)-का दर्शन इस पुराणमें वर्णित है॥ १२॥

शिलाद तथा इन्द्रका संवाद, शिलादद्वारा अयोनिज पुत्रके लिये की गयी प्रार्थना, ऐसे पुत्रका दुर्लभत्व तथा कमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति इस पुराणमें वर्णित हैं॥ १३॥

कलियुगोंमें आचार्य तथा शिष्यको शिवके दर्शन, व्यासोंके अवतार, कल्प, मन्वन्तर, कल्पका स्वरूप, भेदक्रमसे कल्पोंके आख्यान, कल्पोंमें वाराहकल्पमें विष्णुके वाराहावतारकी कथा आदिका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें है॥ १४-१५॥

मेघवाहन कल्पका वृत्तान्त, रुद्रगरिमा, ऋषियोंके मध्य शिवलिङ्गका उद्भव, लिङ्गकी उपासना-स्नानविधि, शौचाचारका लक्षण, वाराणसीका माहात्म्य तथा क्षेत्रमाहात्म्य आदिका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें उपलब्ध है॥ १६-१७॥

पृथ्वीपर शिवालयों तथा विष्णुके मन्दिरोंकी संख्याका वर्णन और अन्तरिक्ष तथा इस ब्रह्माण्डमें देवालयोंका वर्णन इसमें है॥ १८॥

स्वारोचिष मन्वन्तरमें दक्षप्रजापतिका पृथ्वीपर पतन, दक्षको प्रदत्त शाप तथा उस शापसे दक्षकी मुक्ति इस लिङ्गपुराणमें वर्णित है॥ १९॥

कैलासका वर्णन, पाशुपतयोगका वर्णन, चारों युगोंके स्वरूप एवं प्रमाणका वर्णन तथा युगधर्मका वर्णन लिङ्गपुराणमें विस्तारके साथ उपलब्ध है॥ २०॥

चारों युगोंके सन्ध्याकालमानका वर्णन, शिवजीके सन्ध्याताण्डवका वर्णन, शंकरजीके श्मशानवासका वर्णन तथा चन्द्रमाकी कलाओंकी उत्पत्तिका वर्णन इस पुराणमें किया गया है॥ २१॥

इस लिङ्गपुराणमें शंकरजीका विवाह, तत्पश्चात् पुत्ररूपमें श्रीगणेशजीकी उत्पत्ति, दीर्घकालीन कामोपभोग-प्रसंगसे जगत्के विनाशका भय, सतीके द्वारा प्रदत्त शाप, प्राचीनकालमें शिवजीद्वारा त्रिपुरवध करके देवताओं तथा विष्णुकी रक्षा, शिवजीका शुक्रोत्सर्ग तथा कार्तिकेयकी उत्पत्ति आदि वर्णित है॥ २२-२३॥

ग्रहण आदि कालोंमें लिङ्गके अभिषेकका विधान तथा उसका फल, क्षुप् तथा दधीच और दधीच तथा विष्णुका विवाद इस पुराणमें वर्णित है॥ २४॥

उत्पत्तिर्नन्दिनाम्ना तु देवदेवस्य शूलिनः।
पतिव्रतायाश्चाख्यानं पशुपाशविचारणा॥ २५

प्रवृत्तिलक्षणं ज्ञानं निवृत्त्यधिकृता तथा।
वसिष्ठतनयोत्पत्तिर्वासिष्ठानां महात्मनाम्॥ २६

मुनीनां वंशविस्तारो राज्ञां शक्तेर्विनाशनम्।
दौरात्म्यं कौशिकस्याथ सुरभेर्बन्धनं तथा॥ २७

सुतशोको वसिष्ठस्य अरुन्धत्याः प्रलापनम्।
स्नुषायाः प्रेषणञ्चैव गर्भस्थस्य वचस्तथा॥ २८

पराशरस्यावतारो व्यासस्य च शुकस्य च।
विनाशो राक्षसानाञ्च कृतो वै शक्तिसूनुना॥ २९

देवतापरमार्थं तु विज्ञानञ्च प्रसादतः।
पुराणकरणञ्चैव पुलस्त्यस्याज्ञया गुरोः॥ ३०

भुवनानां प्रमाणञ्च ग्रहाणां ज्योतिषां गतिः।
जीवच्छ्राद्धविधानञ्च श्राद्धार्हाः श्राद्धमेव च॥ ३१

नान्दीश्राद्धविधानञ्च तथाध्ययनलक्षणम्।
पञ्चयज्ञप्रभावश्च पञ्चयज्ञविधिस्तथा॥ ३२

रजस्वलानां वृत्तिश्च वृत्त्या पुत्रविशिष्टता।
मैथुनस्य विधिश्चैव प्रतिवर्णमनुक्रमात्॥ ३३

भोज्याभोज्यविधानञ्च सर्वेषामेव वर्णिनाम्।
प्रायश्चित्तमशेषस्य प्रत्येकञ्चैव विस्तरात्॥ ३४

नरकाणां स्वरूपञ्च दण्डः कर्मानुरूपतः।
स्वर्गिनारकिणां पुंसां चिह्नं जन्मान्तरेषु च॥ ३५

नानाविधानि दानानि प्रेतराजपुरं तथा।
कल्पं पञ्चाक्षरस्याथ रुद्रमाहात्म्यमेव च॥ ३६

वृत्रेन्द्रयोर्महायुद्धं विश्वरूपविमर्दनम्।
श्वेतस्य मृत्योः संवादः श्वेतार्थे कालनाशनम्॥ ३७

इस लिङ्गपुराणमें देवाधिदेव शूलधारी शिवजीका नन्दीश्वर नामसे प्रादुर्भाव, पतिव्रताका आख्यान, पशु (जीव) तथा पाश (बन्धन)-की मीमांसा, आसक्तिके स्वरूपका ज्ञान, निवृत्तिकी योग्यताप्राप्ति, वसिष्ठके पुत्रोंकी उत्पत्ति, महात्मा वसिष्ठपुत्रों तथा मुनियों और राजाओंका वंशविस्तार, वसिष्ठपुत्र शक्तिका विनाश, विश्वामित्रकी दुर्भावना तथा उनके द्वारा वसिष्ठकी सुरभिधेनुका बलात् अधिग्रहण आदि वर्णित किये गये हैं॥ २५—२७॥

वसिष्ठके पुत्रशोक, अरुन्धतीके विलाप, उनकी पुत्रवधूके प्रेषण, गर्भस्थित शिशुके वचनोद्गार, पराशर-व्यास तथा शुकदेवके अवतार, शक्तिपुत्र पराशरके द्वारा किये गये राक्षसध्वंस, देवताओंके गूढ़ रहस्यरूप विशिष्ट ज्ञान तथा गुरु पुलस्त्यके आज्ञानुसार उनके कृपाप्रसादसे [पराशरद्वारा विष्णु]-पुराणकी रचनासे सम्बन्धित विषयोंका वर्णन किया गया है॥ २८—३०॥

भुवनोंकी परिमिति, ग्रहों-नक्षत्रोंकी गति, जीवच्छ्राद्धकी विधि, श्राद्धके अधिकारी पात्रों तथा श्राद्धके विषयमें इस पुराणमें वर्णन है॥ ३१॥

इस पुराणमें नान्दीश्राद्धके विधान, वेदाध्ययनका स्वरूप, ब्रह्मयज्ञ-पितृयज्ञ-दैवयज्ञ-भूतयज्ञ-नृयज्ञ—इन पाँच महायज्ञोंके प्रभाव तथा इन पाँच महायज्ञोंके करनेकी विधिका वर्णन किया गया है। रजस्वला स्त्रियोंके सदाचार, उस सदाचार-पालनसे विशिष्ट पुत्रकी प्राप्ति, प्रत्येक वर्णोंके अनुसार मैथुनके नियम, सभी वर्णोंके लिये अलग-अलग भोज्य तथा अभोज्यके विधिविधान और समस्त पापोंके प्रायश्चित्तके विषयमें पृथक्-पृथक् रूपसे विस्तारसे वर्णन किया गया है॥ ३२—३४॥

नरकोंके स्वरूप, कर्मानुसार दण्डके विधान, स्वर्ग और नरक प्राप्त करनेवाले पुरुषोंमें दूसरे जन्मोंमें प्रकट होनेवाले चिह्न, अनेक प्रकारके दानों, यमपुरी, पंचाक्षर मन्त्रकी मीमांसा तथा रुद्रमाहात्म्यका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें किया गया है॥ ३५-३६॥

इन्द्र-वृत्रासुरके महासंग्रामका वर्णन, विश्व-रूपके वधका निरूपण, श्वेतमुनि तथा कालका संवाद,

देवदारुवने शम्भोः प्रवेशः शङ्करस्य तु।
सुदर्शनस्य चाख्यानं क्रमसंन्यासलक्षणम्॥ ३८

श्रद्धासाध्योऽथ रुद्रस्तु कथितं ब्रह्मणा तदा।
मधुना कैटभेनैव पुरा हृतगतेर्विभोः॥ ३९

ब्रह्मणः परमं ज्ञानमादातुं मीनता हरेः।
सर्वावस्थासु विष्णोश्च जननं लीलयैव तु॥ ४०

रुद्रप्रसादाद्विष्णोश्च जिष्णोश्चैव तु सम्भवः।
मन्थानधारणार्थाय हरेः कूर्मत्वमेव च॥ ४१

सङ्कर्षणस्य चोत्पत्तिः कौशिक्याश्च पुनर्भवः।
यदूनाञ्चैव सम्भूतिर्यादवत्वं हरेः स्वयम्॥ ४२

भोजराजस्य दौरात्म्यं मातुलस्य हरेर्विभोः।
बालभावे हरेः क्रीडा पुत्रार्थं शङ्करार्चनम्॥ ४३

नारस्य च तथोत्पत्तिः कपाले वैष्णवाद्धरात्।
भूभारनिग्रहार्थे तु रुद्रस्याराधनं हरेः॥ ४४

वैन्येन पृथुना भूमेः पुरा दोहप्रवर्तनम्।
देवासुरे पुरा लब्धो भृगुशापश्च विष्णुना॥ ४५

कृष्णात्वे द्वारकायां तु निलयो माधवस्य तु।
लब्धो हिताय शापस्तु दुर्वासस्याननाद्धरेः॥ ४६

वृष्ण्यन्धकविनाशाय शापः पिण्डारवासिनाम्।
एरकस्य तथोत्पत्तिस्तोमरस्योद्भवस्तथा॥ ४७

एरकालाभतोऽन्योन्यं विवादे वृष्णिविग्रहः।
लीलया चैव कृष्णेन स्वकुलस्य च संहृतिः॥ ४८

एरकास्त्रबलेनैव गमनं स्वेच्छयैव तु।
ब्रह्मणश्चैव मोक्षस्य विज्ञानं तु सुविस्तरम्॥ ४९

श्वेतमुनिकी रक्षाके लिये शिवद्वारा कालके संहारका इसमें वर्णन है॥ ३७॥

देवदारुवनमें कल्याणकारी भगवान् शम्भुके प्रवेश, सुदर्शनके आख्यान एवं क्रमसंन्यासके लक्षणका वर्णन इस पुराणमें किया गया है॥ ३८॥

शिव-प्राप्ति श्रद्धाद्वारा ही साध्य है—इस सिद्धान्तका ब्रह्माद्वारा निरूपण, मधु-कैटभ-संसर्गसे नष्ट ज्ञानवाले ब्रह्माको परम ज्ञान प्रदान करनेके लिये शिवप्रादुर्भाव, भगवान् विष्णुका मत्स्यरूपमें अवतार तथा सभी अवस्थाओंमें लीलापूर्वक विष्णुकी उत्पत्तिका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें उपलब्ध है॥ ३९-४०॥

भगवान् शंकरकी कृपासे श्रीकृष्ण तथा कामदेवके रूपमें प्रद्युम्नके प्रादुर्भाव एवं समुद्रमन्थनके समय मथानी-धारणके लिये भगवान् विष्णुके कूर्मावतारका वर्णन इस पुराणमें है॥ ४१॥

संकर्षणकी उत्पत्ति, चण्डिकाके रूपमें कौशिकीके प्रादुर्भाव, यदुवंशियोंकी उत्पत्ति, स्वयं विष्णुके यदुकुलमें प्रादुर्भाव, श्रीकृष्णके मामा भोजराज (कंस)-के दुर्भाव, बालरूपमें श्रीकृष्णकी लीलाओं तथा पुत्रके लिये शंकरजीकी पूजाका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें किया गया है॥ ४२-४३॥

विष्णुरूप शिवसे कपालमें जलकी उत्पत्ति तथा पृथ्वीका भार उतारनेके लिये विष्णुद्वारा शंकरजीकी की गयी आराधनाका वर्णन इस पुराणमें है॥ ४४॥

प्राचीनकालमें वेनपुत्र पृथुके द्वारा गोरूप पृथ्वीके दोहन तथा देवासुरसंग्राममें कृष्णके द्वारा प्राप्त किये गये भृगु-प्रदत्त शाप, द्वारकापुरीमें कृष्णरूपमें विष्णुके निवास, लोक-कल्याणके लिये विष्णुके द्वारा स्वीकार किये गये दुर्वासाप्रदत्त शापका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें किया गया है॥ ४५-४६॥

वृष्णि तथा अन्धक वंशोंके विनाशके लिये पिण्डारकक्षेत्रवासी यादवोंको दिये गये शाप, मूसल तथा एरकाकी उत्पत्ति, एरका घास ले-लेकर आपसमें एक-दूसरेपर प्रहार करनेसे वृष्णिवंशियोंके विनाश, अपनी ही लीलासे श्रीकृष्णके द्वारा अपने ही कुलके विनाश, उसी एरकारूपी अस्त्रके प्रभावसे श्रीकृष्णके इच्छापूर्वक अपने धामके लिये प्रयाण तथा कृष्णरूपी ब्रह्मकी प्रयाणलीलाके

पुरान्धकाग्निदक्षाणां शक्रेभमृगरूपिणाम्।
मदनस्यादिदेवस्य ब्रह्मणश्चामरारिणाम्॥ ५०

हलाहलस्य दैत्यस्य कृतावज्ञा पिनाकिना।
जालन्धरवधश्चैव सुदर्शनसमुद्भवः॥ ५१

विष्णोर्वरायुधावाप्तिस्तथा रुद्रस्य चेष्टितम्।
तथान्यानि च रुद्रस्य चरितानि सहस्रशः॥ ५२

हरेः पितामहस्याथ शक्रस्य च महात्मनः।
प्रभावानुभवश्चैव शिवलोकस्य वर्णनम्॥ ५३

भूमौ रुद्रस्य लोकञ्च पाताले हाटकेश्वरम्।
तपसां लक्षणञ्चैव द्विजानां वैभवं तथा॥ ५४

आधिक्यं सर्वमूर्तीनां लिङ्गमूर्तेर्विशेषतः।
लिङ्गेऽस्मिन्नानुपूर्व्येण विस्तरेणानुकीर्त्यते॥ ५५

एतज्ज्ञात्वा पुराणस्य सङ्क्षेपं कीर्तयेत्तु यः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति॥ ५६

रहस्यका विस्तृत वर्णन इस लिङ्गपुराणमें किया गया है॥ ४७—४९॥

इन्द्र बने हुए त्रिपुरासुर, गजरूपी अन्धकासुर, मृगरूपी यज्ञाग्नि, दक्ष, कामदेव, देवताओंके आदिदेव ब्रह्मा, हलाहल विष, दैत्य एवं अन्य असुरोंके शिवकृत दमनका वर्णन तथा जालन्धरवध एवं सुदर्शनकी उत्पत्तिका वर्णन भी इस पुराणमें प्राप्त है॥ ५०-५१॥

इस लिङ्गपुराणमें भगवान् विष्णुको श्रेष्ठ आयुधकी प्राप्ति, रुद्रके क्रिया-कलाप तथा उनके अन्य हजारों चरित्रोंका वर्णन किया गया है॥ ५२॥

विष्णु-ब्रह्मा तथा महात्मा इन्द्रके अनुभव एवं प्रभावका वर्णन तथा शिवलोकका भी वर्णन है। भूमिष्ठ रुद्रलोक, पातालस्थ हाटकेश्वर, तपोंके लक्षण एवं द्विजोंके वैभवका निरूपण भी इस पुराणमें किया गया है॥ ५३-५४॥

भगवान् शंकरके विग्रहोंकी व्यापकता तथा उनकी लिङ्गमूर्तिकी विशेषता इस पुराणमें वर्णित है। इस लिङ्गमहापुराणमें पूर्वोक्त विषयोंका प्रायः क्रमिक रूपसे वर्णन किया गया है। इसे जानकर जो मनुष्य लिङ्ग-पुराणकी इस संक्षिप्त अनुक्रमणिकाका कीर्तन (पाठ) करता है, वह सभी पापोंसे छूटकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है॥ ५५-५६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽनुक्रमणिकावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अनुक्रमणिकावर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

अलिङ्ग एवं लिङ्गतत्त्वका स्वरूप, शिवतत्त्वकी व्यापकता, महदादि तत्त्वोंका विवेचन, जगत्की उत्पत्तिका क्रम तथा महेश्वर शिवकी महिमा

सूत उवाच

अलिङ्गो लिङ्गमूलं तु अव्यक्तं लिङ्गमुच्यते।
अलिङ्गः शिव इत्युक्तो लिङ्गं शैवमिति स्मृतम्॥ १

प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुर्लिङ्गमुत्तमम्।
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शादिवर्जितम्॥ २

अगुणं ध्रुवमक्षय्यमलिङ्गं शिवलक्षणम्।
गन्धवर्णरसैर्युक्तं शब्दस्पर्शादिलक्षणम्॥ ३

सूतजी बोले—वह निर्गुण ब्रह्म शिव (अलिङ्ग) ही लिङ्ग (प्रकृति)-का मूल कारण है तथा स्वयं लिङ्गरूप (प्रकृतिरूप) भी है। लिङ्ग (प्रकृति)-को भी शिवोद्भासित जाना गया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिसे रहित, अगुण, ध्रुव, अक्षय, अलिङ्ग (निर्गुण) तत्त्वको ही शिव कहा गया है तथा शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धादिसे संयुक्त प्रधान प्रकृतिको ही उत्तम लिङ्ग कहा गया है॥ १—३॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

जगद्योनिं महाभूतं स्थूलं सूक्ष्मं द्विजोत्तमाः।
विग्रहो जगतां लिङ्गमलिङ्गादभवत् स्वयम्॥ ४

हे श्रेष्ठ विप्रो! वह जगत्का उत्पत्तिस्थान है, पंचभूतात्मक अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, वायुसे युक्त है, स्थूल है, सूक्ष्म है, जगत्का विग्रह है तथा यह लिङ्गतत्त्व निर्गुण परमात्मा शिवसे स्वयं उत्पन्न हुआ है॥ ४॥

सप्तधा चाष्टधा चैव तथैकादशधा पुनः।
लिङ्गान्यलिङ्गस्य तथा मायया विततानि तु॥ ५

उस अलिङ्ग अर्थात् निर्गुण परमात्माकी मायासे सात, आठ तथा फिर ग्यारह इस तरह कुल छब्बीस रूपवाले लिङ्गतत्त्व इस ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं॥ ५॥

तेभ्यः प्रधानदेवानां त्रयमासीच्छिवात्मकम्।
एकस्मात् त्रिष्वभूद्विश्वमेकेन परिरक्षितम्॥ ६

एकेनैव हृतं विश्वं व्याप्तं त्वेवं शिवेन तु।
अलिङ्गञ्चैव लिङ्गञ्च लिङ्गालिङ्गानि मूर्तयः॥ ७

यथावत् कथिताश्चैव तस्माद् ब्रह्म स्वयं जगत्।
अलिङ्गी भगवान् बीजी स एव परमेश्वरः॥ ८

उन्हीं माया-वितत लिङ्गोंसे उद्भूत तीनों प्रधान देव शिवात्मक हैं। उन तीनोंमें एक ब्रह्मासे यह जगत् उत्पन्न हुआ, एक विष्णुसे जगत्की रक्षा होती है तथा एक रुद्रसे जगत्का संहार होता है। इस प्रकार शिवतत्त्वसे यह विश्व व्याप्त है। वह परमात्मा निर्गुण भी है तथा सगुण भी है। लिङ्ग अर्थात् व्यक्त तथा अलिङ्ग अर्थात् अव्यक्तरूपमें कही गयी सभी मूर्तियाँ शिवात्मक ही हैं; इसलिये यह ब्रह्माण्ड साक्षात् ब्रह्मरूप है। वही अलिङ्गी अर्थात् अव्यक्त तथा बीजी भगवत्तत्त्व परमेश्वर है॥ ६—८॥

बीजं योनिश्च निर्बीजं निर्बीजो बीजमुच्यते।
बीजयोनिप्रधानानामात्माख्या वर्तते त्विह॥ ९

वह परमात्मा बीज (ब्रह्मा) भी है, योनि (विष्णु) भी है तथा निर्बीज (शिव) भी है और बीजरहित वह शिव जगत्का बीज अर्थात् मूल कारण कहा जाता है। बीजरूप ब्रह्मा, योनिरूप विष्णु तथा प्रधानरूप शिवकी इस जगत्में अपनी-अपनी विश्व, प्राज्ञ तथा तैजस अवस्थाकी संज्ञा भी है॥ ९॥

परमात्मा मुनिर्ब्रह्मा नित्यबुद्धस्वभावतः।
विशुद्धोऽयं तथा रुद्रः पुराणे शिव उच्यते॥ १०

यह विशुद्ध मुनिरूप परब्रह्म परमात्मा रुद्र नित्यबुद्धस्वभावके कारण पुराणोंमें 'शिव' कहे गये हैं॥ १०॥

शिवेन दृष्टा प्रकृतिः शैवी समभवद् द्विजाः।
सर्गादौ सा गुणैर्युक्ता पुरा व्यक्ता स्वभावतः॥ ११

हे विप्रो! शिवकी दृष्टिमात्रसे प्रकृति 'शैवी' हो गयी तथा सृष्टिके समय अव्यक्त स्वभाववाली वह प्रकृति गुणोंसे युक्त हो गयी॥ ११॥

अव्यक्तादिविशेषान्तं विश्वं तस्याः समुच्छ्रितम्।
विश्वधात्री त्वजाख्या च शैवी सा प्रकृतिः स्मृता॥ १२

अव्यक्त तथा महत्तत्त्वादिसे लेकर स्थूल पंचमहाभूतपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् उसी प्रकृतिके अधीन है। अतः विश्वको धारण करनेवाली शैवीशक्ति प्रकृति ही अजा नामसे कही गयी है॥ १२॥

तामजां लोहितां शुक्लां कृष्णामेकां बहुप्रजाम्।
जनित्रीमनुशेते स्म जुषमाणः स्वरूपिणीम्॥ १३

रक्तवर्णा अर्थात् रजोगुणवाली, शुक्लवर्णा अर्थात् सत्त्वगुणवाली तथा कृष्णवर्णा अर्थात् तमोगुणवाली एवं

तामेवाजामजोऽन्यस्तु भुक्तभोगां जहाति च।
अजा जनित्री जगतां साजेन समधिष्ठिता॥ १४

बहुविध प्रजाओंकी उत्पत्ति करनेवाली अजास्वरूपिणी उस प्रकृतिकी प्रेमपूर्वक सेवा करता हुआ यह बद्ध जीव उसका अनुसरण करता है॥ १३॥

प्रादुर्बभूव स महान् पुरुषाधिष्ठितस्य च।
अजाज्ञया प्रधानस्य सर्गकाले गुणैस्त्रिभिः॥ १५

दूसरे प्रकारका अनासक्त जीव प्रकृतिके भोगोंको भोगकर और उसकी असारता तथा क्षणभंगुरताको समझकर उस मायाका परित्याग कर देता है। परमेश्वरके द्वारा अधिष्ठित वह अजा अनन्त ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिकर्त्री है॥ १४॥

सिसृक्षया चोद्यमानः प्रविश्याव्यक्तमव्ययम्।
व्यक्तसृष्टिं विकुरुते चात्मनाधिष्ठितो महान्॥ १६

सृष्टिके समयमें तीन गुणोंसे युक्त अजरूप पुरुषकी आज्ञासे उसमें अधिष्ठित मायासे वह महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ॥ १५॥

महतस्तु तथा वृत्तिः सङ्कल्पाध्यवसायिका।
महतस्त्रिगुणस्तस्मादहङ्कारो रजोऽधिकः॥ १७

सृष्टि करनेकी इच्छासे युक्त होकर उस अधिष्ठित महत्तत्त्वने स्वतः अव्यय तथा अव्यक्त पुरुषमें प्रविष्ट होकर व्यक्त सृष्टिमें विक्षोभ उत्पन्न किया॥ १६॥

तेनैव चावृतः सम्यगहङ्कारस्तमोऽधिकः।
महतो भूततन्मात्रं सर्गकृद्वै बभूव च॥ १८

उस महत्तत्त्वसे संकल्प-अध्यवसायवृत्तिरूप सात्त्विक अहंकार उत्पन्न हुआ तथा उसी महत्तत्त्वसे त्रिगुणात्मकरूप रजोगुणकी अधिकतावाला राजस अहंकार उत्पन्न हुआ और उस रजोगुणसे सम्यक् प्रकारसे आवृत तमोगुणकी अधिकतावाला तामस अहंकार भी उसी महत्तत्त्वसे उत्पन्न हुआ है तथा उसी अहंकारसे सृष्टिको व्याप्त करनेवाली शब्द, स्पर्श आदि तन्मात्राएँ भी उत्पन्न हुई हैं॥ १७-१८॥

अहङ्काराच्छब्दमात्रं तस्मादाकाशमव्ययम्।
सशब्दमावृणोत्पश्चादाकाशं शब्दकारणम्॥ १९

तन्मात्राद्भूतसर्गश्च द्विजास्त्वेवं प्रकीर्तितः।
स्पर्शमात्रं तथाकाशात्तस्माद्वायुर्महान् मुने॥ २०

तस्माच्च रूपमात्रं तु ततोऽग्निश्च रसस्ततः।
रसादापः शुभास्ताभ्यो गन्धमात्रं धरा ततः॥ २१

महत्तत्त्वजन्य उस तामस अहंकारसे शब्द तन्मात्रावाले अव्यय आकाशकी उत्पत्ति हुई और बादमें शब्दके कारणरूप उस अहंकारने शब्दयुक्त आकाशको व्याप्त कर लिया। हे विप्रो! इसी प्रकार तन्मात्रात्मक भूतसर्गके विषयमें कहा गया है। हे मुने! उस आकाशसे स्पर्श-तन्मात्रावाला महान् वायु उत्पन्न हुआ। पुनः उस वायुसे रूपतन्मात्रावाले अग्निकी उत्पत्ति हुई तथा अग्निसे रसतन्मात्रावाले जलका प्रादुर्भाव हुआ। फिर रसतन्मात्रावाले उस जलसे गन्धतन्मात्रावाली कल्याणमयी पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई॥ १९—२१॥

आवृणोद्धि तथाकाशं स्पर्शमात्रं द्विजोत्तमाः।
आवृणोद्रूपमात्रं तु वायुर्वाति क्रियात्मकः॥ २२

हे श्रेष्ठ विप्रो! आकाश स्पर्शतन्मात्रावाले वायुको आवृत किये रहता है तथा रूपतन्मात्रावाले अग्निको आच्छादित करके यह क्रियाशील वायु बहता रहता है॥ २२॥

आवृणोद्रसमात्रं वै देवः साक्षाद्विभावसुः।
आवृण्वाना गन्धमात्रमापः सर्वरसात्मिकाः॥ २३

साक्षात् अग्निदेव रसतन्मात्रावाले जलको आच्छादित किये रहते हैं तथा सभी रसोंसे युक्त जलतत्त्व गन्धतन्मात्रावाली पृथ्वीको आच्छादित किये रहता है॥ २३॥

क्ष्मा सा पञ्चगुणा तस्मादेकोना रससम्भवाः।
त्रिगुणो भगवान् वह्निर्द्विगुणः स्पर्शसम्भवः॥ २४

अवकाशस्ततो देव एकमात्रस्तु निष्कलः।
तन्मात्राद्भूतसर्गश्च विज्ञेयश्च परस्परम्॥ २५

इस प्रकार पृथ्वी पाँच (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध) गुणोंसे, गन्धरहित शेष चार गुणोंसे जल, भगवान् अग्नि तीन गुणोंसे तथा स्पर्शसमन्वित वायु दो गुणोंसे युक्त हुए और अन्य अवयवोंसे रहित आकाशदेव मात्र एक गुणवाले हुए। इस प्रकार तन्मात्राओंके पारस्परिक संयोगवाला भूतसर्ग कहा गया है॥ २४-२५॥

वैकारिकः सात्त्विको वै युगपत्सम्प्रवर्तते।
सर्गस्तथाप्यहङ्कारादेवमत्र प्रकीर्तितः॥ २६

राजस, तामस तथा सात्त्विक सर्ग साथ-साथ प्रवृत्त होते हैं, किंतु यहाँपर तामस अहंकारसे ही सर्गका होना बताया गया है॥ २६॥

पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्यस्य पञ्च कर्मेन्द्रियाणि तु।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं मनश्चैवोभयात्मकम्॥ २७

शब्द-स्पर्श आदिको ग्रहण करनेके लिये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा उभयात्मक मन इस जीवके लिये बनाये गये हैं॥ २७॥

महदादिविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति च।
जलबुद्बुदवत्तस्मादवतीर्णः पितामहः॥ २८

स एव भगवान् रुद्रो विष्णुर्विश्वगतः प्रभुः।
तस्मिन्नण्डे त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत्॥ २९

महत्तत्त्वादिसे लेकर पंचमहाभूतपर्यन्त सभी तत्त्व अण्डकी उत्पत्ति करते हैं। वह परमात्मा ही पितामह ब्रह्मा, शंकर तथा विश्वव्यापी प्रभु विष्णुके रूपमें उस अण्डसे जलके बुलबुलेकी भाँति अवतीर्ण हुआ। ये सभी लोक तथा उनके भीतरका यह सम्पूर्ण जगत् उस अण्डमें सन्निविष्ट था॥ २८-२९॥

अण्डं दशगुणेनैव वारिणा प्रावृतं बहिः।
आपो दशगुणेनैव तद्बाह्ये तेजसा वृताः॥ ३०

वह अण्ड अपनेसे दस गुने जलसे बाहरसे व्याप्त था और जल बाहरसे अपनेसे दस गुने तेजसे आवृत था॥ ३०॥

तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम्।
वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः॥ ३१

तेज अपनेसे दस गुने वायुसे बाहरसे आवृत था और वायु अपनेसे दस गुने आकाशसे बाहरसे आवृत था॥ ३१॥

आकाशेनावृतो वायुरहङ्कारेण शब्दजः।
महता शब्दहेतुर्वै प्रधानेनावृतः स्वयम्॥ ३२

शब्दजन्य वायुको आवृत किये हुए वह आकाश तामस अहंकारसे आवृत है। शब्द-हेतु आकाशको आवृत करनेवाला वह तामस अहंकार महत्तत्त्वसे घिरा हुआ है और वह महत्तत्त्व स्वयं अव्यक्त प्रधानसे आवृत है॥ ३२॥

सप्ताण्डावरणान्याहुस्तस्यात्मा कमलासनः।
कोटिकोटियुतान्यत्र चाण्डानि कथितानि तु॥ ३३

उस अण्ड (ब्रह्माण्ड)-के ये सात प्राकृत आवरण कहे गये हैं। कमलासन ब्रह्माजी उसकी आत्मा हैं। इस सृष्टिमें करोड़ों-करोड़ों अण्डों (ब्रह्माण्डों)-की स्थितिके विषयमें कहा गया है॥ ३३॥

तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवाः।
सृष्टाः प्रधानेन तदा लब्ध्वा शम्भोस्तु सन्निधिम्॥ ३४

लयश्चैव तथान्योऽन्यमाद्यन्तमिति कीर्तितम्।
सर्गस्य प्रतिसर्गस्य स्थितेः कर्ता महेश्वरः॥ ३५

प्रधान (प्रकृति) ही सदाशिवके आश्रयको प्राप्त करके इन करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें सर्वत्र चतुर्मुख ब्रह्मा, विष्णु और शिवका सृजन करती है। अन्तमें शम्भुका सहयोग प्राप्तकर वहीं प्रधान लय भी करती है। इस प्रकार परस्पर सम्बद्ध आदि (सृष्टि) तथा अन्त (प्रलय)-के विषयमें कहा गया है। इस सृष्टिकी रचना, पालन तथा संहार करनेवाले वे ही एकमात्र महेश्वर हैं॥ ३४-३५॥

सर्गे च रजसा युक्तः सत्त्वस्थः प्रतिपालने।
प्रतिसर्गे तमोद्रिक्तः स एव त्रिविधः क्रमात्॥ ३६

वे ही महेश्वर क्रमपूर्वक तीन रूपोंमें होकर सृष्टि करते समय रजोगुणसे युक्त रहते हैं, पालनकी स्थितिमें सत्त्वगुणमें स्थित रहते हैं तथा प्रलयकालमें तमोगुणसे आविष्ट रहते हैं॥ ३६॥

आदिकर्ता च भूतानां संहर्ता परिपालकः।
तस्मान्महेश्वरो देवो ब्रह्मणोऽधिपतिः शिवः॥ ३७

सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वात्मको यतः।
एतदण्डे तथा लोका इमे कर्ता पितामहः॥ ३८

वे ही भगवान् शिव प्राणियोंके सृष्टिकर्ता, पालक तथा संहर्ता हैं। अतएव वे महेश्वर ब्रह्माके अधिपतिरूपमें प्रतिष्ठित हैं, जिस कारणसे भगवान् सदाशिव भव, विष्णु, ब्रह्मा आदि रूपोंमें स्थित हैं तथा सर्वात्मक हैं, इसी कारण वे ही ब्रह्माण्डवर्ती इन लोकोंके रूपमें तथा इनके कर्ता पितामहके रूपमें कहे गये हैं॥ ३७-३८॥

प्राकृतः कथितस्त्वेष पुरुषाधिष्ठितो मया।
सर्गश्चाबुद्धिपूर्वस्तु द्विजाः प्राथमिकः शुभः॥ ३९

हे द्विजो! पुरुषाधिष्ठित यह प्राथमिक ईश्वरकृत अबुद्धिपूर्वक उत्पन्न तथा कल्याणकारी प्राकृत सर्ग मैंने तुम्हें सुनाया है॥ ३९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे प्राकृतप्राथमिकसर्गकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'प्राकृतप्राथमिकसर्गकथन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

ब्रह्माजीकी आयुका परिमाण, कालका स्वरूप, कल्प, मन्वन्तर एवं युगादिका मान तथा ब्रह्माजीद्वारा विभिन्न लोकोंकी संरचना

सूत उवाच

अथ प्राथमिकस्येह यः कालस्तदहः स्मृतम्।
सर्गस्य तादृशी रात्रिः प्राकृतस्य समासतः॥ १

सूतजी बोले—ब्रह्माकी प्राकृत सृष्टिका जो समय है, वही उनका दिन है तथा उतने ही परिमाणकी उनकी रात्रि है॥ १॥

दिवा सृष्टिं विकुरुते रजन्यां प्रलयं विभुः।
औपचारिकमस्यैतदहोरात्रं न विद्यते॥ २

वे ब्रह्मा दिनमें सृष्टि करते हैं तथा रातमें प्रलय करते हैं। ब्रह्माका अहोरात्र उत्पत्ति-प्रलयरूपात्मक है, मनुष्योंके दिन-रातके समान सूर्योदयास्तवाला नहीं है॥ २॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

दिवा विकृतयः सर्वे विकारा विश्वदेवताः।
प्रजानां पतयः सर्वे तिष्ठन्त्यन्ये महर्षयः॥ ३

रात्रौ सर्वे प्रलीयन्ते निशान्ते सम्भवन्ति च।
अहस्तु तस्य वै कल्पो रात्रिस्तादृग्विधा स्मृता॥ ४

दिनमें सभी प्रकारकी वैकारिक सृष्टि, समस्त देवता, सभी प्रजापतिगण तथा अन्य महर्षि लोग विद्यमान रहते हैं तथा रातमें ये सभी विलीन हो जाते हैं। रातकी समाप्तिपर वे सभी पुनः उत्पन्न हो जाते हैं। ब्रह्माका एक दिन ही एक कल्प कहा जाता है तथा उसी प्रकार उनकी रात भी एक कल्पके मानके तुल्य कही गयी है॥ ३-४॥

चतुर्युगसहस्रान्ते मनवस्तु चतुर्दश।
चत्वारि तु सहस्राणि वत्सराणां कृतं द्विजाः॥ ५

तावच्छती च वै सन्ध्या सन्ध्यांशश्च कृतस्य तु।
त्रिशती द्विशती सन्ध्या तथा चैकशती क्रमात्॥ ६

एक हजार चतुर्युगीकी अवधिमें चौदह मनु उत्पन्न होते हैं। हे विप्रो! सत्ययुगका काल चार हजार दिव्य वर्षोंका है और उस सत्ययुगके चार सौ वर्षोंकी सन्ध्या तथा सन्ध्यांश होते हैं। उसी प्रकार क्रमसे त्रेतायुगकी सन्ध्या तीन सौ वर्षकी, द्वापरकी सन्ध्या दो सौ वर्षकी तथा कलियुगकी सन्ध्या एक सौ वर्षकी होती है॥ ५-६॥

अंशकः षट्शतं तस्मात् कृतसन्ध्यांशकं विना।
त्रिद्व्येकसाहस्रमितौ विना सन्ध्यांशके न तु॥ ७

इस प्रकार सत्ययुगके सन्ध्यांशकको छोड़कर अन्य तीन युगोंके कुल सन्ध्यांशक छः सौ वर्षके होते हैं तथा इन त्रेता, द्वापर और कलिके सन्ध्या-सन्ध्यांशकको छोड़कर इनका नियत समय क्रमशः तीन हजार, दो हजार तथा एक हजार वर्षोंका होता है॥ ७॥

त्रेताद्वापरतिष्याणां कृतस्य कथयामि वः।
निमेषपञ्चदशका काष्ठा स्वस्थस्य सुव्रताः॥ ८

मर्त्यस्य चाक्ष्णोस्तस्याश्च ततस्त्रिंशतिका कला।
कला त्रिंशतिको विप्रा मुहूर्त इति कल्पितः॥ ९

हे सुव्रत ऋषियो! अब मैं आप लोगोंको त्रेता, द्वापर, कलियुग तथा सत्ययुगके कालमान बताता हूँ। स्वस्थ मनुष्यके नेत्रके पन्द्रह निमेषके समयको एक काष्ठा कहते हैं और तीस काष्ठाकी एक कला होती है। हे विप्रो! तीस कलाको मिलाकर एक मुहूर्त कहा जाता है॥ ८-९॥

मुहूर्तपञ्चदशिका रजनी तादृशं त्वहः।
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः॥ १०

कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी।
त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पित्र्यो मासस्तु स स्मृतः॥ ११

पन्द्रह मुहूर्तकी एक रात होती है तथा उसी प्रकार पन्द्रह मुहूर्तका एक दिन होता है। मनुष्योंका एक कृष्णपक्ष पितरोंके एक दिनके बराबर होता है तथा शुक्लपक्ष उनकी स्वप्नसम्बन्धी रातके समान होता है। मनुष्योंके तीस महीनेका समय पितरोंके एक मासके बराबर माना गया है॥ १०-११॥

शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै।
पित्र्यः सम्वत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते॥ १२

मनुष्योंके तीन सौ साठ महीनोंका समय पितरोंका एक संवत्सर (वर्ष) माना जाता है॥ १२॥

मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्।
पितॄणां त्रीणि वर्षाणि संख्यातानीह तानि वै॥ १३

मानवीय मानसे सन्ध्या-सन्ध्यांशसहित जो १०० वर्ष होते हैं, यहाँ वे ही पितरोंके तीन वर्ष कहे गये हैं। जैसे लौकिक मानसे बारह मासका एक मानववर्ष होता है,

दश वै द्व्यधिका मासाः पितृसंख्येह संस्मृता।
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः॥ १४

एतद्दिव्यमहोरात्रमिति लैङ्गेऽत्र पठ्यते।
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः॥ १५
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्।
एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते विशेषतः॥ १६
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः।
मानुषं तु शतं विप्रा दिव्यमासास्त्रयस्तु ते॥ १७
दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः।
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु॥ १८
दिव्यः सम्वत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः।
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः॥ १९
त्रिंशदन्यानि वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः।
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु॥ २०
अन्यानि नवतीश्चैव ध्रौवः संवत्सरस्तु सः।
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ॥ २१
वर्षाणां तच्छतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः।
त्रीण्येव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु ॥ २२
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः॥ २३
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम्।
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते॥ २४
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि सुव्रताः।
अथ संवत्सरा दृष्टा मानुषेण प्रमाणतः॥ २५
कृतस्याद्यस्य विप्रेन्द्रा दिव्यमानेन कीर्तितम्।
सहस्राणां शतान्यासंश्चतुर्दश च संख्यया॥ २६
चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतं युगम्।
तथा दशसहस्राणां वर्षाणां शतसंख्यया॥ २७
अशीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्य च।
सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु॥ २८
विंशतिश्च सहस्राणि कालस्तु द्वापरस्य च।
तथा शतसहस्राणि वर्षाणां त्रीणि संख्यया॥ २९
षष्टिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्य तु।
एवं चतुर्युगः काल ऋते सन्ध्यांशकात्स्मृतः॥ ३०

उसी प्रकार पितृमानसे बारह मासका एक पितृवर्ष होता है। लिङ्गपुराणमें इस प्रकार दिव्य अहोरात्र तथा दिव्य वर्षका विभागपूर्वक वर्णन किया गया है॥ १३—१५॥

सूर्यका उत्तरकी ओर संक्रमण [उत्तरायण—सूर्यका मकरराशिसे मिथुनराशितक] ही देवताओंका दिवस तथा सूर्यका दक्षिणकी ओर संक्रमण [दक्षिणायन—कर्कराशिसे धनुराशितक] ही देवोंकी रात्रि होती है। विशेषतया ये दिव्य अहोरात्र कहे गये हैं॥ १६॥

मनुष्योंके तीस वर्षोंका काल देवताओंके एक महीनेके समयके बराबर होता है। हे विप्रो! मनुष्योंका एक सौ वर्ष देवताओंके तीन माह तथा दस दिनके बराबर माना गया है॥ १७$^{१}/_{२}$॥

मनुष्योंके तीन सौ साठ वर्षोंका कालमान देवताओंके एक वर्षके समयके तुल्य कहा गया है॥ १८$^{१}/_{२}$॥

मनुष्योंके कालप्रमाणके अनुसार उनके तीन हजार तीस वर्ष सप्तर्षियोंके एक वर्षके बराबर माने गये हैं॥ १९$^{१}/_{२}$॥

मनुष्योंके नौ हजार नब्बे वर्षोंको मिलाकर वह एक ध्रौव्य वर्ष (ध्रुव वर्ष) होता है॥ २०$^{१}/_{२}$॥

मनुष्योंका जो छत्तीस हजार वर्षोंका समय है, वही देवताओंका सौ वर्ष कहा जाता है॥ २१$^{१}/_{२}$॥

कालगणनाके विद्वान् मनुष्योंके तीन लाख साठ हजार वर्षोंके समयको देवताओंके एक हजार वर्षोंके बराबर कहते हैं॥ २२-२३॥

देवताओंके ही कालप्रमाणसे युगोंकी संख्या कल्पित की गयी है। हे सुव्रत ऋषियो! सर्वप्रथम सत्ययुग, इसके बाद त्रेता, फिर द्वापर और अन्तमें कलियुग—ये चार युग कहे गये हैं। अब मानुषीवर्ष-प्रमाणसे इनका काल बताया जाता है॥ २४-२५॥

हे विप्रवरो! प्रथम कृतयुगका कालमान देवताओंके प्रमाणसे बताया जा चुका है। वह कृतयुग मानुषी वर्षसे चौदह लाख चालीस हजार वर्षोंका है तथा त्रेतायुगका कालप्रमाण दस लाख अस्सी हजार वर्षोंका, द्वापरयुगका कालमान सात लाख बीस हजार वर्षोंका तथा कलियुगका समय तीन लाख साठ हजार वर्षोंका कहा गया है। इस

नियुतान्येव षट्त्रिंशन्निरंशानि तु तानि वै।
चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुतानीह संख्यया॥ ३१

विंशतिश्च सहस्राणि सन्ध्यांशश्च चतुर्युगः।
एवं चतुर्युगाख्यानां साधिका ह्येकसप्ततिः॥ ३२

कृतत्रेतादियुक्तानां मनोरन्तरमुच्यते।
मन्वन्तरस्य संख्या च वर्षाग्रेण प्रकीर्तिता॥ ३३

त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण द्विजोत्तमाः।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु॥ ३४

विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना।
मन्वन्तरस्य संख्यैषा लैङ्गेऽस्मिन् कीर्तिता द्विजाः॥ ३५

चतुर्युगस्य च तथा वर्षसंख्या प्रकीर्तिता।
चतुर्युगसहस्रं वै कल्पश्चैको द्विजोत्तमाः॥ ३६

निशान्ते सृजते लोकान् नश्यन्ते निशि जन्तवः।
तत्र वैमानिकानां तु अष्टाविंशतिकोटयः॥ ३७

मन्वन्तरेषु वै संख्या सान्तरेषु यथातथा।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्यो द्विनवतिस्तथा॥ ३८

कल्पेऽतीते तु वै विप्राः सहस्राणां तु सप्ततिः।
पुनस्तथाष्टसाहस्रं सर्वत्रैव समासतः॥ ३९

कल्पावसानिकांस्त्यक्त्वा प्रलये समुपस्थिते।
महर्लोकात्प्रयान्त्येते जनलोकं जनास्ततः॥ ४०

कोटीनां द्वे सहस्रे तु अष्टौ कोटिशतानि तु।
द्विषष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्ततिः॥ ४१

कल्पार्धसंख्या दिव्या वै कल्पमेवन्तु कल्पयेत्।
कल्पानां वै सहस्रन्तु वर्षमेकमजस्य तु॥ ४२

वर्षाणामष्टसाहस्रं ब्राह्मं वै ब्रह्मणो युगम्।
सवनं युगसाहस्रं सर्वदेवोद्भवस्य तु॥ ४३

सवनानां सहस्रं तु त्रिविधं त्रिगुणं तथा।
ब्रह्मणस्तु तथा प्रोक्तः कालः कालात्मनः प्रभोः॥ ४४

प्रकार सन्ध्या तथा सन्ध्यांशको छोड़कर चारों युगोंका काल छत्तीस लाख वर्ष कहा गया है। चारों युगोंके सन्ध्यांशका काल तीन लाख साठ हजार वर्ष होता है॥ २६—३१ १/२॥

इकहत्तर कृत-त्रेतादि चतुर्युगोंके कालसे कुछ अधिक कालको एक मन्वन्तर कहा जाता है और आगे दिये गये वर्षोंसे मन्वन्तरकी संख्या कही गयी है॥ ३२-३३॥

हे उत्तम ब्राह्मणो! मनुष्यवर्षसे तीस करोड़ सरसठ लाख बीस हजार वर्षोंका काल सभी मनुओंका होता है; हे द्विजो! ऐसा इस लिङ्गपुराणमें बताया गया है॥ ३४-३५॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! चतुर्युगकी भी वर्षसंख्या कही गयी है। एक हजार चतुर्युगोंका काल एक कल्प कहा गया है॥ ३६॥

ब्रह्माजी दिनके आरम्भमें जगत्की रचना करते हैं तथा रात्रिमें प्राणियोंका संहार होता है। उनमें देवताओंकी संख्या अट्ठाईस करोड़ है। यह संख्या मन्वन्तरोंमें तीन सौ बानबे करोड़ होती है। हे ब्राह्मणो! कल्प व्यतीत होनेपर यह संख्या अठहत्तर हजार होती है॥ ३७—३९॥

प्रलयकाल उपस्थित होनेपर कल्पके अन्तमें विद्यमान देवताओंको छोड़कर महर्लोकमें निवास करनेवाले लोग जनलोकमें चले जाते हैं॥ ४०॥

आधे दिव्य (देव) कल्पकी वर्षसंख्या दो हजार आठ सौ बासठ करोड़ सत्तर लाख है; इसीसे कल्पकी संख्या ज्ञात होती है। हजार कल्पोंका काल ही ब्रह्माजीका एक वर्ष है॥ ४१-४२॥

ब्रह्माके आठ हजार वर्षोंका काल (आठ हजार ब्राह्म वर्ष) ब्रह्माका एक युग होता है। सभी देवोंके उत्पत्तिकर्ता ब्रह्माका एक हजार युग विष्णुके एक दिनके बराबर होता है॥ ४३॥

विष्णुके नौ हजार दिनोंका समय कालात्मा प्रभु ब्रह्मस्वरूप रुद्रके एक दिनका समय कहा गया है॥ ४४॥

भवोद्भवस्तपश्चैव भव्यो रम्भः क्रतुः पुनः।
ऋतुर्वह्निर्हव्यवाहः सावित्रः शुद्ध एव च॥ ४५

उशिकः कुशिकश्चैव गान्धारो मुनिसत्तमाः।
ऋषभश्च तथा षड्जो मज्जालीयश्च मध्यमः॥ ४६

वैराजो वै निषादश्च मुख्यो वै मेघवाहनः।
पञ्चमश्चित्रकश्चैव आकूतिर्ज्ञान एव च॥ ४७

मनः सुदर्शो बृंहश्च तथा वै श्वेतलोहितः।
रक्तश्च पीतवासाश्च असितः सर्वरूपकः॥ ४८

एवं कल्पास्तु संख्याता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
कोटिकोटिसहस्राणि कल्पानां मुनिसत्तमाः॥ ४९

गतानि तावच्छेषाणि अहर्निश्यानि वै पुनः।
परान्ते वै विकाराणि विकारं यान्ति विश्वतः॥ ५०

विकारस्य शिवस्याज्ञावशेनैव तु संहृतिः।
संहृते तु विकारे च प्रधाने चात्मनि स्थिते॥ ५१

साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ।
गुणानाञ्चैव वैषम्ये विप्राः सृष्टिरिति स्मृता॥ ५२

साम्ये लयो गुणानान्तु तयोर्हेतुर्महेश्वरः।
लीलया देवदेवेन सर्गास्त्वीदृग्विधाः कृताः॥ ५३

असंख्याताश्च सङ्क्षेपात् प्रधानादन्वधिष्ठितात्।
असंख्याताश्च कल्पाख्या ह्यसंख्याताः पितामहाः॥ ५४

हरयश्चाप्यसंख्यातास्त्वेक एव महेश्वरः।
प्रधानादिप्रवृत्तानि लीलया प्राकृतानि तु॥ ५५

गुणात्मिका च तद्वृत्तिस्तस्य देवस्य वै त्रिधा।
अप्राकृतस्य तस्यादिर्मध्यान्तं नास्ति चात्मनः॥ ५६

पितामहस्याथ परः परार्धद्वयसम्मितः।
दिवा सृष्टं तु यत्सर्वं निशि नश्यति चास्य तत्॥ ५७

भूर्भुवः स्वर्महस्तत्र नश्यते चोर्ध्वतो न च।
रात्रौ चैकार्णवे ब्रह्मा नष्टे स्थावरजङ्गमे॥ ५८

हे मुनिश्रेष्ठो! भवोद्भव, तप, भव्य, रम्भ, क्रतु, ऋतु, वह्नि, हव्यवाह, सावित्र, शुद्ध, उशिक, कुशिक, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, मज्जालीय, मध्यम, वैराज, निषाद, मुख्य, मेघवाहन, पंचम, चित्रक, आकूति, ज्ञान, मन, सुदर्श, बृंह, श्वेतलोहित, रक्त, पीतवासा, असित एवं सर्वरूपक—ये तैंतीस संख्यावाले कल्प उस अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके होते हैं॥ ४५—४८ १/२॥

हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार ब्रह्माके दिन-रातमें हजारों करोड़ कल्प बीत गये तथा शेष अभी व्यतीत होंगे॥ ४९ १/२॥

महाप्रलयके समय सम्पूर्ण सृष्टिका लय हो जाता है और पश्चात् शिवकी आज्ञासे प्रलयका भी प्रलय हो जाता है॥ ५० १/२॥

इस प्रकार सबका प्रलय हो जानेपर तथा प्रकृतिके परमात्मामें स्थित हो जानेपर केवल प्रधान (प्रकृति) तथा पुरुष—ये दो ही रह जाते हैं॥ ५१ १/२॥

हे विप्रो! इस प्रकार गुणोंकी ही विषमतासे सृष्टि तथा गुणोंके ही साम्यसे प्रलय होते हैं और उन दोनोंका हेतु वे ही महेश्वर हैं॥ ५२ १/२॥

उन देवाधिदेवने अपनी लीलासे इस प्रकारकी असंख्य सृष्टि की है। वे सर्ग प्रधानसे अन्वधिष्ठित होते हैं॥ ५३ १/२॥

इस प्रकार असंख्य कल्प, अनगिनत पितामह (ब्रह्मा) तथा असंख्य विष्णु उत्पन्न होते हैं; किंतु वे महेश्वर मात्र एक हैं॥ ५४ १/२॥

प्रकृति अपनी लीलासे प्राकृत सर्गकी रचना करती है और उस परमात्माकी वृत्ति तीन प्रकारके गुणों (सत्-रज-तम)-वाली है। उस अप्राकृतका अपना न कोई आदि है, न मध्य है और न अन्त ही है॥ ५५-५६॥

ब्रह्माकी आयु [पर] दो परार्ध है। उस ब्रह्माके द्वारा दिनमें जो भी सृजित होता है, वह सब कुछ रातमें नष्ट हो जाता है॥ ५७॥

भूः, भुवः, स्वः, महः—ये लोक नष्ट हो जाते हैं; किंतु इनसे ऊपरके लोकोंका नाश नहीं होता है। समस्त चर-अचरके अनन्त समुद्रमें विनष्ट हो जानेपर रात्रिमें

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

सुष्वापाम्भसि यस्तस्मान्नारायण इति स्मृतः।
शर्वर्यन्ते प्रबुद्धो वै दृष्ट्वा शून्यं चराचरम्॥ ५९

ब्रह्माजी उसी जलराशिमें शयन करते हैं; इसीलिये उन्हें नारायण कहा जाता है॥ ५८$^{१}/_{२}$॥

प्रलयकालीन रातके बीतनेपर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी उठे और चराचर जगत्को शून्य देखकर उन्होंने सृष्टि करनेका विचार किया॥ ५९$^{१}/_{२}$॥

स्रष्टुं तदा मतिञ्चक्रे ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
उदकैराप्लुतां क्ष्मां तां समादाय सनातनः॥ ६०

पूर्ववत् स्थापयामास वाराहं रूपमास्थितः।
नदीनदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाकरोत्प्रभुः॥ ६१

उन सनातन ब्रह्माने वाराहका रूप धारण करके जलमें डूबी हुई पृथ्वीको निकालकर उसे पुनः पूर्वकी भाँति स्थापित कर दिया और उसपर नदी, नद तथा समुद्रोंको उन प्रभुने पूर्वकी भाँति पुनः कर दिया॥ ६०-६१॥

कृत्वा धरां प्रयत्नेन निम्नोन्नतिविवर्जिताम्।
धरायां सोऽचिनोत् सर्वान् गिरीन् दग्धान् पुराग्निना॥ ६२

ब्रह्माजीने प्रयत्नपूर्वक पृथ्वीतलपर दबे हुए तथा उठे भागोंको ठीक करके उन्हें समतल किया और उन्होंने पूर्वकालमें अग्निसे दग्ध सभी पर्वतोंको धरापर पुनः पूर्ववत् बना दिया॥ ६२॥

भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत्।
स्रष्टुञ्च भगवान् चक्रे तदा स्रष्टा पुनर्मतिम्॥ ६३

इस प्रकार भगवान् ब्रह्माने जब भूः आदि चारों लोकोंकी पूर्वकी भाँति रचना कर ली, तब उन सृष्टिकर्ताने पुनः सृष्टि करनेका विचार किया॥ ६३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सृष्टिप्रारम्भवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सृष्टिप्रारम्भवर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्माजीद्वारा पंचपर्वा अविद्याकी सृष्टि, नौ प्रकारकी सृष्टि (नवविध सर्ग)-की संरचना, मरीचि आदि ऋषियोंकी उत्पत्ति, मनु-शतरूपाका प्रादुर्भाव तथा दक्षप्रजापतिकी कन्याओंका वंशवर्णन

सूत उवाच

यदा स्रष्टुं मतिं चक्रे मोहश्चासीन्महात्मनः।
द्विजाश्चाबुद्धिपूर्वं तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ १

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! जब ब्रह्माजीने अबुद्धिपूर्वक अर्थात् सम्यक् विचार किये बिना सृष्टिरचनाका विचार किया, तब उन अव्यक्तजन्मा महात्मा ब्रह्माको मोहने व्याप्त कर लिया॥ १॥

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धसंज्ञितः।
अविद्या पञ्चधा ह्येषा प्रादुर्भूता स्वयम्भुवः॥ २

उन स्वयम्भूसे प्रथम तम (अज्ञान), मोह, महामोह (भोगेच्छा), तामिस्र (क्रोध) तथा अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) नामवाली—ये पाँच प्रकारकी [पंचपर्वा] अविद्याएँ उत्पन्न हो गयीं॥ २॥

अविद्यया मुनेर्ग्रस्तः सर्गो मुख्य इति स्मृतः।
असाधक इति स्मृत्वा सर्गो मुख्यः प्रजापतिः॥ ३

ब्रह्माजीका वह मुख्य [प्रथम] सर्ग (सृष्टि) अविद्यासे ग्रस्त कहा गया है, तब उन्होंने इस प्रथम

अभ्यमन्यत सोऽन्यं वै नगा मुख्योद्भवाः स्मृताः।
त्रिधा कण्ठो मुनेस्तस्य ध्यायतो वै ह्यवर्तत॥ ४

प्रथमं तस्य वै जज्ञे तिर्यक्स्रोतो महात्मनः।
ऊर्ध्वस्रोतः परस्तस्य सात्त्विकः स इति स्मृतः॥ ५

अर्वाक्स्रोतोऽनुग्रहश्च तथा भूतादिकः पुनः।
ब्रह्मणो महतस्त्वाद्यो द्वितीयो भौतिकस्तथा॥ ६

सर्गस्तृतीयश्चैन्द्रियस्तुरीयो मुख्य उच्यते।
तिर्यग्योन्यः पञ्चमस्तु षष्ठो दैविक उच्यते॥ ७

सप्तमो मानुषो विप्रा अष्टमोऽनुग्रहः स्मृतः।
नवमश्चैव कौमारः प्राकृता वैकृतास्त्विमे॥ ८

पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा।
सनातनं मुनिश्रेष्ठा नैष्कर्म्येण गताः परम्॥ ९

मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठञ्च सोऽसृजद्योगविद्यया॥ १०

नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्रह्मज्ञा ब्राह्मणोत्तमाः।
ब्रह्मवादिन एवैते ब्रह्मणः सदृशाः स्मृताः॥ ११

सङ्कल्पश्चैव धर्मश्च ह्यधर्मो धर्मसन्निधिः।
द्वादशैव प्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ १२

ऋभुं सनत्कुमारञ्च ससर्जादौ सनातनः।
तावूर्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मवादिनौ॥ १३

सर्गको सृष्टि-विस्तारका असाधक मानकर वृक्षादिरूप (वृक्ष, गुल्म, लता, वीरुध्, तृणरूप—पाँच प्रकारका सर्ग) मुख्यसर्गका सृजन किया, तदनन्तर ध्यानपूर्वक मनन करते हुए उन ब्रह्माजीका कण्ठ (चिन्तन) त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रज तथा तमोगुणसे युक्त) हो गया॥ ३-४॥

पहले उन महात्मा ब्रह्माने तिर्यक्स्रोत पशु आदि उत्पन्न किये, तत्पश्चात् उन्होंने ऊर्ध्वस्रोतकी रचना की, जो सात्त्विकरूप कहा गया। इसके अनन्तर अर्वाक्स्रोत (मनुष्य आदि), पुनः सत्त्व, तमप्रधान अनुग्रह-सर्ग, तदुपरान्त भूतादिकोंका सर्ग रचा गया॥ ५ १/२॥

ब्रह्माजीद्वारा रचित पहला सर्ग महत्तत्त्वादिका है, दूसरा भौतिक सर्ग है, जो भूततन्मात्राओंका है, तीसरा ऐन्द्रियसर्ग है [ये बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुए तीन सर्ग प्राकृत सर्ग हैं] और चौथा मुख्य सर्ग वृक्ष आदिका कहा जाता है। तिर्यक् योनिवाले पशु-पक्षियोंवाला सर्ग पाँचवाँ सर्ग है तथा छठा देवताओंकी सृष्टिवाला [ऊर्ध्वस्रोताओंका] देवसर्ग कहा जाता है॥ ६-७॥

सातवाँ [अर्वाक्स्रोताओंका] सर्ग मनुष्योंका, आठवाँ अनुग्रहसर्ग है, [ये पाँच वैकृतसर्ग हैं] नौवाँ कौमार सर्ग कहा जाता है। हे विप्रो! प्राकृत तथा वैकृत ये ही नौ सर्ग हैं; जिनमें प्रारम्भके तीन सर्ग प्राकृत हैं तथा पाँच सर्ग वैकृत हैं तथा नौवाँ कौमारसर्ग प्राकृत तथा वैकृत दोनों है॥ ८॥

तदुपरान्त भगवान् ब्रह्माने सनक, सनन्दन तथा सनातन [एवं सनत्कुमार] मुनि उत्पन्न किये। ये श्रेष्ठ मुनिगण निष्काम कर्मयोगसे परमपदको प्राप्त हुए॥ ९॥

तत्पश्चात् उन्होंने अपनी योगविद्यासे मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि तथा वसिष्ठ—इन ऋषियोंको उत्पन्न किया। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! ब्रह्माजीके ये नौ [मानस] पुत्र ब्रह्मको जाननेवाले थे। ये ब्रह्मवादी ऋषि ब्रह्माके ही तुल्य कहे गये हैं। संकल्प, धर्म तथा अधर्म भी उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन अव्यक्तजन्मा ब्रह्माकी ये बारह सन्तानें कहलायीं॥ १०—१२॥

उन सनातन ब्रह्माने आदिमें ऋभु तथा सनत्कुमारको

कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ।
वक्ष्ये भार्याकुलं तेषां मुनीनामग्रजन्मनाम्॥ १४

समासतो मुनिश्रेष्ठाः प्रजासम्भूतिमेव च।
शतरूपां तु वै राज्ञीं विराजमसृजत् प्रभुः॥ १५

स्वायम्भुवात्तु वै राज्ञी शतरूपा त्वयोनिजा।
लेभे पुत्रद्वयं पुण्या तथा कन्याद्वयं च सा॥ १६

उत्तानपादो ह्यवरो धीमान् ज्येष्ठः प्रियव्रतः।
ज्येष्ठा वरिष्ठा त्वाकूतिः प्रसूतिश्चानुजा स्मृता॥ १७

उपयेमे तदाकूतिं रुचिर्नाम प्रजापतिः।
प्रसूतिं भगवान् दक्षो लोकधात्रीं च योगिनीम्॥ १८

दक्षिणासहितं यज्ञमाकूतिः सुषुवे तथा।
दक्षिणा जनयामास दिव्या द्वादशपुत्रिकाः॥ १९

प्रसूतिः सुषुवे दक्षाच्चतुर्विंशति कन्यकाः।
श्रद्धां लक्ष्मीं धृतिं पुष्टिं तुष्टिं मेधां क्रियां तथा॥ २०

बुद्धिं लज्जां वपुः शान्तिं सिद्धिं कीर्तिं महातपाः।
ख्यातिं शान्तिं च सम्भूतिं स्मृतिं प्रीतिं क्षमां तथा॥ २१

सन्नतिं चानसूयां च ऊर्जां स्वाहां सुरारणिम्।
स्वधां चैव महाभागां प्रददौ च यथाक्रमम्॥ २२

श्रद्धाद्याश्चैव कीर्त्यन्तास्त्रयोदश सुदारिकाः।
धर्मं प्रजापतिं जग्मुः पतिं परमदुर्लभाः॥ २३

उपयेमे भृगुर्धीमान् ख्यातिं तां भार्गवारणिम्।
सम्भूतिञ्च मरीचिस्तु स्मृतिं चैवाङ्गिरा मुनिः॥ २४

प्रीतिं पुलस्त्यः पुण्यात्मा क्षमां तां पुलहो मुनिः।
क्रतुश्च सन्नतिं धीमान् अत्रिस्ताञ्चानुसूयकाम्॥ २५

ऊर्जां वसिष्ठो भगवान् वरिष्ठो वारिजेक्षणाम्।
विभावसुस्तथा स्वाहां स्वधां वै पितरस्तथा॥ २६

उत्पन्न किया था। अग्रजन्मा वे दोनों दिव्य पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी, ब्रह्मवादी, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले तथा ब्रह्माके ही समान थे॥ १३½॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! अब मैं उन अग्रजन्मा मुनियोंकी भार्याओंका कुल तथा प्रजाओंकी उत्पत्तिका संक्षेपमें वर्णन करूँगा॥ १४½॥

भगवान् ब्रह्माने स्वायम्भुव मनु तथा रानी शतरूपाका सृजन किया। उस अयोनिजा तथा पुण्यशालिनी रानी शतरूपाने स्वायम्भुव मनुसे दो पुत्र एवं दो कन्याएँ* उत्पन्न कीं॥ १५-१६॥

उनमें बुद्धिसम्पन्न प्रियव्रत ज्येष्ठ तथा उत्तानपाद कनिष्ठ पुत्र थे। श्रेष्ठ गुणोंवाली आकूति ज्येष्ठ तथा प्रसूति छोटी कन्या थी॥ १७॥

रुचि नामक प्रजापतिने आकूतिको तथा दक्षप्रजापतिने जगद्धात्री योगमयी प्रसूतिको भार्याके रूपमें ग्रहण किया॥ १८॥

आकूतिने दक्षिणासहित यज्ञ नामक पुत्रको जन्म दिया और दक्षिणाने दिव्य बारह कन्याओंको उत्पन्न किया॥ १९॥

प्रसूतिने दक्षप्रजापतिसे श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति, ख्याति, शान्ति, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, देवताओंके लिये अरणिरूपा स्वाहा तथा स्वधा—इन तपोमयी चौबीस कन्याओंको उत्पन्न किया तथा इन महाभाग्यवती कन्याओंको आगे बताये गये क्रमके अनुसार महात्माजनोंको समर्पित कर दिया॥ २०—२२॥

श्रद्धासे लेकर कीर्तिपर्यन्त तेरह परम दुर्लभ सुन्दर कन्याओंने प्रजापति धर्मको पतिरूपमें प्राप्त किया। बुद्धिसम्पन्न भृगुने ख्यातिको, भार्गव शुक्राचार्यने अरणि [शान्ति]-को, मरीचिने सम्भूतिको तथा मुनि अंगिराने स्मृतिको पत्नीरूपमें ग्रहण किया॥ २३-२४॥

पुण्यात्मा पुलस्त्यने प्रीतिको, मुनि पुलहने क्षमाको, बुद्धिसम्पन्न क्रतुने सन्नतिको, अत्रिने उस अनसूयाको, श्रेष्ठ वसिष्ठने कमलके समान नेत्रोंवाली ऊर्जाको,

* यहाँ मनुकी दो पुत्रियाँ कही हैं, जबकि भागवत आदिमें '**तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे**' मनुकी तीन पुत्रियाँ प्रसिद्ध हैं। लिङ्गपुराणका वर्णन ईशानकल्पका आख्यान है और भागवतका वर्णन श्वेतवाराहकल्पका है। पुराणपठित (पुराणोक्त) सभी आख्यान सत्य हैं, कल्पभेदसे ही भिन्नताकी प्रतीति है।

पुत्रीकृता सती या सा मानसी शिवसम्भवा।
दक्षेण जगतां धात्री रुद्रमेवास्थिता पतिम्॥ २७

अर्धनारीश्वरं दृष्ट्वा सर्गादौ कनकाण्डजः।
विभजस्वेति चाहादौ यदा जाता तदाभवत्॥ २८

तस्याश्चैवांशजाः सर्वाः स्त्रियस्त्रिभुवने तथा।
एकादशविधा रुद्रास्तस्य चांशोद्भवास्तथा॥ २९

स्त्रीलिङ्गमखिलं सा वै पुंलिङ्गं नीललोहितः।
तं दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा दक्षमालोक्य सुव्रताम्॥ ३०

भजस्व धात्रीं जगतां ममापि च तवापि च।
पुन्नाम्नो नरकात्त्राति इति पुत्री त्विहोक्तितः॥ ३१

प्रशस्ता तव कान्तेयं स्यात्पुत्री विश्वमातृका।
तस्मात्पुत्री सती नाम्ना तवैषा च भविष्यति॥ ३२

एवमुक्तस्तदा दक्षो नियोगाद् ब्रह्मणो मुनिः।
लब्ध्वा पुत्रीं ददौ साक्षात् सतीं रुद्राय सादरम्॥ ३३

धर्मस्य पत्न्यः श्रद्धाद्याः कीर्तिताः वै त्रयोदश।
तासु धर्मप्रजां वक्ष्ये यथाक्रममनुत्तमम्॥ ३४

कामो दर्पोऽथ नियमः सन्तोषो लोभ एव च।
श्रुतस्तु दण्डः समयो बोधश्चैव महाद्युतिः॥ ३५

अप्रमादश्च विनयो व्यवसायो द्विजोत्तमाः।
क्षेमं सुखं यशश्चैव धर्मपुत्राश्च तासु वै॥ ३६

धर्मस्य वै क्रियायां तु दण्डः समय एव च।
अप्रमादस्तथा बोधो बुद्धेर्धर्मस्य तौ सुतौ॥ ३७

तस्मात् पञ्चदशैवैते तासु धर्मात्मजास्त्विह।
भृगुपत्नी च सुषुवे ख्यातिर्विष्णोः प्रियां श्रियम्॥ ३८

भगवान् अग्निने स्वाहादेवीको तथा पितरोंने स्वधादेवीको पत्नीरूपमें स्वीकार किया॥ २५-२६॥

दक्षप्रजापतिकी शिवसम्भवा (शिवांगसम्भूता) मानसी पुत्री सती, जो सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली हैं, ने भगवान् रुद्रको पतिरूपमें प्राप्त किया॥ २७॥

सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीने शिवजीको अर्धनारीश्वर देखकर कहा कि आप स्त्री-पुरुषका विभाग कीजिये, तब शिवजीकी देहसे सतीजी अलग हो गयीं॥ २८॥

उन्हीं सतीके अंशसे तीनों लोकमें सभी स्त्रियोंकी उत्पत्ति हुई है तथा ग्यारह प्रकारके रुद्र भी उन शिवके अंशसे उत्पन्न हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण स्त्रीजातिके रूपमें वे सतीजी तथा पुरुषजातिके रूपमें नीललोहित शिवजी अधिष्ठित हैं॥ २९ १/२॥

भगवान् ब्रह्माने सुव्रता सतीको देखकर पुनः दक्षप्रजापतिकी ओर देखकर उनसे कहा कि ये सती हमारी, आपकी तथा सम्पूर्ण जगत्की धात्री हैं, अतएव इनकी सेवा करो। पुन्नामक नरकसे पुत्री ही रक्षा करती है, यहाँपर ऐसी ही उक्ति है॥ ३०-३१॥

यह परम सुन्दरी एवं प्रशस्त तथा विश्वकी जननी आपकी ही पुत्री है। अतएव अबसे यह सती नामसे तुम्हारी पुत्री होगी॥ ३२॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर दक्षप्रजापतिने उनके आदेशसे पुत्रीरूपमें प्राप्त उन साक्षात् सतीको आदरपूर्वक भगवान् रुद्रको सौंप दिया॥ ३३॥

प्रजापति धर्मकी श्रद्धा आदि जिन तेरह पत्नियोंका वर्णन किया जा चुका है, उनसे तथा धर्मसे उत्पन्न उत्तम सन्तानोंके विषयमें अब मैं यथाक्रम कह रहा हूँ॥ ३४॥

हे उत्तम ब्राह्मणो! काम, दर्प, नियम, सन्तोष, लोभ, श्रुत, दण्ड, समय, महान् द्युतिसम्पन्न बोध, अप्रमाद, विनय, व्यवसाय, क्षेम, सुख और यश—इन पुत्रोंको उन तेरह पत्नियोंने प्रजापति धर्मसे उत्पन्न किया था। धर्मके दो पुत्र दण्ड तथा समय उनकी क्रिया नामक पत्नीसे उत्पन्न हुए और अप्रमाद तथा बोध नामक ये दो पुत्र धर्मकी बुद्धि नामक पत्नीसे उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन तेरह पत्नियोंसे धर्मके ये पन्द्रह पुत्र उत्पन्न

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

धातारञ्च विधातारं मेरोर्जामातरौ सुतौ।
प्रभूतिर्नाम या पत्नी मरीचेः सुषुवे सुतौ॥ ३९

पूर्णमासं तु मारीचं ततः कन्याचतुष्टयम्।
तुष्टिर्ज्येष्ठा च वै दृष्टिः कृषिश्चापचितिस्तथा॥ ४०

हुए। भृगुकी पत्नी ख्यातिने 'श्री' (लक्ष्मी)-को जन्म दिया, जो भगवान् विष्णुकी परम प्रिया हुईं तथा धाता एवं विधाता नामक दो पुत्र भी उत्पन्न हुए, जो मेरुपर्वतके जामाता बने। मरीचिकी प्रभूति नामक पत्नीने पूर्णमास तथा मारीच नामक दो पुत्रों तथा तुष्टि, दृष्टि, कृषि एवं अपचिति नामक चार पुत्रियोंको जन्म दिया; इनमें तुष्टि ज्येष्ठ थी॥ ३५—४०॥

क्षमा च सुषुवे पुत्रान् पुत्रीं च पुलहाच्छुभाम्।
कर्दमं च वरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमाः॥ ४१

तथा कनकपीतां स पीवरीं पृथिवीसमाम्।
प्रीत्यां पुलस्त्यश्च तथा जनयामास वै सुतान्॥ ४२

दत्तोर्णं वेदबाहुञ्च पुत्रीं चान्यां दृषद्वतीम्।
पुत्राणां षष्टिसाहस्रं सन्नतिः सुषुवे शुभा॥ ४३

क्रतोस्तु भार्या सर्वे ते बालखिल्या इति श्रुताः।
सिनीवालीं कुहूञ्चैव राकां चानुमतिं तथा॥ ४४

स्मृतिश्च सुषुवे पत्नी मुनेश्चाङ्गिरसस्तथा।
लब्ध्वानुभावमग्निञ्च कीर्तिमन्तञ्च सुव्रताः॥ ४५

हे श्रेष्ठ मुनियो! क्षमाने पुलहमुनिसे कर्दम, वरीयांस तथा सहिष्णु नामक तीन पुत्र तथा स्वर्णसदृश कान्तिवाली और पृथ्वीके समान क्षमाशील पीवरी नामकी एक पुत्रीको उत्पन्न किया था॥ ४१ ॥

पुलस्त्यऋषिने अपनी प्रीति नामक पत्नीसे दत्तोर्ण तथा वेदबाहु नामक पुत्रों तथा एक अन्य दृषद्वती नामक पुत्रीको उत्पन्न किया। क्रतुकी प्रिय पत्नी सन्नतिने साठ हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया; वे सभी बालखिल्य नामसे प्रसिद्ध हुए। हे सुव्रतो! अंगिरामुनिकी पत्नी स्मृतिसे सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति—इन चार कन्याओं तथा प्रिय स्वभाववाले कीर्तिमान् पुत्र अग्निकी उत्पत्ति हुई॥ ४२—४५॥

अत्रेर्भार्यानसूया वै सुषुवे षट् प्रजास्तु याः।
तास्त्वेका कन्यका नाम्ना श्रुतिः सा सूनुपञ्चकम्॥ ४६

सत्यनेत्रो मुनिर्भव्यो मूर्तिरापः शनैश्चरः।
सोमश्च वै श्रुतिः षष्ठी पञ्चात्रेयास्तु सूनवः॥ ४७

अत्रिकी भार्या अनसूयाने छः सन्ततियोंको जन्म दिया था। उनमें श्रुति नामधारिणी एक कन्या थी। सत्यनेत्र, मुनिर्भव्य, मूर्तिराप, शनैश्चर एवं सोम—ये पाँच पुत्र हुए, जो आत्रेय कहलाये। सभी सन्तानोंमें श्रुति छठी थी॥ ४६-४७॥

ऊर्जा वसिष्ठाद्वै लेभे सुतांश्च सुतवत्सला।
ज्यायसी पुण्डरीकाक्षान् वासिष्ठान् वरलोचना॥ ४८

रजः सुहोत्रो बाहुश्च सवनश्चानघस्तथा।
सुतपाः शुक्र इत्येते मुनेर्वै सप्त सूनवः॥ ४९

सुन्दर नेत्रोंवाली तथा पुत्रोंके प्रति स्नेहभाव रखनेवाली महिमामयी वसिष्ठपत्नी ऊर्जाने कमलके समान नेत्रवाले सात पुत्र उत्पन्न किये। रज, सुहोत्र, बाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र—ये सात पुत्र मुनि वसिष्ठसे हुए॥ ४८-४९॥

यश्चाभिमानी भगवान् भवात्मा
पैतामहो वह्निरसुः प्रजानाम्।
स्वाहा च तस्मात् सुषुवे सुतानां
त्रयं त्रयाणां जगतां हिताय॥ ५०

परम अभिमानी, रुद्ररूप, ब्रह्माके पुत्र तथा प्रजाओंके प्राणस्वरूप जो भगवान् अग्नि हैं, उनसे स्वाहाने तीनों लोकोंके कल्याणार्थ तीन पुत्र उत्पन्न किये॥ ५०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे प्रजासृष्टिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'प्रजासृष्टिवर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

अग्नि तथा पितरोंके वंशका वर्णन, ब्रह्माजीसे रुद्रोंका प्रादुर्भाव, परमेष्ठी सदाशिवकी महिमा

सूत उवाच

पवमानः पावकश्च शुचिरग्निश्च ते स्मृताः।
निर्मथ्यः पवमानस्तु वैद्युतः पावकः स्मृतः॥ १

शुचिः सौरस्तु विज्ञेयः स्वाहा पुत्रास्त्रयस्तु ते।
पुत्रैः पौत्रैस्त्विहैतेषां संख्या सङ्क्षेपतः स्मृता॥ २

विसृज्य सप्तकं चादौ चत्वारिंशन्नवैव च।
इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेऽध्वरेषु च॥ ३

सर्वे तपस्विनस्त्वेते सर्वे व्रतभृतः स्मृताः।
प्रजानां पतयः सर्वे सर्वे रुद्रात्मकाः स्मृताः॥ ४

अयज्वानश्च यज्वानः पितरः प्रीतिमानसाः।
अग्निष्वात्ताश्च यज्वानः शेषा बर्हिषदः स्मृताः॥ ५

मेनां तु मानसीं तेषां जनयामास वै स्वधा।
अग्निष्वात्तात्मजा मेना मानसी लोकविश्रुता॥ ६

असूत मेना मैनाकं क्रौञ्चं तस्यानुजामुमाम्।
गङ्गां हैमवतीं जज्ञे भवाङ्गाश्लेषपावनीम्॥ ७

धरणीं जनयामास मानसीं यज्ञयाजिनीम्।
स्वधा सा मेरुराजस्य पत्नी पद्मसमानना॥ ८

पितरोऽमृतपाः प्रोक्तास्तेषां चैवेह विस्तरः।
ऋषीणाञ्च कुलं सर्वं शृणुध्वं तत्सुविस्तरम्॥ ९

वदामि पृथगध्यायसंस्थितं वस्तदूर्ध्वतः।
दाक्षायणी सती याता पार्श्वं रुद्रस्य पार्वती॥ १०

पश्चाद्दक्षं विनिन्द्यैषा पतिं लेभे भवं तथा।
तां ध्यात्वा ह्यसृजद्रुद्राननेकान्नीललोहितः॥ ११

सूतजी बोले—अग्निके वे तीन पुत्र पवमान, पावक तथा शुचि नामसे विख्यात हुए। अरणी आदिमें घर्षणसे पवमान, विद्युत्से पावक तथा सूर्य-प्रभासे शुचिका आविर्भाव हुआ। ये तीनों स्वाहाके पुत्र हैं। अब यहाँ पुत्रों तथा पौत्रोंको मिलाकर इनकी संख्या संक्षेपमें बतायी जाती है॥ १-२॥

आदिमें सप्तकका त्याग करके कुल उनचास अग्नियाँ कही गयी हैं। ये यज्ञोंमें आराधित की जाती हैं॥ ३॥

ये सभी तपस्वी, व्रतधारी, प्रजाओंके पति तथा रुद्रस्वरूप कहे गये हैं॥ ४॥

अयज्वा तथा यज्वा—ये दो प्रकारके प्रसन्न मनवाले पितर हैं। उनमें यज्वा (यज्ञ करनेवाले) पितरोंको अग्निष्वात्त तथा अयज्वा पितरोंको बर्हिषद कहा जाता है॥ ५॥

स्वधाने उन अग्निष्वात्त पितरोंसे मेना नामक मानसी कन्या उत्पन्न की। अग्निष्वात्त पितरोंकी वह मानसी पुत्री मेना लोकमें अतीव प्रसिद्ध हुई॥ ६॥

मेनाने मैनाक, क्रौञ्च, उसकी अनुजा उमा तथा शिवजीके अंग-श्लेषके कारण (मस्तकपर विराजमान रहनेके कारण) जगत्को पवित्र करनेका गुण रखनेवाली हैमवती गंगाको उत्पन्न किया॥ ७॥

कमलके समान मुखवाली मेरुराजपत्नी स्वधाने यज्ञानुष्ठानमें प्रवृत्त रहनेवाली धरणी नामक मानसी पुत्रीको जन्म दिया। यहाँ अमृतपान करनेवाले पितरों तथा ऋषियोंके कुलका विस्तार दिया जा रहा है; आप लोग उसे विस्तारपूर्वक सुनिये॥ ८-९॥

अब मैं आप सबसे पूर्वनिरूपित विषयका पुनः पृथक् अध्यायमें वर्णन करता हूँ। दक्षकन्या सतीका विवाह रुद्रके साथ हुआ और वे उनके साथ चली गयीं। फिर इन्हीं सतीने दक्षके यज्ञका विध्वंस करके अपना देहत्याग कर दिया। इसके बाद पार्वतीरूपमें पुनः शिवजीको पतिके रूपमें प्राप्त किया॥ १०½॥

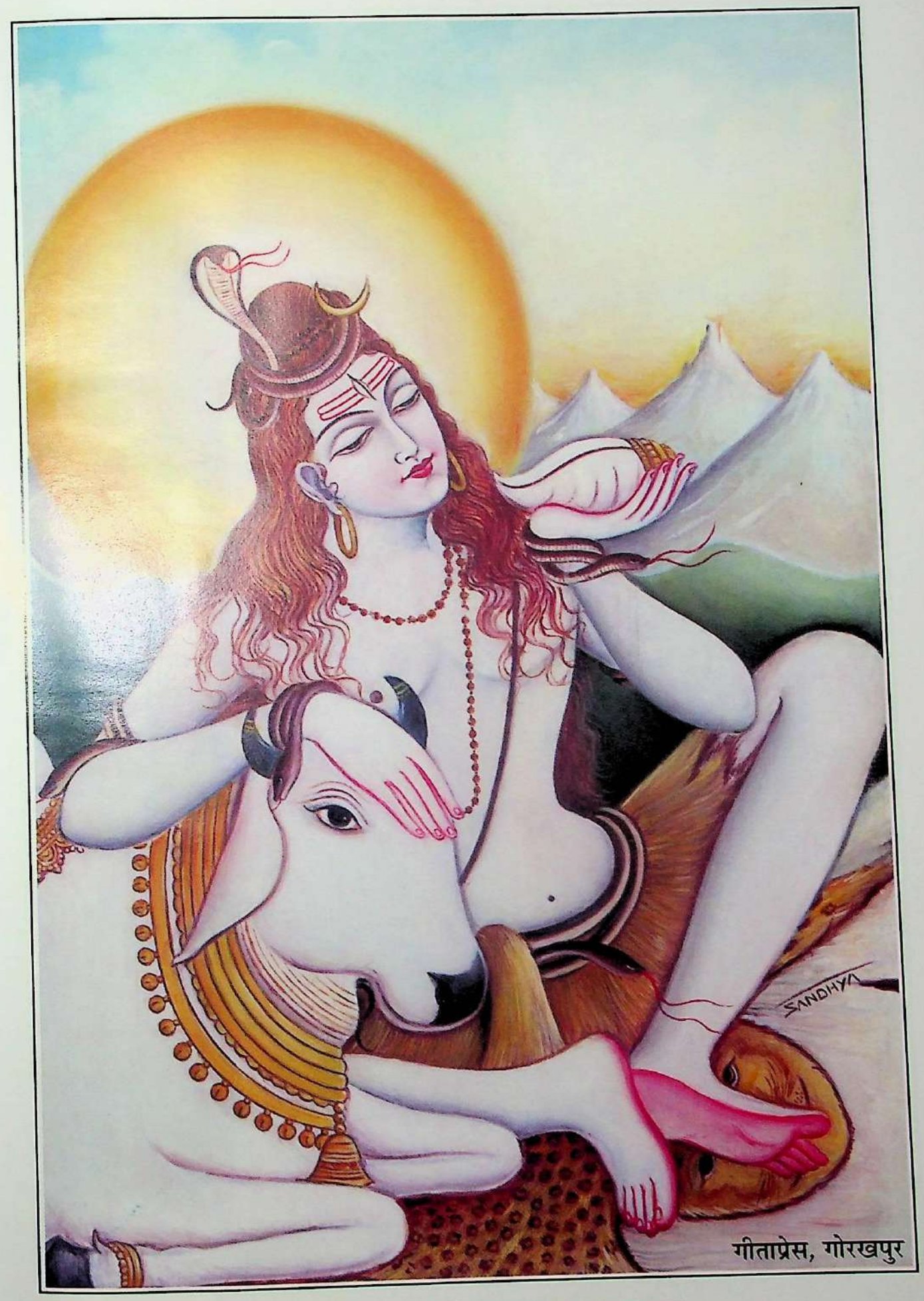

जगत्‌की रक्षाके लिये भगवान्‌का हलाहलपान

हैमवती भगवती उमा

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

ब्रह्मा तथा विष्णुके समक्ष लिङ्गरूप महामहेश्वरका प्राकट्य

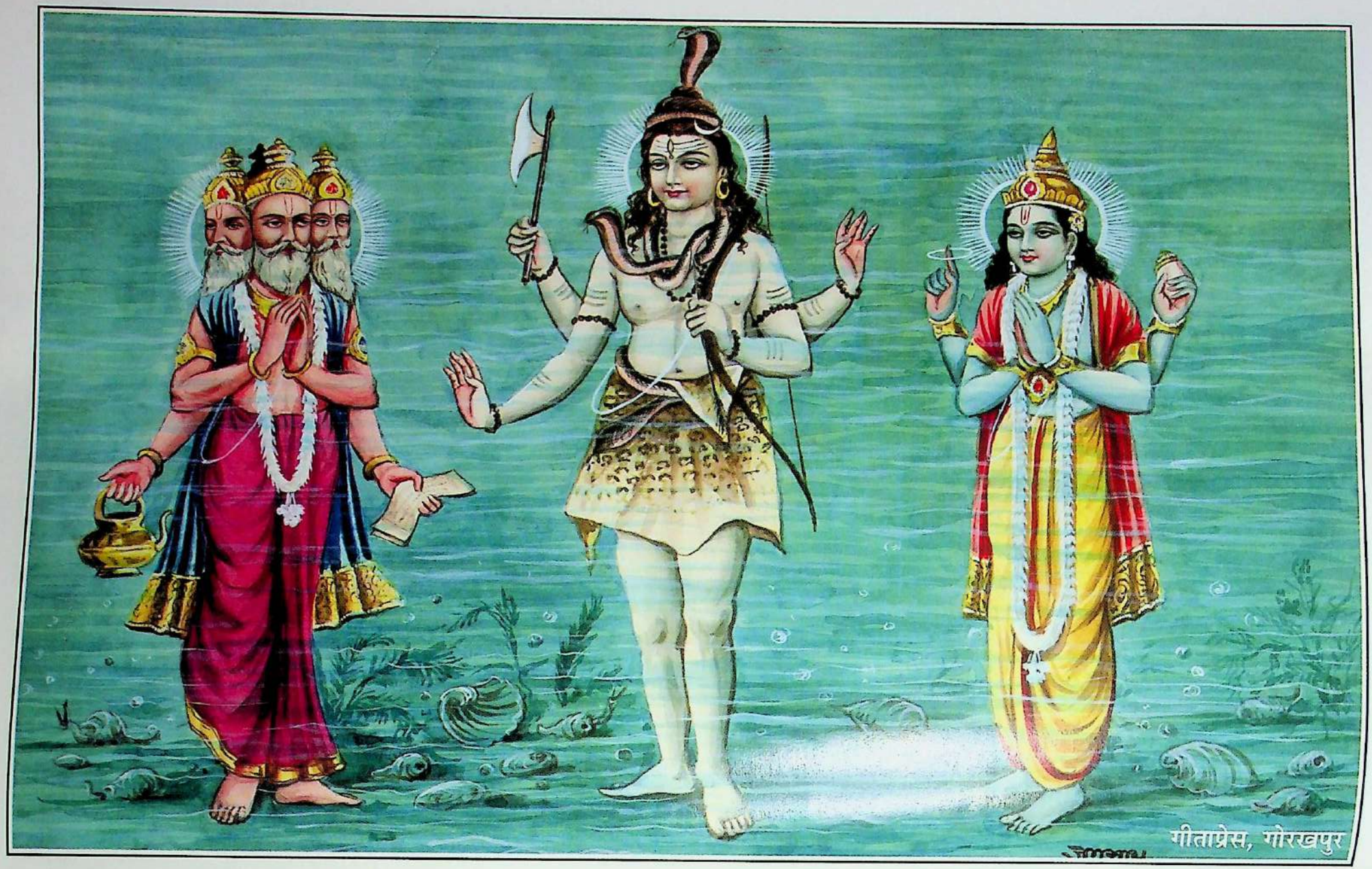

ब्रह्मा तथा विष्णुद्वारा भगवान् शिवका स्तवन

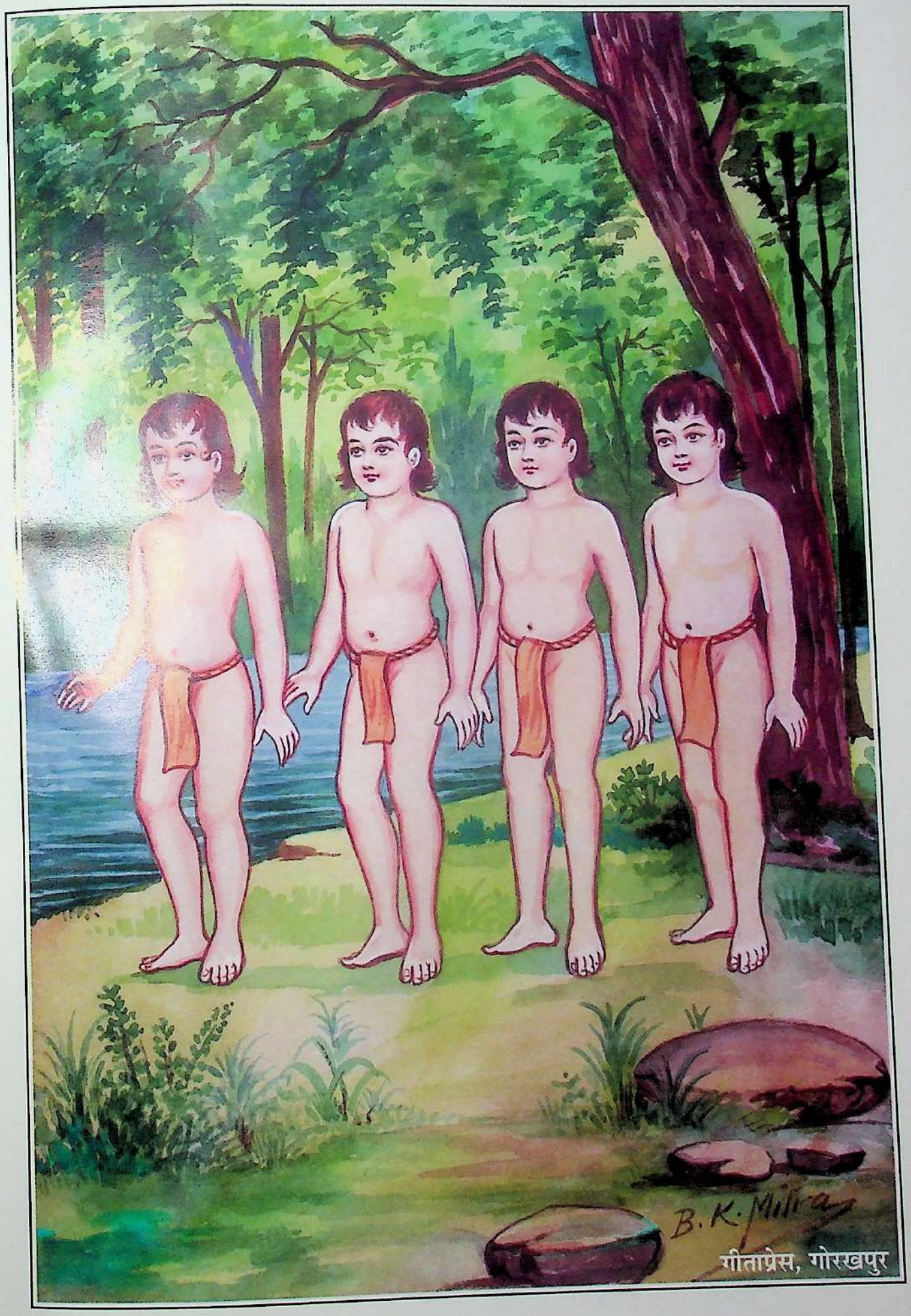

ब्रह्माजीके मानसपुत्र सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार

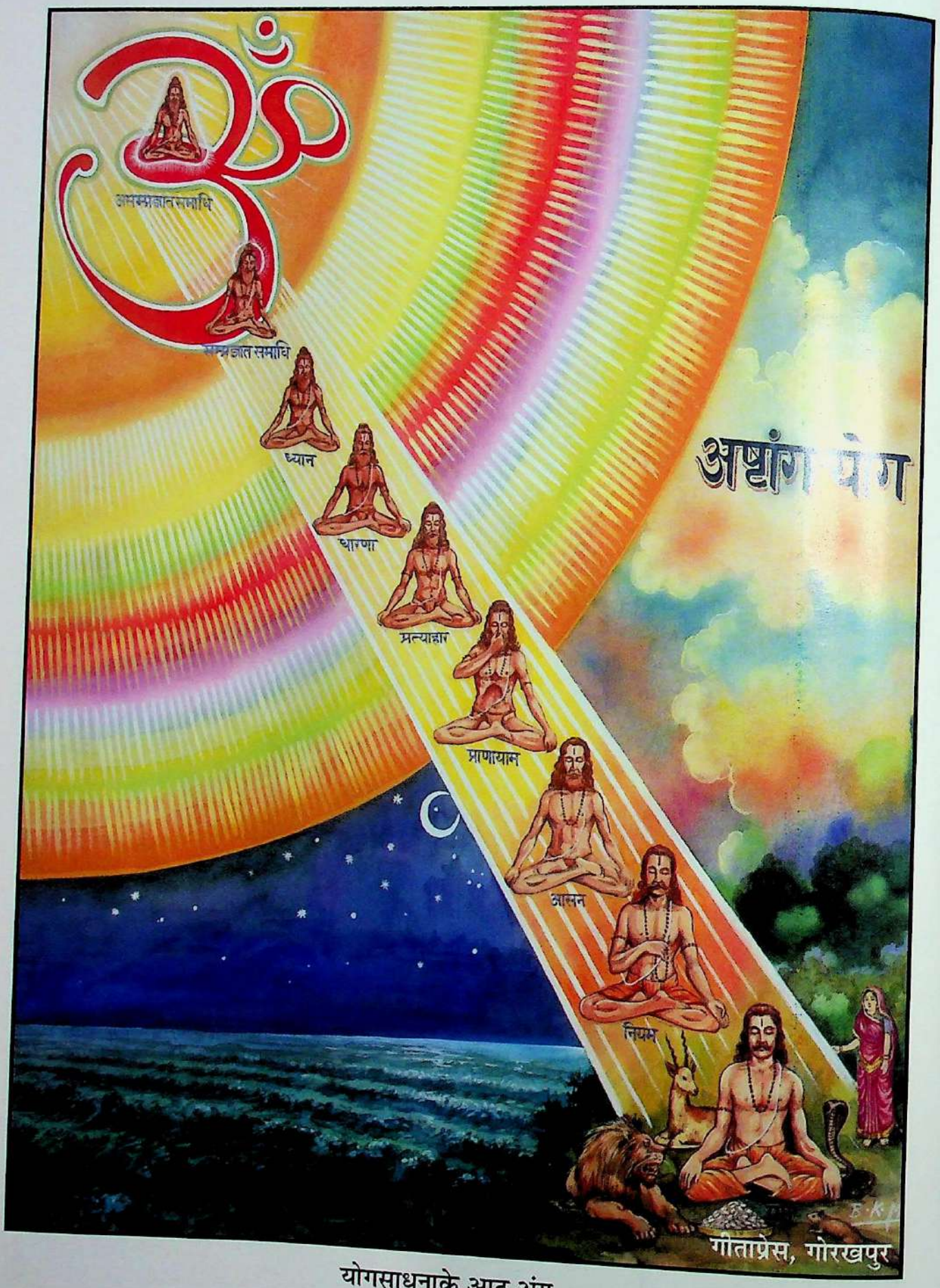

योगसाधनाके आठ अंग

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

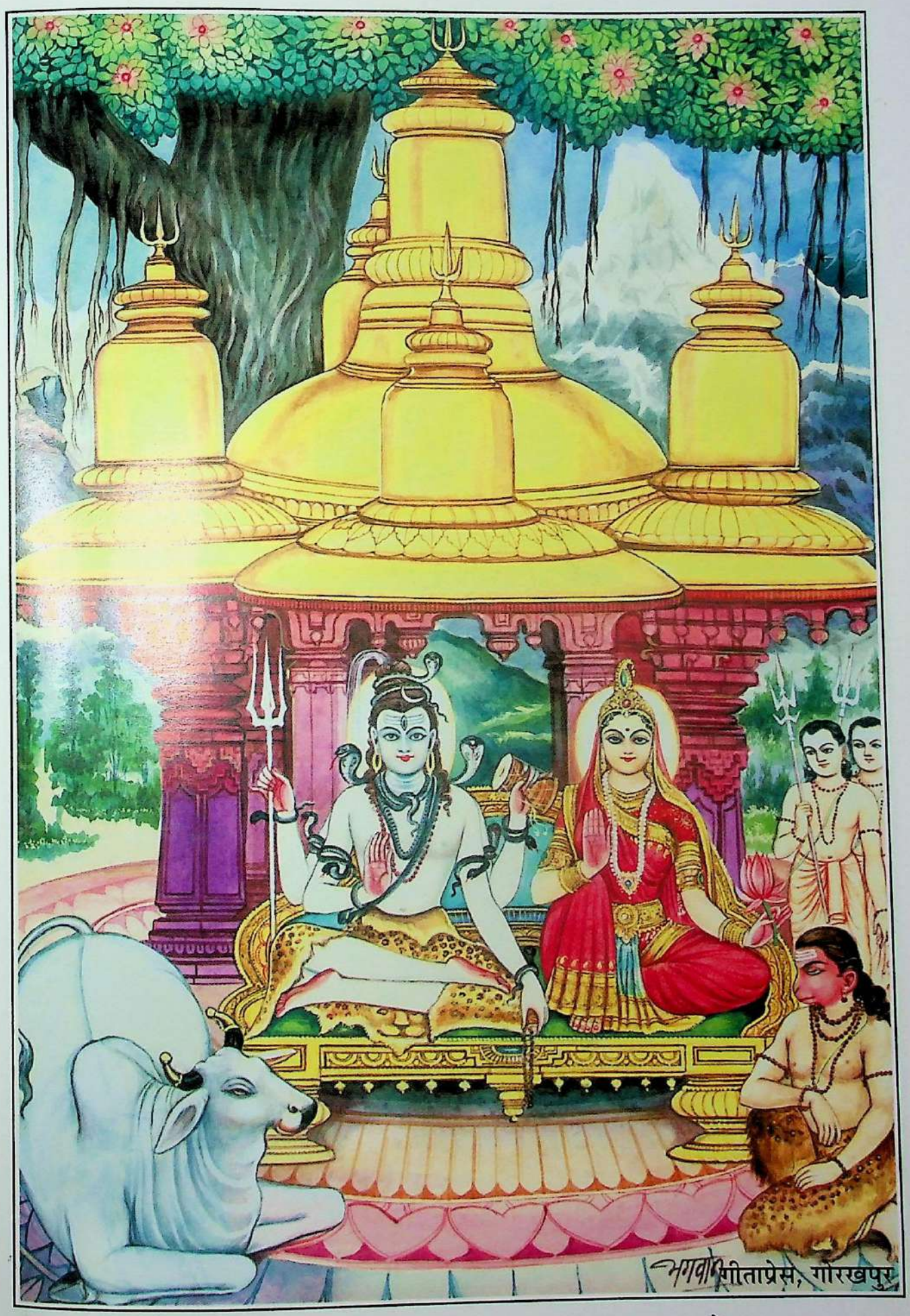

दिव्य कैलासधाममें परिकरोंसहित विराजमान भगवान् उमा-महेश्वर

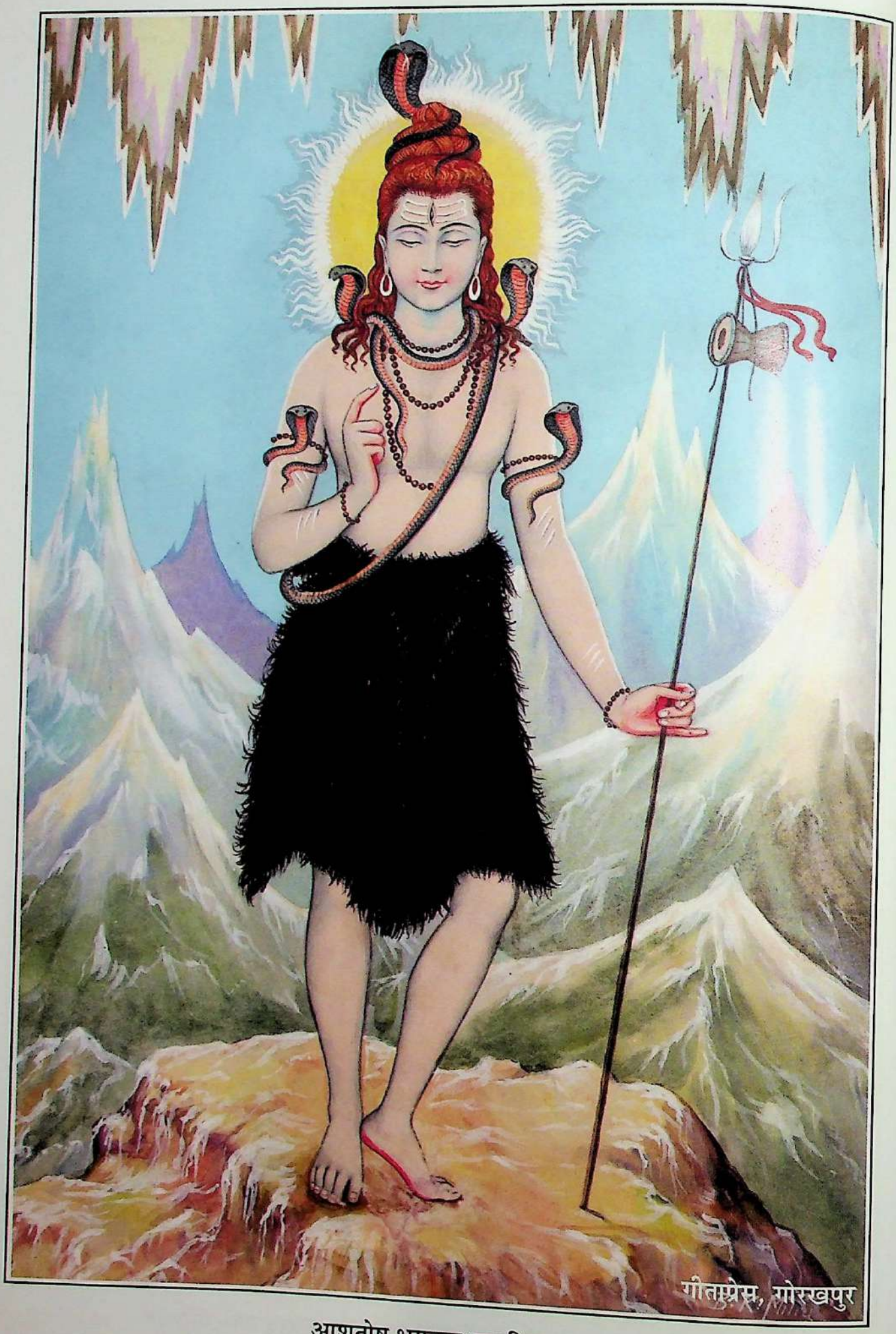

आशुतोष भगवान् सदाशिव

आत्मनस्तु समान् सर्वान् सर्वलोकनमस्कृतान्।
याचितो मुनिशार्दूला ब्रह्मणा प्रहसन् क्षणात्॥ १२

तैस्तु संच्छादितं सर्वं चतुर्दशविधं जगत्।
तान्दृष्ट्वा विविधान् रुद्रान्निर्मलान्नीललोहितान्॥ १३

जरामरणनिर्मुक्तान् प्राह रुद्रान् पितामहः।
नमोऽस्तु वो महादेवास्त्रिनेत्रा नीललोहिताः॥ १४

सर्वज्ञाः सर्वगा दीर्घा ह्रस्वा वामनकाः शुभाः।
हिरण्यकेशा दृष्टिघ्ना नित्या बुद्धाश्च निर्मलाः॥ १५

निर्द्वन्द्वा वीतरागाश्च विश्वात्मानो भवात्मजाः।
एवं स्तुत्वा तदा रुद्रान् रुद्रं चाह भवं शिवम्।
प्रदक्षिणीकृत्य तदा भगवान् कनकाण्डजः॥ १६

नमोऽस्तु ते महादेव प्रजा नार्हसि शङ्कर।
मृत्युहीना विभोः स्रष्टुं मृत्युयुक्ताः सृज प्रभो॥ १७

ततस्तमाह भगवान् नहि मे तादृशी स्थितिः।
स त्वं सृज यथाकामं मृत्युयुक्ताः प्रजाः प्रभो॥ १८

लब्ध्वा ससर्ज सकलं शङ्कराच्चतुराननः।
जरामरणसंयुक्तं जगदेतच्चराचरम्॥ १९

शङ्करोऽपि तदा रुद्रैर्निवृत्तात्मा ह्यधिष्ठितः।
स्थाणुत्वं तस्य वै विप्राः शङ्करस्य महात्मनः॥ २०

निष्कलस्यात्मनः शम्भोः स्वेच्छाधृतशरीरिणः।
शं रुद्रः सर्वभूतानां करोति घृणया यतः॥ २१

हे मुनिशार्दूलो! उन (पार्वती)-का ध्यान करके ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर नीललोहित महादेवजीने क्षण-भरमें लीलापूर्वक अपने ही तुल्य तथा समस्त लोकोंके वन्दनीय अनेक रुद्र उत्पन्न कर दिये। उन रुद्रोंने सभी चौदह भुवनोंको पूर्णरूपेण व्याप्त कर लिया॥ ११-१२$^{१}/_{२}$॥

जरा-मरणसे मुक्त तथा निर्मल आत्मावाले उन विविध नीललोहित रुद्रोंको देखकर पितामह ब्रह्माजीने उनसे कहा॥ १३$^{१}/_{२}$॥

हे त्रिनेत्रधारी नीललोहित महादेवो! आप सभीको नमस्कार है। आप सभी सर्वज्ञ हैं, सर्वव्यापी हैं, दीर्घ-ह्रस्व-वामन (बौना)-रूप धारण करनेवाले हैं, शुभ हैं, हिरण्यकेश हैं, दृष्टिघ्न हैं, नित्य हैं, चेतनायुक्त हैं, निर्मल आत्मावाले हैं, द्वन्द्वरहित हैं, वीतराग हैं, विश्वकी आत्मा हैं तथा शिवजीके आत्मज हैं। इस प्रकार उन रुद्रोंकी अनेकविध स्तुति करके कनकाण्डज (हिरण्यगर्भ) भगवान् ब्रह्माने शिवजीकी प्रदक्षिणाकर उन भवरूप शिवसे कहा॥ १४—१६॥

हे महादेव! आपको नमस्कार है। हे प्रभो! हे शंकर! आपने तो अमर प्रजाओंको उत्पन्न कर दिया; ऐसी मृत्युहीन प्रजाकी सृष्टि उचित नहीं है। अतएव हे विभो! अब आप मरणधर्मा प्रजाओंका सृजन करनेकी कृपा करें॥ १७॥

तब भगवान् शंकरने ब्रह्मासे कहा—हे प्रभो! उस प्रकारकी (मरणधर्मा) सृष्टि करनेकी मेरी स्थिति नहीं है। अतएव आप ही मृत्युसे युक्त रहनेवाली प्रजाका अपने इच्छानुसार सृजन कीजिये॥ १८॥

भगवान् शंकरकी ऐसी आज्ञा प्राप्तकर चतुरानन ब्रह्माने जरा-मरणसे युक्त इस सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत्की रचना की॥ १९॥

भगवान् शंकर भी उस समय रुद्रों (रुद्रात्मक सृष्टिके सृजन)-से निवृत्त आत्मावाले होकर अधिष्ठित हो गये। हे विप्रो! निष्कल आत्मावाले तथा अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाले उन महात्मा शंकरका

शङ्करश्चाप्रयत्नेन तदात्मा योगविद्यया।
वैराग्यस्थं विरक्तस्य विमुक्तिर्यच्छमुच्यते॥ २२

अणोस्तु विषयत्यागः संसारभयतः क्रमात्।
वैराग्याज्जायते पुंसो विरागो दर्शनान्तरे॥ २३

विमुख्यो विगुणत्यागो विज्ञानस्याविचारतः।
तस्य चास्य च सन्धानं प्रसादात् परमेष्ठिनः॥ २४

धर्मो ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यं शङ्करादिह।
स एव शङ्करः साक्षात् पिनाकी नीललोहितः॥ २५

ये शङ्कराश्रिताः सर्वे मुच्यन्ते ते न संशयः।
न गच्छन्त्येव नरकं पापिष्ठा अपि दारुणम्॥ २६

आश्रिताः शङ्करं तस्मात्प्राप्नुवन्ति च शाश्वतम्।

ऋषय ऊचुः

मायान्ताश्चैव घोराद्या ह्यष्टाविंशतिरेव च॥ २७

कोटयो नरकाणान्तु पच्यन्ते तासु पापिनः।
अनाश्रिताः शिवं रुद्रं शङ्करं नीललोहितम्॥ २८

आश्रयं सर्वभूतानामव्ययं जगतां पतिम्।
पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्॥ २९

स्थाणुत्व हो गया। इसीलिये वे भगवान् रुद्र दयार्द्र होकर सभी प्राणियोंका कल्याण करते हैं॥ २०-२१॥

भगवान् शंकरकी आत्मा बिना प्रयत्नके ही कल्याण करनेवाली है। वे योगविद्याके द्वारा वैराग्यमें स्थित रहते हैं। विरक्त पुरुषकी मुक्तिको ही कल्याण कहा जाता है॥ २२॥

स्वल्प विषयोंका त्याग करके प्राणी सांसारिक भयसे मुक्त होकर क्रमसे वैराग्यको प्राप्त होता है और उस वैराग्यसे उस विरागी पुरुषको अन्तमें शिवजीका साक्षात् दर्शन प्राप्त होता है॥ २३॥

संसारनिवर्तक आत्मानात्मविवेकरूप विशिष्ट ज्ञानका विचार किये बिना जो क्षणिक विषयत्याग है, वह ज्ञानरहित होनेसे अस्थायी है, अतएव विमुख्य [अप्रशंस्य] है। उस सत्, असत् वस्तु-विवेकरूप विचार तथा इस (सांसारिक) विषयोंके त्यागका एक साथ होना परमेष्ठी सदाशिवके कृपाप्रसादसे ही सम्भव है॥ २४॥

इस लोकमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य शिवजीकी कृपासे प्राप्त होते हैं। वे कल्याण करनेके कारण शंकर हैं, पिनाक नामक धनुष धारण करनेके कारण पिनाकी हैं तथा उनका कण्ठ नीला एवं देह लाल होनेके कारण नीललोहित हैं॥ २५॥

जो प्राणी शंकरजीका आश्रय ग्रहण करते हैं अर्थात् उनके शरणागत होते हैं, वे सभी मुक्ति प्राप्त करते हैं। भगवान् शंकरके आश्रित महान् पापी भी अत्यन्त भयावह नरकको नहीं प्राप्त होते हैं। वे शिवजीके शाश्वत पदको पा जाते हैं। इस विषयमें कोई भी संदेह नहीं है॥ २६ १/२॥

ऋषिगण बोले—अहंकार (घोर)-से लेकर मायापर्यन्त विभिन्न प्रकारके कुल अट्ठाईस करोड़ नरक हैं; उनमें जाकर पापी प्राणी अपने द्वारा किये गये कर्मोंके फल भोगते हैं। ये वही प्राणी होते हैं, जो शिव, रुद्र, शंकर, नीललोहित, सभी प्राणियोंके आश्रय, अव्यय, जगत्पति, विराट् पुरुष, परमात्मा, पुरुहूत,

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम्॥ ३०

पुरुष्टुत, तमोगुणकी प्रधानता होनेपर कालरुद्ररूप, रजोगुणकी प्रधानता होनेपर ब्रह्मारूप, सत्त्वगुणकी प्रधानता होनेपर सर्वव्यापी विष्णुरूप तथा गुणरहित होनेपर महेश्वर-रूप भगवान् महादेवजीका आश्रय ग्रहण नहीं किये होते हैं॥ २७—३०॥

केन गच्छन्ति नरकं नराः केन महामते।
कर्मणाकर्मणा वापि श्रोतुं कौतूहलं हि नः॥ ३१

हे महामते! अब हम लोगोंकी यह सुननेकी उत्कट अभिलाषा है कि किन-किन कर्मोंके करने अथवा न करनेसे मनुष्य नरकको प्राप्त होते हैं॥ ३१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शङ्करमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शंकरमाहात्म्यवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

माहेश्वरयोगका प्रतिपादन, अट्ठाईस व्यासों तथा चौदह मनुओंकी नामावली, विभिन्न युगोंमें हुए माहेश्वरयोगावतारोंका वर्णन

सूत उवाच

रहस्यं वः प्रवक्ष्यामि भवस्यामिततेजसः।
प्रभावं शङ्करस्याद्यं सङ्क्षेपात् सर्वदर्शिनः॥ १

सूतजी बोले—[हे मुनीश्वरो!] अब मैं संक्षेपमें अमित तेजवाले, सर्वतत्त्वदर्शी भगवान् शंकरके रहस्य तथा श्रेष्ठ प्रभावका वर्णन करूँगा॥ १॥

योगिनः सर्वतत्त्वज्ञाः परं वैराग्यमास्थिताः।
प्राणायामादिभिश्चाष्टसाधनैः सहचारिणः॥ २

करुणादिगुणोपेताः कृत्वापि विविधानि ते।
कर्माणि नरकं स्वर्गं गच्छन्त्येव स्वकर्मणा॥ ३

सभी तत्त्वोंको जाननेवाले, परम वैराग्यको प्राप्त, प्राणायाम आदि योगके आठ साधनोंसे युक्त तथा करुणा आदि गुणोंसे सम्पन्न बड़े-बड़े योगिजन नानाविध कर्म करके भी अपने कर्मानुसार नरक तथा स्वर्गमें जाते हैं॥ २-३॥

प्रसादाज्जायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्तते।
योगेन जायते मुक्तिः प्रसादादखिलं ततः॥ ४

भगवान् शंकरकी अनुकम्पासे ज्ञान उत्पन्न होता है, ज्ञानसे योगमें प्रवृत्ति होती है और योगसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार उन्हीं शिवजीकी कृपासे सब कुछ सिद्ध होता है॥ ४॥

ऋषय ऊचुः

प्रसादाद् यदि विज्ञानं स्वरूपं वक्तुमर्हसि।
दिव्यं माहेश्वरञ्चैव योगं योगविदां वर॥ ५

ऋषिगण बोले—हे योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! शिवजीकी कृपासे ही यदि विशिष्ट ज्ञान तथा योग होता है, तो उस ज्ञानस्वरूप दिव्य माहेश्वरयोगका आप वर्णन कीजिये॥ ५॥

कथं करोति भगवान् चिन्तया रहितः शिवः।
प्रसादं योगमार्गेण कस्मिन् काले नृणां विभुः॥ ६

विभुतासम्पन्न तथा चिन्तारहित भगवान् शिव योगमार्गके द्वारा किस प्रकार तथा किस कालमें प्राणियोंके ऊपर अनुग्रह करते हैं?॥ ६॥

रोमहर्षण उवाच

देवानाञ्च ऋषीणाञ्च पितॄणां सन्निधौ पुरा।
शैलादिना तु कथितं शृण्वन्तु ब्रह्मसूनवे॥ ७

सूतजी बोले—प्राचीनकालमें देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंकी सन्निधिमें शिलादपुत्र नन्दीके द्वारा ब्रह्मापुत्र सनत्कुमारसे जिस योगके विषयमें कहा गया था, उसे आपलोग सुनें॥ ७॥

व्यासावताराणि तथा द्वापरान्ते च सुव्रताः।
योगाचार्यावताराणि तथा तिष्ये तु शूलिनः॥ ८
तत्र तत्र विभोः शिष्याश्चत्वारः शमभाजनाः।
प्रशिष्या बहवस्तेषां प्रसीदत्येवमीश्वरः॥ ९
एवं क्रमागतं ज्ञानं मुखादेव नृणां विभोः।
वैश्यान्तं ब्राह्मणाद्यं हि घृणया चानुरूपतः॥ १०

ऋषय ऊचुः

द्वापरे द्वापरे व्यासाः के वै कुत्रान्तरेषु वै।
कल्पेषु कस्मिन् कल्पे नो वक्तुमर्हसि चात्र तान्॥ ११

सूत उवाच

शृण्वन्तु कल्पे वाराहे द्विजा वैवस्वतान्तरे।
व्यासांश्च साम्प्रतं रुद्रांस्तथा सर्वान्तरेषु वै॥ १२
वेदानाञ्च पुराणानां तथा ज्ञानप्रदर्शकान्।
यथाक्रमं प्रवक्ष्यामि सर्वावर्तेषु साम्प्रतम्॥ १३
क्रतुः सत्यो भार्गवश्च अङ्गिराः सविता द्विजाः।
मृत्युः शतक्रतुर्धीमान् वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः॥ १४
सारस्वतस्त्रिधामा च त्रिवृतो मुनिपुङ्गवः।
शततेजाः स्वयं धर्मो नारायण इति श्रुतः॥ १५
तरक्षुश्चारुणिर्धीमांस्तथा देवः कृतञ्जयः।
ऋतञ्जयो भरद्वाजो गौतमः कविसत्तमः॥ १६
वाचःश्रवाः मुनिः साक्षात्तथा शुष्मायणिः शुचिः।
तृणबिन्दुर्मुनी रुक्षः शक्तिः शाक्तेय उत्तरः॥ १७
जातूकर्ण्यो हरिः साक्षात् कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
व्यासास्त्वेते च शृण्वन्तु कलौ योगेश्वरान् क्रमात्॥ १८
असंख्याता हि कल्पेषु विभोः सर्वान्तरेषु च।
कलौ रुद्रावताराणां व्यासानां किल गौरवात्॥ १९
वैवस्वतान्तरे कल्पे वाराहे ये च तान् पुनः।
अवतारान् प्रवक्ष्यामि तथा सर्वान्तरेषु वै॥ २०

ऋषय ऊचुः

मन्वन्तराणि वाराहे वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्।
तथैव चोर्ध्वकल्पेषु सिद्धान् वैवस्वतान्तरे॥ २१

रोमहर्षण उवाच

मनुः स्वायम्भुवस्त्वाद्यस्ततः स्वारोचिषो द्विजाः।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥ २२

हे सुव्रत ऋषियो! द्वापरके अन्तमें व्यासके अवतार, योगाचार्योंके अवतार तथा कलियुगमें शिवजीके अवतार, प्रभुके पवित्र अन्तःकरणवाले चार शिष्य और बहुतसे प्रशिष्य हुए—वे सब महेश्वरकी कृपासे ही योगमें प्रवृत्त हुए॥ ८-९॥

इस प्रकार वह ज्ञान क्रमशः शिष्य-परम्पराके माध्यमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंको भगवान् शिवकी कृपासे उनके मुखसे प्राप्त हुआ॥ १०॥

ऋषिगण बोले—प्रत्येक द्वापरमें, किन-किन कल्पोंमें तथा किन मन्वन्तरोंमें कौन-कौन व्यास हुए हैं? आप उनके विषयमें हमलोगोंको बताइये॥ ११॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! वर्तमान वाराह कल्प तथा वैवस्वत मन्वन्तरमें एवं अन्य मन्वन्तरोंमें भी जो व्यास तथा रुद्र हुए हैं, उन सभी ज्ञानप्रदर्शक महात्माओंके विषयमें वेदों तथा पुराणोंके अनुसार मैं यथाक्रम कहता हूँ; आपलोग सुनिये॥ १२-१३॥

हे द्विजो! क्रतु, सत्य, भार्गव, अंगिरा, सविता, मृत्यु, बुद्धिसम्पन्न शतक्रतु, मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामा, मुनिवर त्रिवृत, शततेजा, साक्षात् धर्मस्वरूप नारायण, तरक्षु, बुद्धियुक्त अरुणि, देव, कृतंजय, ऋतंजय, भरद्वाज, कविश्रेष्ठ गौतम, साक्षात् मुनिस्वरूप वाचःश्रवा, परम पावन शुष्मायणि, मुनि तृणबिन्दु, रुक्ष, शक्ति, शक्तिपुत्र पराशर, जातूकर्ण्य तथा साक्षात् विष्णुस्वरूप मुनि कृष्णद्वैपायन—ये अट्ठाईस व्यास हुए। इसी प्रकार कलियुगमें क्रमसे जो योगेश्वर हुए, कल्पोंमें तथा सभी मन्वन्तरोंमें महेश्वरके जो असंख्य अवतार हुए, कलिमें विशेष महिमाके कारण रुद्रों तथा व्यासोंके जो अवतार हुए एवं श्वेतवाराह कल्पके वैवस्वत मन्वन्तरमें तथा अन्य मन्वन्तरोंमें जो अवतार हुए—उन सभीके विषयमें मैं आप लोगोंको बताऊँगा; आप सब सुनें॥ १४—२०॥

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] सर्वप्रथम आप वाराह कल्प तथा अन्य कल्पोंके मन्वन्तरोंका वर्णन कीजिये। तत्पश्चात् वैवस्वत मन्वन्तरमें हो चुके सिद्धोंके विषयमें बताइये॥ २१॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! आदिमनु स्वायम्भुव मनु हैं, उनके बाद स्वारोचिष मनु हुए। इसी प्रकार

वैवस्वतश्च सावर्णिर्धर्मः सावर्णिकः पुनः।
पिशङ्गश्चापिशङ्गाभः शबलो वर्णकस्तथा॥ २३

औकारान्ता अकाराद्या मनवः परिकीर्तिताः।
श्वेतः पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रः पीतश्च कापिलः॥ २४

कृष्णः श्यामस्तथा धूम्रः सुधूम्रश्च द्विजोत्तमाः।
अपिशङ्गः पिशङ्गश्च त्रिवर्णः शबलस्तथा॥ २५

कालन्धुरस्तु कथिता वर्णतो मनवः शुभाः।
नामतो वर्णतश्चैव वर्णतः पुनरेव च॥ २६

स्वरात्मानः समाख्याताश्चान्तरेशाः समासतः।
वैवस्वत ऋकारस्तु मनुः कृष्णः सुरेश्वरः॥ २७

सप्तमस्तस्य वक्ष्यामि युगावर्तेषु योगिनः।
समतीतेषु कल्पेषु तथा चानागतेषु वै॥ २८

वाराहः साम्प्रतं ज्ञेयः सप्तमान्तरतः क्रमात्।
योगावतारांश्च विभोः शिष्याणां सन्ततिस्तथा॥ २९

सम्प्रेक्ष्य सर्वकालेषु तथावर्तेषु योगिनाम्।
आद्ये श्वेतः कलौ रुद्रः सुतारो मदनस्तथा॥ ३०

सुहोत्रः कङ्कणश्चैव लोगाक्षिर्मुनिसत्तमाः।
जैगीषव्यो महातेजा भगवान् दधिवाहनः॥ ३१

ऋषभश्च मुनिर्धीमानुग्रश्चात्रिः सुबालकः।
गौतमश्चाथ भगवान् सर्वदेवनमस्कृतः॥ ३२

वेदशीर्षश्च गोकर्णो गुहावासी शिखण्डभृत्।
जटामाल्यट्टहासश्च दारुको लाङ्गली तथा॥ ३३

महाकायमुनिः शूली दण्डी मुण्डीश्वरः स्वयम्।
सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलीशो जगद्गुरुः॥ ३४

वैवस्वतेऽन्तरे सम्यक् प्रोक्ता हि परमात्मनः।
योगाचार्यावतारा ये सर्वावर्तेषु सुव्रताः॥ ३५

व्यासाश्चैवं मुनिश्रेष्ठा द्वापरे द्वापरे त्विमे।
योगेश्वराणां चत्वारः शिष्याः प्रत्येकमव्ययाः॥ ३६

श्वेतः श्वेतशिखण्डी च श्वेताश्वः श्वेतलोहितः।
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा॥ ३७

क्रमसे उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, धर्म, सावर्णिक, पिशंग, अपिशंगाभ, शबल तथा वर्णक—ये अकारसे लेकर औकारपर्यन्त चौदह स्वरोंके रूपवाले चौदह मनु कहे गये हैं। हे उत्तम ब्राह्मणो! श्वेत, पाण्डु, रक्त, ताम्र, पीत, कापिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, सुधूम्र, अपिशंग, पिशंग, त्रिवर्ण शबल तथा कालन्धुर—ये चौदह वर्ण (रंग) उन पवित्र मनुओंके कहे गये हैं। इस प्रकार वे चौदह मनु स्वायम्भुव आदि नामोंसे, अकार आदि वर्णोंसे तथा श्वेत आदि वर्णों (रंगों)-से अभिहित किये गये हैं॥ २२—२६॥

सभी मन्वन्तराधिपति संक्षेपमें स्वरात्मक कहे गये हैं। ये वर्तमान सुरेश्वर वैवस्वत मनु ऋकाररूप, कृष्णवर्ण तथा क्रममें सातवें हैं। बीते हुए तथा अनागत कल्पोंमें युगके आवर्तनोंपर आनेवाले योगिरूप उस वैवस्वत मनुके बारेमें मैं बताता हूँ॥ २७-२८॥

वर्तमान कल्पको श्वेतवाराह कल्प जानना चाहिये। अब मैं इस कल्पके सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें महेश्वरके योगावतारों तथा शिष्यों-प्रशिष्योंका वर्णन करता हूँ॥ २९॥

सभी कालोंमें तथा युगावर्तनोंमें योगावतारोंको भलीभाँति समझकर उन्हें बताता हूँ। आदि कलि अर्थात् स्वायम्भुव मनुके प्रथम कलिमें रुद्रका 'श्वेत' नामक अवतार हुआ; इसके बाद हे श्रेष्ठ मुनियो! क्रमसे सुतार, मदन, सुहोत्र, कंकण, लोगाक्षि, जैगीषव्य, महातेजस्वी भगवान् दधिवाहन, ऋषभ, मुनि, मेधासम्पन्न उग्र, अत्रि, सुबालक, सभी देवोंके वन्दनीय भगवान् गौतम, वेदशीर्ष, गोकर्ण, गुहावासी, शिखण्डभृत्, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लांगली, महाकायमुनि, शूली, दण्डधारी मुण्डीश्वर, सहिष्णु, सोमशर्मा तथा जगद्गुरु नकुलीश—ये अट्ठाईस योगाचार्य अवतरित हुए॥ ३०—३४॥

हे सुव्रतो! सभी युगावर्तोंमें महेश्वरके जो योगाचार्यावतार हुए हैं, वे वैवस्वत मन्वन्तरमें भी भलीभाँति कहे गये हैं। हे श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार प्रत्येक द्वापरमें ये व्यास भी हुए हैं। उन योगेश्वरोंमें सभीके चार-चार शिष्य हुए, जो काम-क्रोधादि विकारोंसे रहित थे॥ ३५-३६॥

श्वेत, श्वेतशिखण्डी, श्वेताश्व, श्वेतलोहित, दुन्दुभि,

विशोकश्च विकेशश्च विपाशः पापनाशनः।
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः॥ ३८
सनकश्च सनन्दश्च प्रभुर्यश्च सनातनः।
ऋभुः सनत्कुमारश्च सुधामा विरजास्तथा॥ ३९
शङ्खपा द्वैरजश्चैव मेघः सारस्वतस्तथा।
सुवाहनो मुनिश्रेष्ठो मेघवाहो महाद्युतिः॥ ४०
कपिलश्चासुरिश्चैव तथा पञ्चशिखो मुनिः।
वाल्कलश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः॥ ४१
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः॥ ४२
लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बाक्षो लम्बकेशकः।
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सर्वस्तथैव च॥ ४३
सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजास्तथा।
अत्रिर्देवसदश्चैव श्रवणोऽथ श्रविष्ठकः।
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः॥ ४४
कश्यपोऽप्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः।
उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः॥ ४५
वाचःश्रवा सुधीकश्च श्यावाश्वश्च यतीश्वरः।
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोगाक्षिः कुथुमिस्तथा॥ ४६
सुमन्तुर्बर्बरी विद्वान् कबन्धः कुशिकन्धरः।
प्लक्षो दाल्भ्यायणिश्चैव केतुमान् गोपनस्तथा॥ ४७
भल्लावी मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तपोनिधिः।
उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च॥ ४८
शालिहोत्रोऽग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः।
छगलः कुण्डकर्णश्च कुम्भश्चैव प्रवाहकः॥ ४९
उलूको विद्युतश्चैव मण्डूको ह्याश्वलायनः।
अक्षपादः कुमारश्च उलूको वत्स एव च॥ ५०
कुशिकश्चैव गर्भश्च मित्रः कौरुष्य एव च।
शिष्यास्त्वेते महात्मानः सर्वावर्तेषु योगिनाम्॥ ५१
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणाः।
एते पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः॥ ५२
शिष्याः प्रशिष्याश्चैतेषां शतशोऽथ सहस्रशः।
प्राप्य पाशुपतं योगं रुद्रलोकाय संस्थिताः॥ ५३
देवादयः पिशाचान्ताः पशवः परिकीर्तिताः।
तेषां पतित्वात्सर्वेशो भवः पशुपतिः स्मृतः॥ ५४
तेन प्रणीतो रुद्रेण पशूनां पतिना द्विजाः।
योगः पाशुपतो ज्ञेयः परावरविभूतये॥ ५५

शतरूप, ऋचीक, केतुमान्, विशोक, विकेश, विपाश, पापनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम, दुरतिक्रम, सनक, सनन्द, दिव्यशक्तिसम्पन्न सनातन, ऋभु, सनत्कुमार, सुधामा, विरजा, शंखपा, द्वैरज, मेघ, सारस्वत, मुनिवर सुवाहन, महातेजस्वी मेघवाह, कपिल, आसुरि, मुनि पंचशिख तथा महायोगी वाल्कल—ये सभी धर्मात्मा तथा महान् ओजस्वी शिष्य हुए। इसी क्रममें पुनः पराशर, गर्ग, भार्गव, अंगिरा, बलबन्धु, निरामित्र, केतुशृंग, तपोधन, लम्बोदर, लम्ब, लम्बाक्ष, लम्बकेशक, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य, सर्व, सुधामा, काश्यप, वासिष्ठ, विरजा, अत्रि, देवसद, श्रवण, श्रविष्ठक, कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति, उतथ्य, वामदेव, महायोग, महाबल, वाचःश्रवा, सुधीक, श्यावाश्व, यतीश्वर, हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोगाक्षि, कुथुमि, सुमन्तु, विद्वान् बर्बरी, कबन्ध, कुशिकन्धर, प्लक्ष, दाल्भ्यायणि, केतुमान्, गोपन, भल्लावी, मधुपिंग, श्वेतकेतु, तपोनिधि, उशिक, बृहदश्व, देवल, कवि, शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व, शरद्वसु, छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भ, प्रवाहक, उलूक, विद्युत्, मण्डूक, आश्वलायन, अक्षपाद, कुमार, उलूक, वत्स, कुशिक, गर्भ, मित्र तथा कौरुष्य नामवाले शिष्य भी हुए। सभी युगावर्तोंमें योगाचार्योंके ये महात्मा शिष्य कहे गये हैं। ये सब विमल आत्मावाले, सिद्ध, ब्रह्मनिष्ठ, ज्ञान तथा योगमें निरत रहनेवाले भस्म-विभूषित शरीरवाले तथा शैवी दीक्षासे सम्पन्न हैं॥ ३७—५२॥

इनके भी सैकड़ों-हजारों शिष्य तथा प्रशिष्य पाशुपत योग प्राप्तकर शिवलोकके अधिकारी हुए॥ ५३॥

देवतासे लेकर पिशाचपर्यन्त सभी प्राणी पशु कहे गये हैं, उनका पति अर्थात् स्वामी होनेके कारण सर्वेश्वर शिवको पशुपति कहा जाता है॥ ५४॥

हे द्विजो! सभीको परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति करानेहेतु उन पशुपति रुद्रके द्वारा प्रवर्तित योग 'पाशुपतयोग' के नामसे जाना जाता है॥ ५५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे मनुव्यासयोगेश्वरतच्छिष्यकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'मनुव्यासयोगेश्वरतच्छिष्यकथन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

आठवाँ अध्याय

शरीरमें स्थित योगस्थानों (चक्रों)-का वर्णन, योगका स्वरूप, अष्टांगयोगका वर्णन, विषयभोगोंकी निस्सारता, प्राणायामकी महिमा, सदाशिवके ध्यानका स्वरूप

सूत उवाच

सङ्क्षेपतः प्रवक्ष्यामि योगस्थानानि साम्प्रतम्।
कल्पितानि शिवेनैव हिताय जगतां द्विजाः॥ १

गलादधो वितस्त्या यन्नाभेरुपरि चोत्तमम्।
योगस्थानमधो नाभेरावर्तं मध्यमं भ्रुवोः॥ २

सर्वार्थज्ञाननिष्पत्तिरात्मनो योग उच्यते।
एकाग्रता भवेच्चैव सर्वदा तत्प्रसादतः॥ ३

प्रसादस्य स्वरूपं यत्स्वसंवेद्यं द्विजोत्तमाः।
वक्तुं न शक्यं ब्रह्माद्यैः क्रमशो जायते नृणाम्॥ ४

योगशब्देन निर्वाणं माहेशं पदमुच्यते।
तस्य हेतुर्रुषेर्ज्ञानं ज्ञानं तस्य प्रसादतः॥ ५

ज्ञानेन निर्दहेत्पापं निरुध्य विषयान् सदा।
निरुद्धेन्द्रियवृत्तेस्तु योगसिद्धिर्भविष्यति॥ ६

योगो निरोधो वृत्तेषु चित्तस्य द्विजसत्तमाः।
साधनान्यष्टधा चास्य कथितानीह सिद्धये॥ ७

यमस्तु प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो नियमस्तथा।
तृतीयमासनं प्रोक्तं प्राणायामस्ततः परम्॥ ८

प्रत्याहारः पञ्चमो वै धारणा च ततः परा।
ध्यानं सप्तममित्युक्तं समाधिस्त्वष्टमः स्मृतः॥ ९

तपस्युपरमश्चैव यम इत्यभिधीयते।
अहिंसा प्रथमो हेतुर्यमस्य यमिनां वराः॥ १०

सत्यमस्तेयमपरं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ।
नियमस्यापि वै मूलं यम एव न संशयः॥ ११

सूतजी बोले—हे द्विजो! अब मैं भगवान् शंकरके द्वारा जगत्के हितार्थ कल्पित किये गये योगस्थानोंका संक्षेपमें वर्णन करूँगा॥ १॥

गलेसे नीचे तथा नाभिसे ऊपरका वितस्ति (बारह अँगुल) परिमाणवाला [हृत्कमल नामक] स्थान योगके लिये उत्तम स्थान है। इसी प्रकार नाभिसे नीचे मूलाधार नामक तथा दोनों भृकुटियोंके मध्यमें आवर्त [आज्ञाचक्र] नामक स्थान भी योगस्थान है॥ २॥

जीवको परमार्थ तत्त्वका ज्ञान प्राप्त होना ही योग कहा जाता है और चित्तकी एकाग्रता सर्वदा उन्हीं शिवके अनुग्रहसे होती है॥ ३॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! उस अनुग्रहका स्वरूप स्वसंवेद्य है अर्थात् स्वानुभूतिका विषय है। ब्रह्मा आदि भी उस स्वरूपका वर्णन नहीं कर सकते। मनुष्य धीरे-धीरे उस स्वरूपको योगके माध्यमसे जान लेता है॥ ४॥

योगसाधनासे प्राप्त निर्वाण माहेश्वर पद कहा जाता है। उस निर्वाणका हेतु रुद्रका ज्ञान हो जाना ही है और वह ज्ञान उन्हींकी कृपासे होता है॥ ५॥

जो सभी इन्द्रियोंको नियन्त्रित करके उस ज्ञानसे पापोंको जला डालता है, इन्द्रियोंकी वृत्तियोंपर नियन्त्रण रखनेवाले उस प्राणीको योगकी सिद्धि अवश्य होती है॥ ६॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! चित्तकी वृत्तियोंपर नियन्त्रण करना ही योग है। सिद्धिप्राप्तिके लिये इस योगके आठ प्रकारके साधन यहाँ बताये गये हैं॥ ७॥

पहला साधन यम, दूसरा नियम, तीसरा आसन, चौथा प्राणायाम, पाँचवाँ प्रत्याहार, छठाँ धारणा, सातवाँ ध्यान तथा आठवाँ साधन समाधि कहा गया है॥ ८-९॥

तपमें प्रवृत्ति तथा विषय-भोगोंसे निवृत्तिको यम कहते हैं। यमकी साधना करनेवालोंमें श्रेष्ठ हे मुनियो! यमका प्रथम हेतु अहिंसा है। पुनः सत्य, अस्तेय (चोरी

आत्मवत्सर्वभूतानां हितायैव प्रवर्तनम्।
अहिंसैषा समाख्याता या चात्मज्ञानसिद्धिदा॥ १२

दृष्टं श्रुतं चानुमितं स्वानुभूतं यथार्थतः।
कथनं सत्यमित्युक्तं परपीडाविवर्जितम्॥ १३

नाश्लीलं कीर्तयेदेवं ब्राह्मणानामिति श्रुतिः।
परदोषान् परिज्ञाय न वदेदिति चापरम्॥ १४

अनादानं परस्वानामापद्यपि विचारतः।
मनसा कर्मणा वाचा तदस्तेयं समासतः॥ १५

मैथुनस्याप्रवृत्तिर्हि मनोवाक्कायकर्मणा।
ब्रह्मचर्यमिति प्रोक्तं यतीनां ब्रह्मचारिणाम्॥ १६

इह वैखानसानां च विदाराणां विशेषतः।
सदाराणां गृहस्थानां तथैव च वदामि वः॥ १७

स्वदारे विधिवत्कृत्वा निवृत्तिश्चान्यतः सदा।
मनसा कर्मणा वाचा ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम्॥ १८

मेध्या स्वनारी सम्भोगं कृत्वा स्नानं समाचरेत्।
एवं गृहस्थो युक्तात्मा ब्रह्मचारी न संशयः॥ १९

अहिंसाप्येवमेवैषा द्विजगुर्वग्निपूजने।
विधिना तादृशी हिंसा सा त्वहिंसा इति स्मृता॥ २०

स्त्रियः सदा परित्याज्याः सङ्गं नैव च कारयेत्।
कुणपेषु यथा चित्तं तथा कुर्याद्विचक्षणः॥ २१

न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह भी यमके आधार हैं। नियमका भी मूल यही यम है; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ १०-११॥

सभी प्राणियोंमें आत्मवत् दृष्टि रखकर उनके हितके लिये प्रवृत्त रहनेको अहिंसा कहा गया है। इस अहिंसासे आत्मज्ञानकी सिद्धि प्राप्त होती है॥ १२॥

जैसा देखा गया हो, सुना गया हो, अनुमान किया गया हो तथा स्वयं अनुभव किया गया हो—उसे ठीक उसी तरहसे दूसरोंको कष्ट न पहुँचाते हुए कह देना ही 'सत्य' कहा जाता है॥ १३॥

ब्राह्मण तथा वेद ऐसा कहते हैं कि अश्लील बातें नहीं करनी चाहिये और दूसरोंके दोष जानकर भी उसे अन्य व्यक्तिसे नहीं कहना चाहिये॥ १४॥

विपत्तिकालमें भी विचारपूर्वक मन, वचन तथा कर्मसे दूसरोंका द्रव्य न लेना ही संक्षेपमें अस्तेय (चोरी न करना) कहा जाता है॥ १५॥

यतियों, ब्रह्मचारियों तथा विशेष रूपसे पत्नीरहित संन्यासियोंके द्वारा मन, वचन तथा कर्मसे मैथुनमें प्रवृत्ति न रखना—उनके लिये ब्रह्मचर्य कहा गया है। पत्नीयुक्त गृहस्थोंके (ब्रह्मचर्यके) विषयमें मैं अब आपलोगोंको बताता हूँ। मन, वाणी तथा कर्मसे परनारीमें सदा भोगकी प्रवृत्ति न रखते हुए अपनी पत्नीके साथ उचित समयपर प्रसंग करना ब्रह्मचर्य कहा गया है॥ १६—१८॥

यद्यपि अपनी स्त्री भोगकालमें पवित्र होती है, फिर भी उसके साथ संभोगके अनन्तर स्नान कर लेना चाहिये। ऐसा करनेवाला पवित्रात्मा गृहस्थ निःसंदेह ब्रह्मचारी ही कहा जाता है॥ १९॥

[जैसे शास्त्रविहित स्वदाराप्रवृत्त गृहस्थ ब्रह्मचारी ही है, ठीक वैसे ही] द्विज, गुरु, अग्नि (यज्ञ), पूजनके निमित्त शास्त्रविहित की गयी हिंसा भी अहिंसा ही मानी जाती है॥ २०॥

स्त्रियोंका सदैव त्याग करना चाहिये। उनके सान्निध्यसे बचना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको स्त्रियोंमें वही वृत्ति रखनी चाहिये, जैसी चित्तवृत्ति शवमें रखी जाती है॥ २१॥

विण्मूत्रोत्सर्गकालेषु बहिर्भूमौ यथामतिः।
तथा कार्या रतौ चापि स्वदारे चान्यतः कुतः॥ २२

जमीनपर मल तथा मूत्रके त्यागके समय जैसी मनःस्थिति होती है, वैसी ही मनोदशा अपनी पत्नीके साथ संभोगकालमें बनानी चाहिये, फिर अन्यकी तो बात ही क्या!॥ २२॥

अङ्गारसदृशी नारी घृतकुम्भसमः पुमान्।
तस्मान्नारीषु संसर्गं दूरतः परिवर्जयेत्॥ २३

स्त्री प्रज्वलित अंगारके समान तथा पुरुष घीके घड़ेके समान होता है, अतएव दूरसे ही नारियोंका संसर्ग छोड़ देना चाहिये॥ २३॥

भोगेन तृप्तिर्नैवास्ति विषयाणां विचारतः।
तस्माद्विरागः कर्तव्यो मनसा कर्मणा गिरा॥ २४

विषयोंके भोगसे इन्द्रियोंकी तृप्ति नहीं होती, अतएव विचारपूर्वक मन, वाणी तथा कर्मसे भोगोंके प्रति विरक्तिका भाव रखना चाहिये॥ २४॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ २५

विषयोंके उपभोगसे कामनाओंकी शान्ति कभी भी नहीं होती है। यह कामना आहुति डालनेपर अग्निकी भाँति पुनः बढ़ती ही जाती है॥ २५॥

तस्मात्त्यागः सदा कार्यस्त्वमृतत्वाय योगिना।
अविरक्तो यतो मर्त्यो नानायोनिषु वर्तते॥ २६

अतः योगीको अमृतत्व-प्राप्तिके निमित्त भोगोंका सदाके लिये त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि मनुष्य वैराग्य-वृत्ति न रखनेके कारण अनेक योनियोंमें जन्म लेता रहता है॥ २६॥

त्यागेनैवामृतत्वं हि श्रुतिस्मृतिविदां वराः।
कर्मणा प्रजया नास्ति द्रव्येण द्विजसत्तमाः॥ २७

श्रुतियों तथा स्मृतियोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ हे मुनीश्वरो! त्यागसे ही अमृतत्वकी प्राप्ति सम्भव है। कर्मसे, सन्तानसे तथा द्रव्य आदि किसी भी साधनसे अमृतत्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती॥ २७॥

तस्माद्विरागः कर्तव्यो मनोवाक्कायकर्मणा।
ऋतौ ऋतौ निवृत्तिस्तु ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम्॥ २८

इसीलिये सद्गृहस्थ प्राणीको चाहिये कि वह मनसा, वाचा, कर्मणा विषयोंसे राग-निवृत्ति करें; क्योंकि ऋतुकालको छोड़कर समागमकी अनाकांक्षाको भी ब्रह्मचर्य कहा गया है॥ २८॥

यमाः सङ्क्षेपतः प्रोक्ता नियमांश्च वदामि वः।
शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः॥ २९

[हे मुनियो!] मैंने संक्षेपमें यमोंके विषयमें बता दिया और अब आपलोगोंसे नियमोंका वर्णन करता हूँ। शौच, यज्ञ, तप, दान, स्वाध्याय, इन्द्रियनिग्रह, व्रत, उपवास, मौन तथा स्नान—ये दस प्रकारके नियम हैं॥ २९ १/२॥

व्रतोपवासमौनं च स्नानं च नियमा दश।
नियमः स्यादनीहा च शौचं तुष्टिस्तपस्तथा॥ ३०

आकांक्षाराहित्य, शुचिता, सन्तुष्टि, तप, जप एवं भगवान् शिवसे सम्बन्ध स्थापित करना तथा पद्मासन आदि—ये नियम हैं॥ ३० १/२॥

जपः शिवप्रणीधानं पद्मकाद्यं तथासनम्।
बाह्यमाभ्यन्तरं प्रोक्तं शौचमाभ्यन्तरं वरम्॥ ३१

बाह्यशौचेन युक्तः संस्तथा चाभ्यन्तरं चरेत्।
आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं कर्तव्यं शिवपूजकैः॥ ३२

स्नानं विधानतः सम्यक् पश्चादाभ्यन्तरं चरेत्।
आदेहान्तं मृदालिप्य तीर्थतोयेषु सर्वदा॥ ३३

अवगाह्यापि मलिनो ह्यन्तश्शौचविवर्जितः।
शैवला झषका मत्स्याः सत्त्वा मत्स्योपजीविनः॥ ३४

सदावगाह्यः सलिले विशुद्धाः किं द्विजोत्तमाः।
तस्मादाभ्यन्तरं शौचं सदा कार्यं विधानतः॥ ३५

आत्मज्ञानाम्भसि स्नात्वा सकृदालिप्य भावतः।
सुवैराग्यमृदा शुद्धः शौचमेवं प्रकीर्तितम्॥ ३६

शुद्धस्य सिद्धयो दृष्टा नैवाशुद्धस्य सिद्धयः।
न्यायेनागतया वृत्त्या सन्तुष्टो यस्तु सुव्रतः॥ ३७

सन्तोषस्तस्य सततमतीतार्थस्य चास्मृतिः।
चान्द्रायणादिनिपुणस्तपांसि सुशुभानि च॥ ३८

स्वाध्यायस्तु जपः प्रोक्तः प्रणवस्य त्रिधा स्मृतः।
वाचिकश्चाधमो मुख्य उपांशुश्चोत्तमोत्तमः॥ ३९

मानसो विस्तरेणैव कल्पे पञ्चाक्षरे स्मृतः।
तथा शिवप्रणीधानं मनोवाक्कायकर्मणा॥ ४०

शिवज्ञानं गुरोर्भक्तिरचला सुप्रतिष्ठिता।
निग्रहो ह्यपहृत्याशु प्रसक्तानीन्द्रियाणि च॥ ४१

विषयेषु समासेन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः।
चित्तस्य धारणा प्रोक्ता स्थानबन्धः समासतः॥ ४२

शुचिता बाह्य तथा आभ्यन्तर-भेदसे दो प्रकारकी कही गयी है, उसमें भी आन्तरिक शुचिता श्रेष्ठ है। साधकको बाह्य पवित्रतासे युक्त होकर आन्तरिक पवित्रताके लिये प्रयास करना चाहिये॥ ३१ १/२॥

शिवपूजकोंको चाहिये कि वे विधिपूर्वक भस्मस्नान, जलस्नान तथा मन्त्रस्नान सम्पन्न करनेके पश्चात् आभ्यन्तर शुचिताका सम्पादन करें; क्योंकि सम्पूर्ण शरीरमें पवित्र मृत्तिकाका लेपन करके सर्वदा पवित्र तीर्थके जलमें अवगाहन करनेवाला भी अन्तःशौचके बिना मलिन ही रहता है॥ ३२-३३ १/२॥

हे द्विजोत्तमो! सदा जलमें रहनेपर भी शैवाल, झषक (मगरमच्छ), मत्स्य और मत्स्यजीवी (मछुआरे) क्या कभी पवित्र हुए हैं? इसीलिये सदा विधिपूर्वक आन्तरिक पवित्रताका सम्पादन करना चाहिये॥ ३४-३५॥

शरीरपर एक बार श्रद्धापूर्वक वैराग्यरूपी मृत्तिकाका लेपन करके आत्म-ज्ञानरूपी जलमें स्नान करके शुद्ध हो जानेको अन्तःशौच कहा गया है। शुद्ध पुरुषको ही सिद्धियाँ मिलती हैं, अशुद्ध पुरुषको कभी नहीं मिलतीं॥ ३६ १/२॥

जो व्रती पुरुष न्यायपूर्वक अर्जित किये गये धनसे संतुष्ट रहता है और गये धनके विषयमें चिन्तन नहीं करता, वह सन्तोषी कहा जाता है। चान्द्रायण आदि व्रतोंका निपुणतापूर्वक आचरण करना शुभ तप कहा गया है॥ ३७-३८॥

प्रणवका जप स्वाध्याय कहा जाता है और वह जप तीन प्रकारका कहा गया है। वाचिक जप अधम, उपांशु (मन्द स्वरात्मक) जप मुख्य (उत्तम) तथा मानस जप उत्तमोत्तम है, जो पंचाक्षर कल्पमें विस्तारसे बताये गये हैं। इस प्रकार मन, वचन तथा शारीरिक क्रियाओंसे शिवका प्रणीधान और गुरुके प्रति निश्चल तथा प्रतिष्ठित भक्तिको शिव-ज्ञान कहा गया है। विषयोंमें आसक्त इन्द्रियोंको शीघ्र ही उनसे हटाकर इन्द्रियोंपर नियन्त्रण करनेको संक्षेपमें प्रत्याहार कहा गया है और हृदय आदि स्थानोंमें चित्तको रोकनेकी क्रिया संक्षेपमें धारणा कही गयी है॥ ३९—४२॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

तस्याः स्वास्थ्येन ध्यानं च समाधिश्च विचारतः।
तत्रैकचित्तता ध्यानं प्रत्ययान्तरवर्जितम्॥ ४३

स्वस्थचित्ततासे उसी धारणाकी स्थिरता ही ध्यान है, जो विचारणापूर्वक समाधिमें परिणत हो जाता है। ध्येय विषयमें चित्तकी एकाग्रता ही ध्यान है और इस स्थितिमें चित्त अन्य वृत्तियोंसे रहित हो जाता है॥ ४३॥

चिद्भासमर्थमात्रस्य देहशून्यमिव स्थितम्।
समाधिः सर्वहेतुश्च प्राणायाम इति स्मृतः॥ ४४

चैतन्यस्वरूप ध्येयमात्रसे भासित होनेवाला और इस प्रकार देहशून्यताकी स्थितिको प्राप्त वह ध्यान ही समाधि है और प्राणायामको इन समस्त ध्यान-समाधि आदिका हेतु कहा गया है॥ ४४॥

प्राणः स्वदेहजो वायुर्यमस्तस्य निरोधनम्।
त्रिधा द्विजैर्यमः प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा॥ ४५

अपने शरीरसे जायमान वायु ही प्राण है और उसे रोकनेको यम कहते हैं। द्विजोंने मन्द, मध्य तथा उत्तम—ये तीन प्रकारके यम बतलाये हैं॥ ४५॥

प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायामः प्रकीर्तितः।
प्राणायामस्य मानं तु मात्राद्वादशकं स्मृतम्॥ ४६

नीचो द्वादशमात्रस्तु उद्घातो द्वादशः स्मृतः।
मध्यमस्तु द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रकः॥ ४७

मुख्यस्तु यस्त्रिरुद्घातः षट्त्रिंशन्मात्र उच्यते।
प्रस्वेदकम्पनोत्थानजनकश्च यथाक्रमम्॥ ४८

प्राण और अपान वायुका निरोध ही प्राणायाम कहलाता है। मन्द प्राणायामका मान बारह मात्राओंका कहा गया है। बारह लघु अक्षरोंके उच्चारणकालतक प्राणवायुको रोकना मन्द प्राणायाम या द्वादशमात्रात्मक प्राणायाम बताया गया है। उसके दुगुने उच्चारणकाल अर्थात् चौबीस मात्राओंके समयतक प्राणवायुके निरोधनको मध्यम प्राणायाम कहते हैं। इसी प्रकार तीन गुने उच्चारणकाल अर्थात् छत्तीस मात्राओंके उच्चारणकालतक प्राणवायुको रोकनेको उत्तम प्राणायाम कहा जाता है। मन्द, मध्य तथा उत्तम प्राणायाम शरीरमें क्रमशः प्रस्वेद (पसीना), कम्पन तथा उत्थान (ऊपर उठनेकी क्रिया) उत्पन्न करनेवाले हैं॥ ४६—४८॥

आनन्दोद्भवयोगार्थं निद्राघूर्णिस्तथैव च।
रोमाञ्चध्वनिसंविद्धस्वाङ्गमोटनकम्पनम्॥ ४९

आनन्दकी उत्पत्ति करनेवाले योगकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले प्राणायामसे निद्रा, घूर्णन, रोमांच तथा ध्वनिसे व्याप्त कम्पन शरीरके अंगोंमें उत्पन्न हो जाता है॥ ४९॥

भ्रमणं स्वेदजन्या सा संविन्मूर्छा भवेद्यदा।
तदोत्तमोत्तमः प्रोक्तः प्राणायामः सुशोभनः॥ ५०

जब निरन्तर प्राणायामके अभ्याससे [उत्पन्न उष्णतावश] स्वेदबिन्दु [पसीना] झलकने लगे, संविन्मूर्च्छा—ज्ञानमयी उन्मनी अवस्था आने लगे, सहसा शरीर हलका होकर प्लवन [जलमें तैरने-जैसी स्थिति]-जैसी अवस्थाका अनुभव करे, तब इस सुशोभन अवस्थाको उत्तमोत्तम प्राणायाम कहा गया है॥ ५०॥

सगर्भोऽगर्भ इत्युक्तः सजपो विजपः क्रमात्।
इभो वा शरभो वापि दुराधर्षोऽथ केसरी॥ ५१

सगर्भ तथा अगर्भ—यह दो प्रकारका होता है। जपसहित प्राणायाम सगर्भ तथा जपरहित प्राणायाम अगर्भ कहा जाता है। हाथी, शरभ* तथा सिंह अत्यन्त

* आठ पैरवाला जीव, जो सिंहसे भी बलवान् होता है—'**अष्टपादः शरभः सिंहघाती।**'

गृहीतो दम्यमानस्तु यथास्वस्थस्तु जायते।
तथा समीरणोऽस्वस्थो दुराधर्षश्च योगिनाम्॥ ५२
न्यायतः सेव्यमानस्तु स एवं स्वस्थतां व्रजेत्।
यथैव मृगराड् नागः शरभो वापि दुर्मदः॥ ५३
कालान्तरवशाद्योगाद्दम्यते परमादरात्।
तथा परिचयात्स्वास्थ्यं समत्वं चाधिगच्छति॥ ५४
योगादभ्यसते यस्तु व्यसनं नैव जायते।
एवमभ्यस्यमानस्तु मुनेः प्राणो विनिर्दहेत्॥ ५५

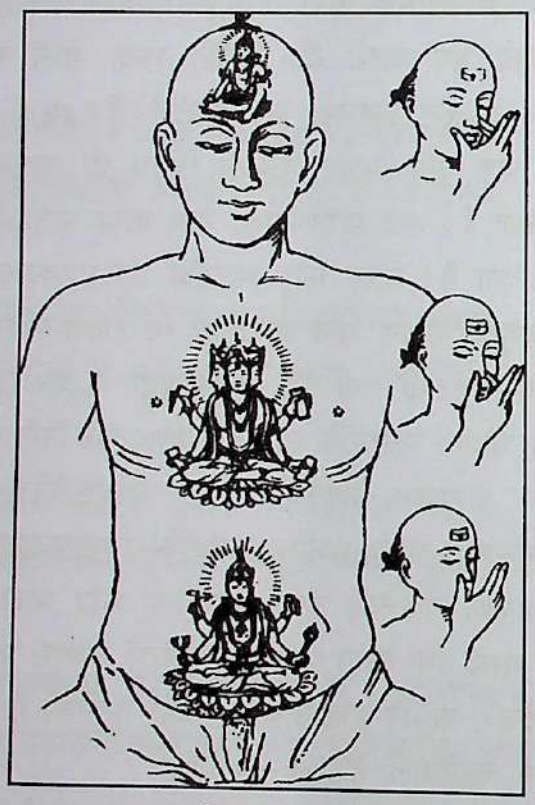

मनोवाक्कायजान् दोषान् कर्तुर्देहं च रक्षति।
संयुक्तस्य तथा सम्यक्प्राणायामेन धीमतः॥ ५६
दोषात्तस्माच्च नश्यन्ति निःश्वासस्तेन जीर्यते।
प्राणायामेन सिध्यन्ति दिव्याः शान्त्यादयः क्रमात्॥ ५७
शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च तथा क्रमात्।
आदौ चतुष्टयस्येह प्रोक्ता शान्तिरिह द्विजाः॥ ५८
सहजागन्तुकानां च पापानां शान्तिरुच्यते।
प्रशान्तिः संयमः सम्यग्वचसामिति संस्मृता॥ ५९
प्रकाशो दीप्तिरित्युक्तः सर्वतः सर्वदा द्विजाः।
सर्वेन्द्रियप्रसादस्तु बुद्धेर्वै मरुतामपि॥ ६०
प्रसाद इति सम्प्रोक्तः स्वान्ते त्विह चतुष्टये।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च॥ ६१

दुराधर्ष होते हैं। जैसे उन्हें पकड़कर उनका दमन किये जानेपर वे अस्वस्थ हो जाते हैं, उसी प्रकार यह दुराधर्ष प्राणवायु भी योगियोंके द्वारा वशमें किये जानेपर अस्वस्थ हो उठता है अर्थात् अव्यवस्थित हो जाता है॥ ५१-५२॥

नियमपूर्वक अभ्यास किये जानेपर वह वायु उसी प्रकार स्वस्थताको प्राप्त हो जाता है, जैसे मतवाले सिंह, हाथी तथा शरभ अभ्यासपूर्वक युक्तिसे दमित किये जानेपर अपने अधीन हो जाते हैं॥ ५३॥

जैसे नियमतः नियन्त्रण करनेपर शनैः-शनैः अपनी उग्रताको त्यागकर ये सिंहादि आदरपूर्वक वशमें हो जाते हैं, वैसे ही यह प्राणवायु भी शनैः-शनैः अभ्याससे अपनी अस्वस्थताको छोड़कर समत्वभावको प्राप्त हो जाता है॥ ५४॥

जो पुरुष योगपूर्वक अभ्यास करता है, उसके चित्तमें व्यसन उत्पन्न नहीं होता है। इस प्रकार सतत अभ्यास करनेपर प्राणायामसे उस योगीके मन-वचन तथा कर्मसे जायमान सभी दोष नष्ट हो जाते हैं और इस प्राणायामसे इसे करनेवाले उस बुद्धिमान् योगीके देहकी भलीभाँति रक्षा भी होती है॥ ५५-५६॥

उस प्राणायामके सतत अभ्याससे सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। साथ ही श्वास (प्रश्वास)-की गति भी न्यून होती जाती है। इस प्रकार प्राणोंके [श्वासोंके] नियन्त्रणसे क्रमशः दिव्य शान्ति आदि सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं॥ ५७॥

हे द्विजो! अब मैं क्रमसे शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति तथा प्रसादका वर्णन करूँगा। आरम्भमें इन चारोंमेंसे यहाँ पहले शान्तिके विषयमें कहता हूँ। सहज तथा आगन्तुक पापोंका नाश शान्ति कहा जाता है तथा वाणीपर भली-भाँति संयम प्रशान्ति कहा गया है॥ ५८-५९॥

हे द्विजो! सभी तरहसे सर्वदा प्रकाशकी स्थितिको दीप्ति कहा गया है। सभी इन्द्रियों, बुद्धि तथा प्राणवायु आदिकी प्रसन्नताको इस चतुष्टयमें 'प्रसाद' कहा गया है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल,

नागः कूर्मस्तु कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः।
एतेषां यः प्रसादस्तु मरुतामिति संस्मृतः॥ ६२

प्रयाणं कुरुते तस्माद्वायुः प्राण इति स्मृतः।
अपानयत्यपानस्तु आहारादीन् क्रमेण च॥ ६३

व्यानो व्यानामयत्यङ्गं व्याध्यादीनां प्रकोपकः।
उद्वेजयति मर्माणि उदानोऽयं प्रकीर्तितः॥ ६४

समं नयति गात्राणि समानः पञ्च वायवः।
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने तु सः॥ ६५

कृकलः क्षुतकायैव देवदत्तो विजृम्भणे।
धनञ्जयो महाघोषः सर्वगः स मृतेऽपि हि॥ ६६

इति यो दशवायूनां प्राणायामेन सिध्यति।
प्रसादोऽस्य तुरीया तु संज्ञा विप्राश्चतुष्टये॥ ६७

विस्वरस्तु महान् प्रज्ञा मनो ब्रह्मा चितिः स्मृतिः।
ख्यातिः संवित्ततः पश्चादीश्वरो मतिरेव च॥ ६८

बुद्धेरेताः द्विजाः संज्ञा महतः परिकीर्तिताः।
अस्या बुद्धेः प्रसादस्तु प्राणायामेन सिद्ध्यति॥ ६९

विस्वरो विस्वरीभावो द्वन्द्वानां मुनिसत्तमाः।
अग्रजः सर्वतत्त्वानां महान् यः परिमाणतः॥ ७०

यत्प्रमाणगुहा प्रज्ञा मनस्तु मनुते यतः।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मा ब्रह्मविदां वराः॥ ७१

सर्वकर्माणि भोगार्थं यच्चिनोति चितिः स्मृता।
स्मरते यत्स्मृतिः सर्वं संविद्वै विन्दते यतः॥ ७२

ख्यायते यत्त्विति ख्यातिर्ज्ञानादिभिरनेकशः।
सर्वतत्त्वाधिपः सर्वं विजानाति यदीश्वरः॥ ७३

देवदत्त तथा धनंजय—इनकी जो प्रसन्नता है, उसे मरुतोंका प्रसाद कहा गया है॥ ६०—६२॥

जो वायु प्रयाण करता है, इसी कारण उस वायुको प्राणवायु कहा गया है। जो वायु आहार आदिको नीचेकी ओर क्रमसे ले जाता है, उसे अपान, सभी अंगोंमें जो वायु व्याप्त रहता है उसे व्यान तथा व्याधि आदिका प्रकोपक जो वायु मर्मोंमें उद्वेजन पैदा करता है उसे उदान एवं जो वायु गात्रोंमें समता करता है, उसे समान वायु कहा गया है। इस प्रकार ये पाँच वायु हुए। इसी तरह उद्गार (डकार आदि)-के समय क्रियाशील वायुको नाग, उन्मीलन-अवस्थामें क्रियाशील वायुको कूर्म, छींक आदिमें आनेवाली वायुको कृकल, जम्हाईमें क्रियाशील वायु देवदत्त तथा महाघोष करनेवाले वायुका नाम धनंजय है, वह मरनेपर भी सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहता है॥ ६३—६६॥

हे विप्रो! जो इन दस वायुओंको प्राणायामसे सिद्ध कर लेता है, वह शान्ति आदि चतुष्टयके प्रसादकी प्राप्ति कर लेता है। इन वायुओंका प्रसाद ही (शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति तथा प्रसाद नामक सिद्धियोंमें चतुर्थ प्रसाद नामक सिद्धिको) 'तुरीया' सिद्धि कहा जाता है॥ ६७॥

विस्वर, महान्, प्रज्ञा, मन, ब्रह्मा, चिति, स्मृति, ख्याति, संवित्, ईश्वर तथा मति—ये सब महत्तत्त्वस्वरूप बुद्धिके नाम हैं। हे विप्रो! इस बुद्धिका प्रसाद प्राणायामसे ही सिद्ध होता है॥ ६८-६९॥

हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मुनियो! यह बुद्धि शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंका उपतापन न होनेसे विस्वर, सभी तत्त्वोंके पहले उत्पन्न होनेसे महान्, प्रमाणोंका आश्रय होनेसे प्रज्ञा, मनन करनेसे मन तथा बृहत् होने एवं वृद्धि करनेसे ब्रह्मा—ऐसी कही गयी है॥ ७०-७१॥

जो भोगोंके लिये समस्त कर्मोंका चयन करती है, उसे चिति कहा गया है। जो स्मरण करती है, उसे स्मृति तथा जो जानती है, उसे संवित् कहा गया है॥ ७२॥

ज्ञान आदि अनेक उपायोंसे प्रतिष्ठित करनेसे ख्यातिसंज्ञक तथा सभी तत्त्वोंका स्वामी एवं सब कुछ

मनुते मन्यते यस्मान्मतिर्मतिमतां वराः।
अर्थं बोधयते यच्च बुद्ध्यते बुद्धिरुच्यते॥ ७४

अस्या बुद्धेः प्रसादस्तु प्राणायामेन सिद्ध्यति।
दोषान् विनिर्दहेत्सर्वान् प्राणायामादसौ यमी॥ ७५

पातकं धारणाभिस्तु प्रत्याहारेण निर्दहेत्।
विषयान् विषवद् ध्यात्वा ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥ ७६

समाधिना यतिश्रेष्ठाः प्रज्ञावृद्धिं विवर्धयेत्।
स्थानं लब्ध्वैव कुर्वीत योगाष्टाङ्गानि वै क्रमात्॥ ७७

लब्ध्वासनानि विधिवद्योगसिद्ध्यर्थमात्मवित्।
अदेशकाले योगस्य दर्शनं हि न विद्यते॥ ७८

अग्न्यभ्यासे जले वापि शुष्कपर्णचये तथा।
जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे॥ ७९

सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसञ्चये।
अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते॥ ८०

नाचरेद्देहबाधायां दौर्मनस्यादिसम्भवे।
सुगुप्ते तु शुभे रम्ये गुहायां पर्वतस्य तु॥ ८१

भवक्षेत्रे सुगुप्ते वा भवारामे वनेऽपि वा।
गृहे तु सुशुभे देशे विजने जन्तुवर्जिते॥ ८२

अत्यन्तनिर्मले सम्यक् सुप्रलिप्ते विचित्रिते।
दर्पणोदरसङ्काशे कृष्णागरुसुधूपिते॥ ८३

नानापुष्पसमाकीर्णे वितानोपरि शोभिते।
फलपल्लवमूलाढ्ये कुशपुष्पसमन्विते॥ ८४

समासनस्थो योगाङ्गान्यभ्यसेद्धृषितः स्वयम्।
प्रणिपत्य गुरुं पश्चाद्भवं देवीं विनायकम्॥ ८५

योगीश्वरान् सशिष्यांश्च योगं युञ्जीत योगवित्।
आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्धासनं तु वा॥ ८६

जाननेके कारण ईश्वर संज्ञावाली बुद्धि कही गयी है। हे मतिमानोंमें श्रेष्ठ मुनियो! माननेके कारण मति कही गयी है एवं अर्थको जानने तथा बोध करानेसे बुद्धि कही गयी है॥ ७३-७४॥

इस बुद्धिका भी प्रसाद प्राणायामसे सिद्ध होता है। योगीको प्राणायामके द्वारा सभी दोषोंको दग्ध कर डालना चाहिये॥ ७५॥

हे यतिश्रेष्ठ विप्रो! योगीको चाहिये कि वह धारणासे पापोंको तथा प्रत्याहारसे विषयोंको विष समझकर दग्ध कर डाले। ध्यानके द्वारा [काम-क्रोधादि] अनीश्वर गुणोंको जला डाले तथा समाधिसे बुद्धिकी वृद्धि करे। उत्तम स्थान प्राप्त करके तथा उचित आसनोंमें होकर आत्मवित् योगीको विधिपूर्वक योगके आठों अंगोंका क्रमसे अभ्यास करना चाहिये। समुचित स्थान तथा समयके विना योगसिद्धि नहीं होती है॥ ७६—७८॥

अग्निके समीप, जलमें, सूखे पत्तोंके ढेरवाले स्थानोंमें, जन्तुओंसे व्याप्त जगहपर, श्मशानपर, जीर्ण गोशालामें, चौराहेपर, शोरगुलवाले स्थानमें, डरावने स्थानमें, पत्थरों तथा वल्मीक मिट्टीके ढेरपर, अपवित्र स्थानपर, दुष्टोंके आतंकवाले स्थानपर, मच्छर आदिसे युक्त स्थानपर तथा देहबाधा और दौर्मनस्य (मानसिक कष्ट) उत्पन्न करनेवाले स्थानपर योगका अभ्यास नहीं करना चाहिये। अपितु अत्यन्त गुप्त (एकान्त), पवित्र तथा रमणीक स्थानपर, पर्वतकी गुफामें, शिवक्षेत्रमें, एकान्तमें, शिव-उद्यानमें, वनमें, पवित्र घरमें, जन्तुओंसे रहित तथा निर्जन स्थानमें योग-साधन करना चाहिये॥ ७९—८२॥

अत्यन्त स्वच्छ, भलीभाँति लिपे हुए, विशेष रूपसे चित्रित, दर्पणके समान स्वच्छ, कृष्ण अगरुके धूपसे सुगन्धित, अनेक प्रकारके पुष्पोंसे मण्डित, ऊपरसे चँदोवा आदिसे अलंकृत, फल-पल्लवोंसे सुशोभित तथा कुश और फूलसे युक्त दिव्य स्थानमें ठीक आसनसे बैठकर प्रसन्नतापूर्वक योगके अंगोंका अभ्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् गुरु, शिव, पार्वती, गणेश तथा शिष्योंसहित योगीश्वरोंको प्रणाम करके स्वस्तिक अथवा

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

समजानुस्तथा धीमानेकजानुरथापि वा।
समं दृढासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ॥ ८७

संवृतास्योपबद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रतः।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः॥ ८८

किञ्चिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत्।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ ८९

तमः प्रच्छाद्य रजसा रजः सत्त्वेन छादयेत्।
ततः सत्त्वस्थितो भूत्वा शिवध्यानं समभ्यसेत्॥ ९०

ॐकारवाच्यं परमं शुद्धं दीपशिखाकृतिम्।
ध्यायेद्वै पुण्डरीकस्य कर्णिकायां समाहितः॥ ९१

नाभेरधस्ताद्वा विद्वान् ध्यात्वा कमलमुत्तमम्।
त्र्यङ्गुले चाष्टकोणं वा पञ्चकोणमथापि वा॥ ९२

त्रिकोणं च तथाग्नेयं सौम्यं सौरं स्वशक्तिभिः।
सौरं सौम्यं तथाग्नेयमथवानुक्रमेण तु॥ ९३

आग्नेयं च ततः सौरं सौम्यमेवं विधानतः।
अग्नेरधः प्रकल्प्यैवं धर्मादीनां चतुष्टयम्॥ ९४

गुणत्रयं क्रमेणैव मण्डलोपरि भावयेत्।
सत्त्वस्थं चिन्तयेद्रुद्रं स्वशक्त्या परिमण्डितम्॥ ९५

नाभौ वाथ गले वापि भ्रूमध्ये वा यथाविधि।
ललाटफलिकायां वा मूर्ध्नि ध्यानं समाचरेत्॥ ९६

द्विदले षोडशारे वा द्वादशारे क्रमेण तु।
दशारे वा षडस्त्रे वा चतुरस्त्रे स्मरेच्छिवम्॥ ९७

कनकाभे तथाङ्गारसन्निभे सुसितेऽपि वा।
द्वादशादित्यसङ्काशे चन्द्रबिम्बसमेऽपि वा॥ ९८

विद्युत्कोटिनिभे स्थाने चिन्तयेत्परमेश्वरम्।
अग्निवर्णेऽथ वा विद्युद्वलयाभे समाहितः॥ ९९

अर्ध पद्मासन (सिद्धासन) बाँधकर योगीको योग-साधनमें प्रवृत्त हो जाना चाहिये॥ ८३—८६॥

बुद्धिमान् योगीको इस प्रकार दोनों जानु बराबर करके अथवा एक जानुमें स्थित होकर वृषण तथा लिङ्गको दोनों पार्ष्णि (एड़ियों)-के बीच करके दृढ़ आसन लगाकर तथा मुखको बन्द करके सिरको कुछ ऊँचा उठाकर दाँतोंका परस्पर स्पर्श बचाते हुए, सभी ओरसे दृष्टिको रोककर, उन्मीलित नेत्रोंसे अपने नासिकाग्रपर दृष्टि केन्द्रित करके तथा वक्षःस्थलको आगेकी ओर उन्नतकर तमोगुणको रजोगुणसे तथा रजोगुणको सत्त्वगुणसे आच्छादित करना चाहिये। इस प्रकार केवल सत्त्वगुणमें स्थित होकर शिवध्यानका अभ्यास करना चाहिये॥ ८७—९०॥

समाहितचित्त होकर साधकको परम शुद्ध दीपशिखाकी आकृतिवाले तथा ओंकार नामसे अभिहित उस परमात्माका अपने हृदयकमलकी कर्णिकामें ध्यान करना चाहिये अथवा विद्वान् साधकको नाभिसे तीन अंगुल नीचे अष्टकोणात्मक, पंचकोणात्मक अथवा त्रिकोणात्मक उत्तम कमलका ध्यान करके उसमें क्रमानुसार अपनी शक्तियोंसहित अग्निमण्डल, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल अथवा सूर्य-चन्द्र-अग्निमण्डल अथवा अग्नि, सूर्य, चन्द्रमण्डलका विधिवत् ध्यान करते हुए अग्निके नीचे धर्म आदि चतुष्टय (धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य)-की कल्पना करके मण्डलोंके ऊपर सत्त्व, रज तथा तमकी भावना करते हुए पार्वतीसे सुशोभित सत्त्वस्थित रुद्रका चिन्तन करना चाहिये॥ ९१—९५॥

इसी प्रकार नाभि, कण्ठ, भ्रूमध्य, ललाटपट्ट अथवा मस्तकमें विधिके अनुसार शिवका ध्यान करना चाहिये॥ ९६॥

क्रमानुसार द्विदल, षोडशदल, द्वादशदल, दशदल, षड्दल अथवा चतुर्दल कमलमें शंकरजीका ध्यान करना चाहिये॥ ९७॥

स्वर्णकी आभावाले तथा अंगारके सदृश, महाश्वेत, द्वादश सूर्यके समान दीप्त, चन्द्रबिम्बके सदृश, करोड़ों विद्युत्के समान प्रभावाले, अग्निवर्णके सदृश, विद्युत्-वलयके

वज्रकोटिप्रभे स्थाने पद्मरागनिभेऽपि वा।
नीललोहितबिम्बे वा योगी ध्यानं समभ्यसेत्॥ १००

महेश्वरं हृदि ध्यायेन्नाभिपद्मे सदाशिवम्।
चन्द्रचूडं ललाटे तु भ्रूमध्ये शङ्करं स्वयम्॥ १०१

दिव्ये च शाश्वतस्थाने शिवध्यानं समभ्यसेत्।
निर्मलं निष्कलं ब्रह्म सुशान्तं ज्ञानरूपिणम्॥ १०२

अलक्षणमनिर्देश्यमणोरल्पतरं शुभम्।
निरालम्बमतर्क्यं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम्॥ १०३

कैवल्यं चैव निर्वाणं निःश्रेयसमनूपमम्।
अमृतं चाक्षरं ब्रह्म ह्यपुनर्भवमद्भुतम्॥ १०४

महानन्दं परानन्दं योगानन्दमनामयम्।
हेयोपादेयरहितं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं शिवम्॥ १०५

स्वयं वेद्यमवेद्यं तच्छिवं ज्ञानमयं परम्।
अतीन्द्रियमनाभासं परं तत्त्वं परात्परम्॥ १०६

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं ध्यानगम्यं विचारतः।
अद्वयं तमसश्चैव परस्तात्संस्थितं परम्॥ १०७

मनस्येवं महादेवं हृत्पद्मे वापि चिन्तयेत्।
नाभौ सदाशिवं चापि सर्वदेवात्मकं विभुम्॥ १०८

देहमध्ये शिवं देवं शुद्धज्ञानमयं विभुम्।
कन्यसेनैव मार्गेण चोद्घातेनापि शङ्करम्॥ १०९

क्रमशः कन्यसेनैव मध्यमेनापि सुव्रतः।
उत्तमेनापि वै विद्वान् कुम्भकेन समभ्यसेत्॥ ११०

द्वात्रिंशद्रेचयेद्धीमान् हृदि नाभौ समाहितः।
रेचकं पूरकं त्यक्त्वा कुम्भकं च द्विजोत्तमाः॥ १११

साक्षात्समरसेनैव देहमध्ये स्मरेच्छिवम्।
एकीभावं समेत्यैवं तत्र यद्रससम्भवम्॥ ११२

तुल्य आभावाले उन-उन स्थानोंमें साधकको समाहितचित्त होकर परमेश्वरका चिन्तन करना चाहिये॥ ९८-९९॥

करोड़ों वज्रकी प्रभावाले अथवा पद्मरागके सादृश्यवाले अथवा नीललोहित बिम्ब (सूर्यबिम्ब)-तुल्य स्थानमें योगीको शिवध्यान करना चाहिये॥ १००॥

हृदयप्रदेशमें महेश्वरका, नाभिकमलमें सदाशिवका, ललाटमें चन्द्रचूडका, भ्रूमध्यमें साक्षात् शंकरका तथा दिव्य शाश्वत स्थान मूर्धामें शिवका ध्यान करना चाहिये॥ १०१ १/२॥

वे शिव निर्मल हैं, कला अथवा अवयवसे रहित हैं, ब्रह्मरूप हैं, शान्त हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, लक्षणोंसे रहित हैं, अनिर्देश्य हैं, अणुसे भी सूक्ष्म हैं, कल्याणकारी हैं, आश्रयरहित हैं, तर्कोंसे परे हैं, उत्पत्ति तथा विनाशसे रहित हैं, मोक्षस्वरूप हैं, परम गति हैं, कल्याणरूप हैं, उपमारहित हैं, अमृतस्वरूप हैं, अविनाशी हैं, पुनर्भवरहित ब्रह्मस्वरूप हैं, अद्भुत हैं, महानन्द हैं, परानन्द हैं, योगानन्द हैं, व्याधिरहित हैं, त्याग तथा ग्रहणसे रहित हैं, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर हैं, कल्याणमय हैं, स्वयंवेद्य हैं, अवेद्य हैं, परम ज्ञानयुक्त हैं, इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे हैं, आभाससे परे हैं, परम तत्त्व हैं, परात्पर हैं, सभी उपाधियोंसे मुक्त हैं, विचारणापूर्वक ध्यान करनेसे प्राप्त होनेवाले हैं, एकरूप हैं तथा तमसे भी बढ़कर परम रूपमें स्थित हैं। ऐसे महादेवका हृदयकमलमें ध्यान करना चाहिये तथा नाभिमें सर्वदेवात्मक प्रभु सदाशिवका ध्यान करना चाहिये॥ १०२—१०८॥

विद्वान् तथा सुव्रत साधकको चाहिये कि वह शरीरके भीतर सुषुम्णा मार्गसे क्रमशः बारह मात्रात्मक मन्द कुम्भक, चौबीस मात्रात्मक मध्यम कुम्भक तथा छत्तीस मात्रात्मक उत्तम कुम्भकके द्वारा कल्याणप्रद, शुद्ध, देवस्वरूप तथा ज्ञानसम्पन्न प्रभु शंकरका ध्यान करे॥ १०९-११०॥

हृदयकमल तथा नाभिकमलमें ध्यान केन्द्रित करके बुद्धिमान् साधकको बत्तीस मात्रात्मक रेचक करना चाहिये। अथवा हे उत्तम द्विजो! रेचक तथा पूरक छोड़कर केवल कुम्भकमें ही स्थिर रहकर समरसतापूर्वक अपने हृदयमें साक्षात् शिवका ध्यान करना चाहिये॥ १११ १/२॥

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् साक्षात्समरसे स्थितः।
धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादश धारणम्॥ ११३

इस प्रकार समरसमें स्थित विद्वान् साधक ईश्वर तथा जीवके ऐक्यको प्राप्त होकर उस रसजनित ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति कर लेता है॥ ११२$^{१}/_{२}$॥

बारह प्राणायामोंकी एक धारणा होती है, बारह धारणाओंका एक ध्यान होता है तथा बारह ध्यानोंकी एक समाधि कही जाती है॥ ११३$^{१}/_{२}$॥

ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते।
अथवा ज्ञानिनां विप्राः सम्पर्कादेव जायते॥ ११४

प्रयत्नाद्वा तयोस्तुल्यं चिराद्वा ह्यचिराद् द्विजाः।
योगान्तरायास्तस्याथ जायन्ते युञ्जतः पुनः॥ ११५

नश्यन्त्यभ्यासतस्तेऽपि प्रणिधानेन वै गुरोः॥ ११६

हे विप्रो! यह योगसिद्धि ज्ञानियोंके समागमसे अथवा प्रयत्न करनेसे प्राप्त होती है। वे दोनों साधन समान ही हैं। यह सिद्धि पूर्वजन्मके योगाभ्यासी साधकको शीघ्र तथा नवीनाभ्यासी साधकको विलम्बसे प्राप्त होती है। हे द्विजो! योगसाधनकी अवधिमें बार-बार विघ्न भी उत्पन्न होते हैं, किंतु वे विघ्न निरन्तर अभ्यास करनेसे तथा गुरुके सान्निध्यसे नष्ट भी हो जाते हैं॥ ११४—११६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽष्टाङ्गयोगनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अष्टांगयोगनिरूपण' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

योगसाधनाके अन्तराय (विघ्न), योगसे प्राप्त होनेवाली विघ्नरूप विभिन्न सिद्धियाँ तथा ऐश्वर्य, गुणवैतृष्ण्य तथा वैराग्यसे पाशुपतयोगकी प्राप्ति

सूत उवाच

आलस्यं प्रथमं पश्चाद् व्याधिपीडा प्रजायते।
प्रमादः संशयस्थाने चित्तस्येहानवस्थितिः॥ १

अश्रद्धादर्शनं भ्रान्तिर्दुःखं च त्रिविधं ततः।
दौर्मनस्यमयोग्येषु विषयेषु च योगता॥ २

दशधाभिप्रजायन्ते मुनेर्योगान्तरायकाः।
आलस्यं चाप्रवृत्तिश्च गुरुत्वात्कायचित्तयोः॥ ३

व्याधयो धातुवैषम्यात् कर्मजा दोषजास्तथा।
प्रमादस्तु समाधेस्तु साधनानामभावनम्॥ ४

सूतजी बोले—[हे मुनीश्वरो!] योगसाधनके कालमें पहले आलस्य तथा बादमें व्याधिपीड़ा उत्पन्न होती है, इसी प्रकार प्रमाद, संशय, चित्तकी अनवस्थिति, अश्रद्धादर्शन, भ्रान्ति, त्रिविध दुःख, दौर्मनस्य (मनमें असत्संकल्प-विकल्पका होना), निषिद्ध विषयोंमें मनका लगना—ये कुल दस प्रकारके विघ्न* साधकके योगाभ्यासमें उत्पन्न होते हैं॥ १-२$^{१}/_{२}$॥

शरीर तथा चित्तके भारीपनके कारण योगमें प्रवृत्त न होना ही आलस्य है। धातुवैषम्य (न्यूनाधिक्य)-के कारण क्रियासे होनेवाले तथा वात-पित्त आदि दोषोंसे होनेवाले विकार ही व्याधियाँ हैं। समाधिके साधनोंका अनुष्ठान न करना प्रमाद है॥ ३-४॥

* पातंजलयोगसूत्रमें योगके अन्तराय इस प्रकार बताये गये हैं—**व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।** (पातंजलयोगप्रदीप समाधिपाद ३०) अर्थात् व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व—ये चित्तके नौ विक्षेप [योगके विघ्न] हैं।

इदं वेत्युभयस्पृक्तं विज्ञानं स्थानसंशयः।
अनवस्थितचित्तत्वमप्रतिष्ठा हि योगिनः॥ ५

यह करूँ अथवा वह करूँ—इन दोनों स्थितियोंसे मिश्रित अनिश्चिततापूर्ण विज्ञानको स्थानसंशय कहा गया है। समाधि-अवस्थाको पाकर भी भवबन्धनके कारण योगीके चित्तका (लक्ष्यमें) न ठहर पाना अनवस्थित-चित्तत्व है॥ ५½॥

लब्धायामपि भूमौ च चित्तस्य भवबन्धनात्।
अश्रद्धाभावरहिता वृत्तिर्वै साधनेषु च॥ ६

साध्ये चित्तस्य हि गुरौ ज्ञानाचारशिवादिषु।
विपर्ययज्ञानमिति भ्रान्तिदर्शनमुच्यते॥ ७

योगके साधन, साध्य, गुरु, ज्ञान, आचार तथा भगवान् शिव आदिमें चित्तकी सद्भावरहित वृत्तिका नाम अश्रद्धा है॥ ६½॥

समाधिके समीप पहुँचकर अज्ञानताके कारण अनात्मपदार्थोंमें आत्मज्ञानरूप विपरीत ज्ञान रखना भ्रान्तिदर्शन कहा जाता है॥ ७½॥

अनात्मन्यात्मविज्ञानमज्ञानात्तस्य सन्निधौ।
दुःखमाध्यात्मिकं प्रोक्तं तथा चैवाधिभौतिकम्॥ ८

आधिदैविकमित्युक्तं त्रिविधं सहजं पुनः।
इच्छाविघातात्सङ्क्षोभश्चेतसस्तदुदाहृतम्॥ ९

आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक—ये तीन प्रकारके सहज दुःख बताये गये हैं। इच्छा-विघातके कारण चित्तमें उत्पन्न विक्षोभ ही दुःख कहा गया है॥ ८-९॥

दौर्मनस्यं निरोद्धव्यं वैराग्येण परेण तु।
तमसा रजसा चैव संस्पृष्टं दुर्मनः स्मृतम्॥ १०

तदा मनसि सञ्जातं दौर्मनस्यमिति स्मृतम्।
हठात्स्वीकरणं कृत्वा योग्यायोग्यविवेकतः॥ ११

परम वैराग्यके द्वारा दौर्मनस्यको नियन्त्रित करना चाहिये। तमोगुण तथा रजोगुणसे मिला हुआ यह मन दुर्मन कहा गया है। इसलिये ऐसे मनमें उत्पन्न होनेवाला दूषित भाव दौर्मनस्य कहा गया है॥ १०½॥

विषयेषु विचित्रेषु जन्तोर्विषयलोलता।
अन्तराया इति ख्याता योगस्यैते हि योगिनाम्॥ १२

अत्यन्तोत्साहयुक्तस्य नश्यन्ति न च संशयः।
प्रनष्टेष्वन्तरायेषु द्विजाः पश्चाद्धि योगिनः॥ १३

योग्य तथा अयोग्य जानते हुए भी अयोग्य विषयोंके प्रति हठपूर्वक आसक्ति रखना ही विषय-लोलता है। योगियोंके योगसाधनमें इन्हें विघ्नरूप कहा गया है। अत्यन्त उत्साहसे युक्त होकर अभ्यास करनेवाले साधककी ये बाधाएँ दूर हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ११-१२½॥

उपसर्गाः प्रवर्तन्ते सर्वे तेऽसिद्धिसूचकाः।
प्रतिभा प्रथमा सिद्धिर्द्वितीया श्रवणा स्मृता॥ १४

वार्ता तृतीया विप्रेन्द्रास्तुरीया चेह दर्शना।
आस्वादा पञ्चमी प्रोक्ता वेदना षष्ठिका स्मृता॥ १५

हे द्विजो! इन विघ्नोंके समाप्त हो जानेके उपरान्त योगीके योगसाधनमें नानाविध उपसर्ग (उपद्रव) उत्पन्न होते हैं। वे सभी उपसर्ग भी असिद्धिसूचक हैं॥ १३½॥

हे विप्रेन्द्रो! प्रतिभा पहली सिद्धि, श्रवणा दूसरी सिद्धि, वार्ता तीसरी सिद्धि, दर्शना चौथी सिद्धि, आस्वादा पाँचवीं सिद्धि तथा वेदना छठी सिद्धि कही गयी है॥ १४-१५॥

स्वल्पषट्सिद्धिसन्त्यागात्सिद्धिदाः सिद्धयो मुनेः।
प्रतिभा प्रतिभावृत्तिः प्रतिभाव इति स्थितिः॥ १६

इन प्रतिभा आदि स्वल्प षट् सिद्धियोंके आकर्षणसे मुक्त मुनिको अणिमादि सिद्धियाँ अभिलषित सिद्धि प्रदान करती हैं, प्रत्येक पदार्थविषयक अवबोधात्मक

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

बुद्धिर्विवेचना वेद्यं बुद्ध्यते बुद्धिरुच्यते।
सूक्ष्मे व्यवहितेऽतीते विप्रकृष्टे त्वनागते॥ १७

सर्वत्र सर्वदा ज्ञानं प्रतिभानुक्रमेण तु।
श्रवणात्सर्वशब्दानामप्रयत्नेन योगिनः॥ १८

ह्रस्वदीर्घप्लुतादीनां गुह्यानां श्रवणादपि।
स्पर्शस्याधिगमो यस्तु वेदना तूपपादिता॥ १९

दर्शनाद्दिव्यरूपाणां दर्शनं चाप्रयत्नतः।
संविद्दिव्यरसे तस्मिन्नास्वादो ह्यप्रयत्नतः॥ २०

वार्ता च दिव्यगन्धानां तन्मात्रा बुद्धिसंविदा।
विन्दन्ते योगिनस्तस्मादाब्रह्मभवनं द्विजाः॥ २१

जगत्यस्मिन् हि देहस्थं चतुःषष्टिगुणं समम्।
औपसर्गिकमेतेषु गुणेषु गुणितं द्विजाः॥ २२

सन्त्याज्यं सर्वथा सर्वमौपसर्गिकमात्मनः।
पैशाचे पार्थिवं चाप्यं राक्षसानां पुरे द्विजाः॥ २३

याक्षे तु तैजसं प्रोक्तं गान्धर्वे श्वसनात्मकम्।
ऐन्द्रे व्योमात्मकं सर्वं सौम्ये चैव तु मानसम्॥ २४

प्राजापत्ये त्वहङ्कारं ब्राह्मे बोधमनुत्तमम्।
आद्ये चाष्टौ द्वितीये च तथा षोडशरूपकम्॥ २५

चतुर्विंशत्तृतीये तु द्वात्रिंशच्च चतुर्थके।
चत्वारिंशत् पञ्चमे तु भूतमात्रात्मकं स्मृतम्॥ २६

गन्धो रसस्तथा रूपं शब्दः स्पर्शस्तथैव च।
प्रत्येकमष्टधा सिद्धं पञ्चमे तच्छतक्रतोः॥ २७

वृत्तिको प्रतिभा कहते हैं, विवेचनापूर्वक वेद्य वस्तुको जिससे जाना जाय, वह बुद्धि कही गयी है। अतीत (भूत), अनागत (भविष्य), सूक्ष्म, अदृष्ट, दूरस्थ, अत्यन्त समीप (वर्तमान) पदार्थोंका सर्वदा एवं सर्वत्र ज्ञान प्रदान करनेवाली प्रतिभासिका वृत्ति ही प्रतिभा है॥ १६-१७$^{१}/_{२}$॥

सभी शब्दों, ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत आदि स्वरों तथा गुह्य ध्वनियोंका बिना किसी प्रयासके श्रवण होकर उनका यथार्थ ज्ञान हो जाना श्रवणासिद्धि है और स्पर्शकी जो अनुभूति है, वह वेदनासिद्धि कही गयी है॥ १८-१९॥

बिना किसी प्रयत्नके दिव्य रूपोंका भी नेत्रेन्द्रियसे दिखायी पड़ना दर्शनासिद्धि है और दिव्य रसोंका सहज रूपमें बिना किसी प्रयत्नके ठीक-ठीक ज्ञान होना आस्वादासिद्धि है। इसी तरह बुद्धिके द्वारा दिव्य गन्धोंका भी ठीक-ठीक गन्धतन्मात्राके रूपमें अनुभव कर लेना वार्तासिद्धि है॥ २०$^{१}/_{२}$॥

हे द्विजो! इस योगजनित धर्मरूप संसर्गसे योगीलोग इस जगत्में ब्रह्मलोकपर्यन्त जो सब कुछ है, उसे अपने देहमें स्थित देखते हैं। हे द्विजो! आगे बताये जानेवाले आठ गुण वृद्धिक्रमसे गुणित होकर संख्यामें चौंसठ गुणोंके बराबर हो जाते हैं॥ २१-२२॥

हे द्विजो! साधकको अपने इन औपसर्गिक अर्थात् विघ्नकारी गुणोंका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। पिशाचलोकमें पार्थिव गुण, राक्षसलोकमें जल-सम्बन्धी गुण, यक्षलोकमें तेजसम्बन्धी गुण, गन्धर्वलोकमें वायुसम्बन्धी गुण, इन्द्रलोकमें व्योमात्मक अर्थात् आकाशसम्बन्धी गुण, सोमलोकमें मनसम्बन्धी गुण, प्रजापतिलोकमें अहंकारसम्बन्धी गुण तथा ब्रह्मलोकमें सर्वोत्तम बोधगुण कहे गये हैं॥ २३-२४$^{१}/_{२}$॥

पहले पार्थिवमें आठ गुण, दूसरे जलमें सोलह गुण, तीसरे तेजमें चौबीस गुण, चौथे वायुमें बत्तीस गुण तथा पाँचवें आकाशमें चालीस गुणवाले ऐश्वर्य विद्यमान हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द पूर्वोक्त पंचमहाभूतोंकी तन्मात्राएँ कही गयी हैं। इन्द्रसम्बन्धी व्योमात्मक गुणपर्यन्त

तथाष्टचत्वारिंशच्च षट्पञ्चाशत्तथैव च।
चतुःषष्टिगुणं ब्राह्मं लभते द्विजसत्तमाः॥ २८

औपसर्गिकमाब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत्।
लोकेष्वालोक्य योगेन योगवित्परमं सुखम्॥ २९

स्थूलता ह्रस्वता बाल्यं वार्धक्यं यौवनं तथा।
नानाजातिस्वरूपं च चतुर्भिर्देहधारणम्॥ ३०

पार्थिवांशं विना नित्यं सुरभिर्गन्धसंयुतः।
एतदष्टगुणं प्रोक्तमैश्वर्यं पार्थिवं महत्॥ ३१

जले निवसनं यद्वद्भूम्यामिव विनिर्गमः।
इच्छेच्छक्तः स्वयं पातुं समुद्रमपि नातुरः॥ ३२

यत्रेच्छति जगत्यस्मिंस्तत्रास्य जलदर्शनम्।
यद्यद्वस्तु समादाय भोक्तुमिच्छति कामतः॥ ३३

तत्तद्रसान्वितं तस्य त्रयाणां देहधारणम्।
भाण्डं विनाथ हस्तेन जलपिण्डस्य धारणम्॥ ३४

अव्रणत्वं शरीरस्य पार्थिवेन समन्वितम्।
एतत् षोडशकं प्रोक्तमाप्यमैश्वर्यमुत्तमम्॥ ३५

देहादग्निविनिर्माणं तत्तापभयवर्जितम्।
लोकं दग्धमपीहान्यददग्धं स्वविधानतः॥ ३६

जलमध्ये हुतवहं चाधाय परिरक्षणम्।
अग्निनिग्रहणं हस्ते स्मृतिमात्रेण चागमः॥ ३७

भस्मीभूतविनिर्माणं यथापूर्वं सकामतः।
द्वाभ्यां रूपविनिष्पत्तिर्विना तैस्त्रिभिरात्मनः॥ ३८

चतुर्विंशात्मकं ह्येतत्तैजसं मुनिपुङ्गवाः।
मनोगतित्वं भूतानामन्तर्निवसनं तथा॥ ३९

इन पाँचोंमें प्रत्येक आठ-आठके वृद्धिक्रमसे बताये जा चुके हैं॥ २५—२७॥

हे उत्तम द्विजो! इसी प्रकार मनसम्बन्धी अड़तालीस गुण तथा अहंकारसम्बन्धी छप्पन गुण और अन्तमें चौंसठ गुणात्मक ब्राह्म अर्थात् बुद्धिसम्बन्धी ब्रह्मके ऐश्वर्यको साधक प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

जो योगी ब्रह्मलोकपर्यन्त सभी लोकोंमें औपसर्गिक अर्थात् योगविघ्नोंको विचारपूर्वक उनका परित्याग कर देता है, वह परम सुखी हो जाता है॥ २९॥

शरीरकी स्थूलता, ह्रस्वता, बालकपन, वृद्धता, यौवन, अनेकविध रूप धारण करना, बिना पार्थिव अंशके शेष चार तत्त्वोंसे देह धारण करना तथा नित्य सुगन्धिसे युक्त रहना—ये आठ प्रकारके महान् पार्थिव गुण कहे गये हैं॥ ३०-३१॥

पृथ्वीपर रहनेकी भाँति जलमें निवास करना, उससे बाहर आनेकी सामर्थ्य रखना, इच्छा होनेपर स्वयं सम्पूर्ण समुद्रका पान करनेमें समर्थ होना तथा उससे किसी प्रकारका प्रतिकूल प्रभाव न पड़ना, इस जगत्में जहाँ भी इच्छा करे, वहाँ जलका दर्शन कर लेना, जिस-जिस वस्तुका भक्षण किया जाय, उसे अपनी इच्छाके अनुसार रसयुक्त बना देना, तेज, वायु, आकाश—इन तीनोंसे देह धारण करना, बिना पात्रके हाथसे जलपिण्डका धारण करना तथा शरीरमें व्रण आदिका न होना—इन आठ तथा पूर्वोक्त पार्थिव गुणोंको मिलाकर—ये सोलह गुणात्मक आप्य (जलसम्बन्धी) उत्तम ऐश्वर्य कहे गये हैं॥ ३२—३५॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! देहसे अग्निका निर्माण, अग्निके तापका भय न होना, दग्धलोकको भी अपने योगविधानसे अदग्धतुल्य अर्थात् पूर्ववत् कर देना, जलके भीतर अग्नि स्थापित करके उसे वैसे ही बनाये रखना, हाथसे आग पकड़ लेना, स्मरणमात्रसे अग्नि प्रकट कर देना, भस्म हुए पदार्थको इच्छापूर्वक पहलेकी भाँति कर देना तथा उन तीनों (पृथ्वी, जल, तेज)-के बिना दो तत्त्वों अर्थात् वायु और आकाशसे अपनी देह धारण करना—ये चौबीस गुणवाले तैजस ऐश्वर्य हैं॥ ३६—३८½॥

पर्वतादिमहाभारस्कन्धेनोद्वहनं पुनः।
लघुत्वं च गुरुत्वं च पाणिभ्यां वायुधारणम्॥ ४०

अङ्गुल्यग्रनिघातेन भूमेः सर्वत्र कम्पनम्।
एकेन देहनिष्पत्तिर्वातैश्वर्यं स्मृतं बुधैः॥ ४१

छायाविहीननिष्पत्तिरिन्द्रियाणां च दर्शनम्।
आकाशगमनं नित्यमिन्द्रियार्थैः समन्वितम्॥ ४२

दूरे च शब्दग्रहणं सर्वशब्दावगाहनम्।
तन्मात्रलिङ्गग्रहणं सर्वप्राणिनिदर्शनम्॥ ४३

ऐन्द्रमैश्वर्यमित्युक्तमेतैरुक्तः पुरातनः।
यथाकामोपलब्धिश्च यथाकामविनिर्गमः॥ ४४

सर्वत्राभिभवश्चैव सर्वगुह्यनिदर्शनम्।
कामानुरूपनिर्माणं वशित्वं प्रियदर्शनम्॥ ४५

संसारदर्शनं चैव मानसं गुणलक्षणम्।
छेदनं ताडनं बन्धं संसारपरिवर्तनम्॥ ४६

सर्वभूतप्रसादश्च मृत्युकालजयस्तथा।
प्राजापत्यमिदं प्रोक्तमाहङ्कारिकमुत्तमम्॥ ४७

अकारणजगत्सृष्टिस्तथानुग्रह एव च।
प्रलयश्चाधिकारश्च लोकवृत्तप्रवर्तनम्॥ ४८

असादृश्यमिदं व्यक्तं निर्माणं च पृथक् पृथक्।
संसारस्य च कर्तृत्वं ब्राह्ममेतदनुत्तमम्॥ ४९

एतावत्तत्त्वमित्युक्तं प्राधान्यं वैष्णवं पदम्।
ब्रह्मणा तद्गुणं शक्यं वेत्तुमन्यैर्न शक्यते॥ ५०

विद्यते तत्परं शैवं विष्णुना नावगम्यते।
असंख्येयगुणं शुद्धं को जानीयाच्छिवात्मकम्॥ ५१

मनकी गति प्राप्त कर लेना अर्थात् जहाँ मनकी इच्छा हो वहाँ चले जाना, अन्य प्राणियोंके अन्तर्मनमें निवास करना, पर्वत आदि महाभार कंधेपर धारण करके चलना, हलका तथा भारी होनेकी सामर्थ्य रखना, हाथोंसे वायु पकड़ लेना, अंगुलिके अग्रभागसे आघात करके पृथ्वीमें सर्वत्र कम्पन उत्पन्न कर देना, केवल आकाश तत्त्वसे देह धारण करना—ये वातसम्बन्धी ऐश्वर्य विद्वानोंके द्वारा कहे गये हैं॥ ३९—४१॥

शरीरकी छाया न होना, इन्द्रियोंका प्रत्यक्ष दर्शन होना, आकाशमें गमन करना, इन्द्रियोंके अर्थका ज्ञान, दूरसे ही शब्दोंको सुननेकी क्षमता रखना, सभी शब्दोंके ज्ञानमें पारंगत होना, तन्मात्राओंके स्वरूपका ज्ञान तथा सभी प्राणियोंको साक्षात् देखनेमें समर्थ होना—ये ऐन्द्र ऐश्वर्य अर्थात् आकाशसम्बन्धी ऐश्वर्य हैं। इन समस्त पाँच प्रकारके ऐश्वर्योंसे युक्त साधक कायव्यूहसामर्थ्यवान् कहा जाता है॥ ४२-४३$^{१}/_{२}$॥

किसी भी अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति, जहाँ भी जानेकी इच्छा हो, वहाँ पहुँच जाना, सभी जगह अपना शक्तिप्राबल्य प्रदर्शित करना अर्थात् अपने प्रभावसे सभीको पराभूत कर देना, सभी गुप्त पदार्थोंको देख लेना, अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करना, सभीको अपने वशमें कर लेना, सभीको प्रिय लगना, सम्पूर्ण जगत्को देखनेकी सामर्थ्य रखना—ये सब मानस गुणोंके लक्षण हैं॥ ४४-४५$^{१}/_{२}$॥

छेदन, ताड़न, बन्ध, संसारपरिवर्तन, सर्वभूतप्रसाद, मृत्यु तथा कालका जय—ये प्रजापतिसम्बन्धी श्रेष्ठ आहंकारिक ऐश्वर्य कहे गये हैं॥ ४६-४७॥

बिना कारण जगत्की सृष्टि, अनुग्रह, प्रलय, अधिकार, लोकवृत्तका प्रवर्तन, असादृश्य, पृथक्-पृथक् व्यक्त निर्माण तथा संसारका कर्तृत्व—यह उत्तम ब्राह्म ऐश्वर्य है॥ ४८-४९॥

ये ब्राह्म ऐश्वर्यके तत्त्व कहे गये हैं और ये ही प्रधानसम्बन्धी वैष्णव पद हैं। ब्रह्माके बिना उस गुणको अन्य कोई नहीं जान सकता है॥ ५०॥

उस वैष्णवपदसे भी परे शैवपद है, जिसे विष्णु

व्युत्थाने सिद्धयश्चैता ह्युपसर्गाश्च कीर्तिताः।
निरोद्धव्याः प्रयत्नेन वैराग्येण परेण तु॥ ५२

नाशातिशयतां ज्ञात्वा विषयेषु भयेषु च।
अश्रद्धया त्यजेत्सर्वं विरक्त इति कीर्तितः॥ ५३

वैतृष्ण्यं पुरुषे ख्यातं गुणवैतृष्ण्यमुच्यते।
वैराग्येणैव सन्त्याज्याः सिद्धयश्चौपसर्गिकाः॥ ५४

औपसर्गिकमाब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत्।
निरुद्ध्यैव त्यजेत्सर्वं प्रसीदति महेश्वरः॥ ५५

प्रसन्ने विमला मुक्तिर्वैराग्येण परेण वै।
अथवानुग्रहार्थं च लीलार्थं वा तदा मुनिः॥ ५६

अनिरुद्ध्य विचेष्टेद्यः सोऽप्येवं हि सुखी भवेत्।
क्वचिद्भूमिं परित्यज्य ह्याकाशे क्रीडते श्रिया॥ ५७

उद्गिरेच्च क्वचिद्वेदान् सूक्ष्मानर्थान् समासतः।
क्वचिच्छ्रुते तदर्थेन श्लोकबन्धं करोति सः॥ ५८

क्वचिद्दण्डकबन्धं तु कुर्याद् बन्धं सहस्रशः।
मृगपक्षिसमूहस्य रुतज्ञानं च विन्दति॥ ५९

ब्रह्माद्यं स्थावरान्तं च हस्तामलकवद्भवेत्।
बहुनात्र किमुक्तेन विज्ञानानि सहस्रशः॥ ६०

उत्पद्यन्ते मुनिश्रेष्ठा मुनेस्तस्य महात्मनः।
अभ्यासेनैव विज्ञानं विशुद्धं च स्थिरं भवेत्॥ ६१

भी नहीं जानते हैं। असंख्य गुणोंवाले शुद्ध शिवात्मक तत्त्वको कौन जान सकता है अर्थात् कोई नहीं जान सकता॥ ५१॥

चौंसठ गुणात्मक ये ऐश्वर्य व्यवहारकालमें सिद्धि कहे जाते हैं, किंतु समाधिकालमें ये ही उपसर्ग अर्थात् विघ्न कहे गये हैं। इन्हें प्रयत्नपूर्वक परम वैराग्यसे रोकना चाहिये॥ ५२॥

भय उत्पन्न करनेवाले विषय-भोगोंकी अवश्यम्भावी नश्वरता जानकर सबका अश्रद्धासे त्याग कर देना चाहिये। ऐसा करनेवाला विरक्त कहा जाता है॥ ५३॥

पुरुषमें वितृष्णा नामसे प्रसिद्ध भावको ही गुणवैतृष्ण्य कहा जाता है। औपसर्गिक अर्थात् विघ्नरूप सिद्धियोंका वैराग्यके द्वारा परित्याग कर देना चाहिये॥ ५४॥

चित्तको विषयभोगोंसे हटाकर भुवनोंमें समस्त विघ्नरूप ब्राह्म ऐश्वर्योंका परित्याग करनेसे महेश्वर प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार साधकके परम वैराग्यसे शिवके प्रसन्न होनेपर उसे विमल मुक्ति प्राप्त होती है अथवा जो योगी सांसारिक प्राणियोंके कल्याणार्थ या लीलाके निमित्त इन सिद्धियोंका त्याग नहीं करता, वह भी सुखी ही रहता है॥ ५५-५६ १/२॥

कभी भूमि छोड़कर अपनी प्रबल शक्तिसे आकाशमें क्रीडा करता है और कभी सूक्ष्म अर्थात् सामान्य लोगोंके लिये अबोधगम्य वेदार्थोंको संक्षेपमें उच्चारित करता है॥ ५७ १/२॥

वह कभी कोई प्रसंग सुनकर उसके अर्थसे श्लोक-रचना कर डालता है। कभी दण्डक छन्दमें और इसी प्रकार हजारों प्रकारके छन्दोंमें काव्यरचना करता है॥ ५८ १/२॥

उसे मृग तथा पक्षिवर्गकी ध्वनियोंका ज्ञान हो जाता है। यहाँतक कि ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त समग्र संसार उस योगीके लिये हस्तामलकतुल्य हो जाता है॥ ५९ १/२॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! अधिक क्या कहा जाय; उस महात्मा योगीमें हजारों प्रकारके विज्ञान उत्पन्न हो जाते

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

तेजोरूपाणि सर्वाणि सर्वं पश्यति योगवित्।
देवबिम्बान्यनेकानि विमानानि सहस्रशः॥ ६२

पश्यति ब्रह्मविष्ण्वीन्द्रयमाग्निवरुणादिकान्।
ग्रहनक्षत्रताराश्च भुवनानि सहस्रशः॥ ६३

पातालतलसंस्थाश्च समाधिस्थः स पश्यति।
आत्मविद्याप्रदीपेन स्वस्थेनाचलनेन तु॥ ६४

प्रसादामृतपूर्णेन सत्त्वपात्रस्थितेन तु।
तमो निहत्य पुरुषः पश्यति ह्यात्मनीश्वरम्॥ ६५

तस्य प्रसादाद्धर्मश्च ऐश्वर्यं ज्ञानमेव च।
वैराग्यमपवर्गश्च नात्र कार्या विचारणा॥ ६६

न शक्यो विस्तरो वक्तुं वर्षाणामयुतैरपि।
योगे पाशुपते निष्ठा स्थातव्यं च मुनीश्वराः॥ ६७

हैं। सतत अभ्यासके द्वारा ही यह विशुद्ध विज्ञान सदा स्थिर रहता है॥ ६०-६१॥

योगी सभी तेजसम्पन्न देवताओंके बिम्ब तथा हजारों प्रकारके विमानोंको देखनेकी सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है॥ ६२॥

वह ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण आदि देवताओं, ग्रहों, नक्षत्रों, तारों तथा हजारों भुवनोंको देख लेता है॥ ६३॥

वह पातालके तलमें स्थित पदार्थोंको भी आत्मविद्यारूप स्वस्थ तथा अचल दीपकसे समाधिस्थ होकर देखता है॥ ६४॥

वह साधक प्रसादरूप अमृतसे पूर्ण सत्त्वपात्रमें स्थित उस आत्मविद्यारूप प्रदीपसे अज्ञानान्धकारको नष्ट करके अपने भीतर साक्षात् ईश्वरका दर्शन करता है॥ ६५॥

उसी परमेश्वरकी कृपासे धर्म, ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य तथा मोक्ष सुलभ हो जाते हैं; इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं करना चाहिये॥ ६६॥

हे मुनीश्वरो! शिवकी महिमाका विस्तृत वर्णन हजारों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है। अतएव पाशुपतयोगमें निष्ठापूर्वक रहना चाहिये तथा उसीमें सदा मनको स्थिर रखना चाहिये॥ ६७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे योगान्तरायकथनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'योगान्तरायकथन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

योगसिद्धिप्राप्त पुरुषोंके लक्षण, साधुधर्मका स्वरूप, भगवान् शिवके साक्षात्कारके उपायोंका वर्णन तथा भक्तिभावमें श्रद्धाकी महत्ता

सूत उवाच

सतां जितात्मनां साक्षाद् द्विजातीनां द्विजोत्तमाः।
धर्मज्ञानां च साधूनामाचार्याणां शिवात्मनाम्॥ १

दयावतां द्विजश्रेष्ठास्तथा चैव तपस्विनाम्।
संन्यासिनां विरक्तानां ज्ञानिनां वशगात्मनाम्॥ २

सूतजी बोले—हे उत्तम ब्राह्मणो! संत, जितेन्द्रिय, साक्षात् द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), धर्मज्ञ, साधु, आचार्य, शिवात्मा, दयावान्, तपस्वी, संन्यासी, वैराग्य-परायण, ज्ञानी, मनपर नियन्त्रण रखनेवाले, दानी, उदार, मनसा-वाचा-कर्मणा सत्यवादी, अलुब्ध,

दानिनां चैव दान्तानां त्रयाणां सत्यवादिनाम्।
अलुब्धानां सयोगानां श्रुतिस्मृतिविदां द्विजाः॥ ३

श्रौतस्मार्ताविरुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः।
सदिति ब्रह्मणः शब्दस्तदन्ते ये लभन्त्युत॥ ४

सायुज्यं ब्रह्मणो यान्ति तेन सन्तः प्रचक्षते।
दशात्मके ये विषये साधने चाष्टलक्षणे॥ ५

न क्रुध्यन्ति न हृष्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृताः।
सामान्येषु च द्रव्येषु तथा वैशेषिकेषु च॥ ६

ब्रह्मक्षत्रविशो यस्माद्युक्तास्तस्माद् द्विजातयः।
वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गादिसुखकारिणः॥ ७

श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्मज्ञ उच्यते।
विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः॥ ८

क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते।
साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः॥ ९

यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात्।
एवमाश्रमधर्माणां साधनात्साधवः स्मृताः॥ १०

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ॥ ११

कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ।
धारणार्थे महान् ह्येष धर्मशब्दः प्रकीर्तितः॥ १२

अधारणे महत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते।
अत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते॥ १३

अधर्मश्चानिष्टफलो ह्याचार्यैरुपदिश्यते।
वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदाम्भिकाः॥ १४

सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते।
स्वयमाचरते यस्मादाचारे स्थापयत्यपि॥ १५

योगपरायण, श्रुतियों तथा स्मृतियोंके वेत्ता, श्रुतियों तथा स्मृतियोंका अनुकरण करनेवालोंका विरोध न करनेवाले लोगोंपर महेश्वर प्रसन्न रहते हैं॥ १—३$^{१}/_{२}$॥

सत् शब्दका अर्थ ब्रह्म होता है। जो अन्तमें उस ब्रह्मको पा लेते हैं, वे ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होते हैं, इसीलिये ऐसे महात्मा संत कहे जाते हैं॥ ४$^{१}/_{२}$॥

दस इन्द्रियोंके विषयभोगोंमें तथा पूर्ववर्णित आठ प्रकारके ऐश्वर्यरूप साधनोंकी अप्राप्तिसे जो न तो क्रोध करते हैं और न उनकी प्राप्तिसे हर्षका अनुभव करते हैं, वे जितात्मा कहे गये हैं॥ ५$^{१}/_{२}$॥

सामान्य तथा विशेष पदार्थोंके साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंका सम्बन्धविशेष होनेसे ही ये द्विजाति कहे गये हैं॥ ६$^{१}/_{२}$॥

स्वर्ग आदिका सुख प्रदान करनेवाले श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित वर्णाश्रम-धर्मका ज्ञान रखनेसे व्यक्ति धर्मज्ञ कहा जाता है॥ ७$^{१}/_{२}$॥

विद्याकी साधना करनेके कारण गुरुका हित करनेवाला ब्रह्मचारी साधु तथा विहित कर्मोंकी साधना करनेवाला गृहस्थ साधु कहा जाता है। वनमें तपस्याकी साधना करनेसे वैखानस साधु एवं योगकी साधना करने तथा यतिधर्ममें परायण होनेसे व्यक्ति यति साधु कहा जाता है। इस प्रकार अपने-अपने आश्रमोंके धर्मोंका साधन करनेसे गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा यति—ये सभी साधु कहे गये हैं॥ ८—१०$^{१}/_{२}$॥

धर्म तथा अधर्म—ये दोनों शब्द क्रियाके वाचक कहे गये हैं। कुशल कर्मको धर्म तथा अकुशल कर्मको अधर्म कहा गया है॥ ११$^{१}/_{२}$॥

महत्तायुक्त यह धर्म शब्द धारणके अर्थमें कहा गया है तथा अधारण (धारण न करने)-को उद्देश्य करके कृत कर्म अधर्म कहा जाता है॥ १२$^{१}/_{२}$॥

जिससे अभीष्टकी प्राप्ति हो, उसे आचार्यलोग धर्म कहते हैं तथा जिससे अनिष्ट फलकी प्राप्ति हो, उसे आचार्यलोग अधर्म कहते हैं॥ १३$^{१}/_{२}$॥

वृद्ध, निर्लोभी, जितेन्द्रिय, दम्भ न करनेवाले, पूर्ण विनम्र, सरल स्वभाववाले लोगोंको आचार्य कहा जाता है॥ १४$^{१}/_{२}$॥

जो स्वयं आचरण करता है तथा सभीको आचारमें

आचिनोति च शास्त्रार्थानाचार्यस्तेन चोच्यते।
विज्ञेयं श्रवणाच्छ्रौतं स्मरणात्स्मार्तमुच्यते॥ १६

इज्या वेदात्मकं श्रौतं स्मार्तं वर्णाश्रमात्मकम्।
दृष्ट्वानुरूपमर्थं यः पृष्टो नैवापि गूहति॥ १७

यथादृष्टप्रवादस्तु सत्यं लैङ्गेऽत्र पठ्यते।
ब्रह्मचर्यं तथा मौनं निराहारत्वमेव च॥ १८

अहिंसा सर्वतः शान्तिस्तप इत्यभिधीयते।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च॥ १९

वर्तते त्वसकृद्वृत्तिः कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता।
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनैवागतं क्रमात्॥ २०

तत्तद्गुणवते देयं दातुस्तद्दानलक्षणम्।
दानं त्रिविधमित्येतत्कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम्॥ २१

कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः संविभागस्तु मध्यमः।
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः॥ २२

शिष्टाचाराविरुद्धश्च स धर्मः साधुरुच्यते।
मायाकर्मफलत्यागी शिवात्मा परिकीर्तितः॥ २३

निवृत्तः सर्वसङ्गेभ्यो युक्तो योगी प्रकीर्तितः।
असक्तो भयतो यस्तु विषयेषु विचार्य च॥ २४

अलुब्धः संयमी प्रोक्तः प्रार्थितोऽपि समन्ततः।
आत्मार्थं वा परार्थं वा इन्द्रियाणीह यस्य वै॥ २५

न मिथ्या सम्प्रवर्तन्ते शमस्यैव तु लक्षणम्।
अनुद्विग्नो ह्यनिष्टेषु तथेष्टान्नाभिनन्दति॥ २६

नियोजित करता है एवं शास्त्रोंके अर्थोंका परिशीलन करता है; वह आचार्य कहा जाता है॥ १५½॥

वेदोंका श्रवण करनेसे श्रौत तथा शास्त्रोंके अर्थोंका स्मरण करनेसे स्मार्त कहा जाता है। वेदविहित यज्ञ आदि करनेवाला श्रौत तथा वर्णाश्रमसम्बन्धी नियमोंका पालन करनेवाला स्मार्त कहा जाता है॥ १६½॥

किसीके द्वारा पूछनेपर देखे गये अनुरूप (कथनयोग्य) तथा अननुरूप (कथनके अयोग्य) विषयको बिना छिपाये अभिव्यक्त करनेको लिङ्गपुराणके अनुसार सत्य कहा गया है॥ १७½॥

ब्रह्मचर्य, मौन, निराहार, अहिंसा तथा सर्वविध शान्तिको तप कहा गया है॥ १८½॥

जो पुरुष सदा अपने ही हित तथा अहितकी भाँति सभी प्राणियोंके हिताहितका ध्यान रखता है; उसकी यह निरन्तर बनी रहनेवाली वृत्ति पूर्णतः दया कही गयी है॥ १९½॥

क्रमसे न्यायपूर्वक अर्जित अभीष्टतम द्रव्य गुणीको ही दिया जाना चाहिये। दाताके द्वारा प्रदत्त दानका यही लक्षण है। वह दान भी कनिष्ठ, मध्यम तथा श्रेष्ठ—तीन प्रकारका होता है। करुणापूर्वक सभी प्राणियोंके निमित्त धनका विभाग करना मध्यम दान है॥ २०-२१½॥

श्रुतियों तथा स्मृतियोंसे विहित वर्णाश्रमसम्बन्धी तथा शिष्टाचारके अनुकूल जो धर्म है, वह साधुधर्म कहा जाता है॥ २२½॥

मायायुक्त कर्मफलका त्याग करनेवाला शिवात्मा कहा जाता है तथा सभी आसक्तियोंसे निवृत्त प्राणी युक्त-योगी कहा जाता है॥ २३½॥

अनासक्त तथा पुनः-पुनः जन्म-मृत्युके भयसे भीत होकर विषयभोगोंकी नश्वरतापर विचार करके सभी ओरसे प्रलोभन दिये जानेपर भी जो अलुब्ध बना रहता है, वह संयमी कहा जाता है॥ २४½॥

अपने लिये अथवा दूसरेके लिये जिस व्यक्तिकी इन्द्रियाँ मिथ्या प्रवृत्त नहीं होतीं, वह शमके लक्षणोंवाला कहा जाता है॥ २५½॥

जो अनिष्ट अर्थात् प्रतिकूल विषयोंपर उद्विग्न

प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता।
संन्यासः कर्मणां न्यासः कृतानामकृतैः सह॥ २७

कुशलाकुशलानां तु प्रहाणं न्यास उच्यते।
अव्यक्ताद्यविशेषान्ते विकारेऽस्मिन्नचेतने॥ २८

चेतनाचेतनान्यत्वविज्ञानं ज्ञानमुच्यते।
एवं तु ज्ञानयुक्तस्य श्रद्धायुक्तस्य शङ्करः॥ २९

प्रसीदति न सन्देहो धर्मश्चायं द्विजोत्तमाः।
किं तु गुह्यतमं वक्ष्ये सर्वत्र परमेश्वरे॥ ३०

भवे भक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते।
अयोग्यस्यापि भगवान् भक्तस्य परमेश्वरः॥ ३१

प्रसीदति न सन्देहो निगृह्य विविधं तमः।
ज्ञानमध्यापनं होमो ध्यानं यज्ञस्तपः श्रुतम्॥ ३२

दानमध्ययनं सर्वं भवभक्त्यै न संशयः।
चान्द्रायणसहस्रैश्च प्राजापत्यशतैस्तथा॥ ३३

मासोपवासैश्चान्यैर्वा भक्तिर्मुनिवरोत्तमाः।
अभक्ता भगवत्यस्मिँल्लोके गिरिगुहाशये॥ ३४

पतन्ति चात्मभोगार्थं भक्तो भावेन मुच्यते।
भक्तानां दर्शनादेव नृणां स्वर्गादयो द्विजाः॥ ३५

नहीं होता तथा अनुकूल विषयोंकी प्राप्तिपर हर्षित नहीं होता; वह प्रीति, संताप तथा विषादसे रहित हो जाता है। उसकी यह विनिवृत्ति ही विरक्तता (विराग) कही जाती है॥ २६$^{१}/_{२}$॥

निषिद्ध कर्मोंसहित विहित कर्मोंमें दोष-गुण बुद्धिका न्यास (त्याग) ही संन्यास है और इष्ट और अनिष्ट कर्मोंका भलीभाँति छोड़ना ही न्यास है॥ २७$^{१}/_{२}$॥

अव्यक्त अर्थात् प्रकृतिसे लेकर परमाणुपर्यन्त इस जड जगत्के सभी पदार्थोंसे ईश्वरको पृथक् जानना ही वास्तविक ज्ञान है॥ २८$^{१}/_{२}$॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! इस प्रकारके ज्ञान तथा भक्ति (श्रद्धा)-से सम्पन्न पुरुषके ऊपर भगवान् शंकर अवश्य प्रसन्न होते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है और वास्तवमें यही धर्म है॥ २९$^{१}/_{२}$॥

'परम गुह्य रहस्य क्या है' अब मैं आप लोगोंको वह बताता हूँ। सर्वव्यापी परमेश्वर शिवमें भक्ति रखनी चाहिये। उस भक्तिसे युक्त प्राणी निःसंदेह मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ३०$^{१}/_{२}$॥

पात्रता न होनेपर भी उनकी परम भक्तिसे युक्त प्राणीके विविध अज्ञानरूप अन्धकारोंको दूर करके महेश्वर शिव उसपर प्रसन्न हो जाते हैं; इसमें संदेह नहीं है॥ ३१$^{१}/_{२}$॥

ज्ञान, अध्यापन, होम, ध्यान, यज्ञ, तप, वेद, दान, अध्ययन—ये सभी शिवकी भक्ति प्राप्त करनेके साधन हैं; इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है॥ ३२$^{१}/_{२}$॥

हे मुनीश्वरो! हजारों चान्द्रायण तथा सैकड़ों प्राजापत्यव्रतों, मासपर्यन्त किये गये उपवासों तथा अन्य अनुष्ठान आदिकी अपेक्षा शिवभक्ति ही श्रेष्ठ है॥ ३३$^{१}/_{२}$॥

भगवान् शिवकी भक्तिसे हीन प्राणी स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिये अनेकविध कर्मजालमें फँसकर गहन गिरि-गुहारूपी इस मृत्युलोकमें बार-बार गिरते रहते हैं, किंतु भक्तिभावसे युक्त प्राणी मुक्त हो जाता है॥ ३४$^{१}/_{२}$॥

हे द्विजो! भगवान् शिवके भक्तोंके दर्शनमात्रसे

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

न दुर्लभा न सन्देहो भक्तानां किं पुनस्तथा।
ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां तथान्येषामपि स्थितिः॥ ३६

भक्त्या एव मुनीनां च बलसौभाग्यमेव च।
भवेन च तथा प्रोक्तं सम्प्रेक्ष्योमां पिनाकिना॥ ३७

देव्यै देवेन मधुरं वाराणस्यां पुरा द्विजाः।
अविमुक्ते समासीना रुद्रेण परमात्मना॥ ३८

रुद्राणी रुद्रमाहेदं लब्ध्वा वाराणसीं पुरीम्।

श्रीदेव्युवाच

केन वश्यो महादेव पूज्यो दृश्यस्त्वमीश्वरः॥ ३९

तपसा विद्यया वापि योगेनेह वद प्रभो।

सूत उवाच

निशम्य वचनं तस्यास्तथा ह्यालोक्य पार्वतीम्॥ ४०

आह बालेन्दुतिलकः पूर्णेन्दुवदनां हसन्।
स्मृत्वाथ मेनया पत्न्या गिरेर्गां कथितां पुरा॥ ४१

चिरकालस्थितिं प्रेक्ष्य गिरौ देव्या महात्मनः।
देवि लब्धा पुरी रम्या त्वया यत्प्रष्टुमर्हसि॥ ४२

स्थानार्थं कथितं मात्रा विस्मृतेह विलासिनि।
पुरा पितामहेनापि पृष्टः प्रश्नवतां वरे॥ ४३

यथा त्वयाद्य वै पृष्टो द्रष्टुं ब्रह्मात्मकं त्वहम्।
श्वेते श्वेतेन वर्णेन दृष्ट्वा कल्पे तु मां शुभे॥ ४४

प्राणियोंको स्वर्ग आदि लोक सहज ही सुलभ हो जाते हैं तो फिर साक्षात् शिवभक्तोंके विषयमें क्या कहना! इस वास्तविकतामें कोई संदेह नहीं है॥ ३५$^{१}/_{२}$॥

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा अन्य देवता शिवभक्तिके द्वारा ही उत्तम पदको प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार मुनियोंका भी बल तथा सौभाग्य शिवभक्तिके ही कारण है॥ ३६$^{१}/_{२}$॥

हे ऋषियो! प्राचीन कालमें देवाधिदेव पिनाकी शंकरने उमाको लक्ष्य करके वाराणसीमें उनसे जिस मधुर प्रसंगका वर्णन किया था, वही मैं भी आप लोगोंसे कह रहा हूँ॥ ३७$^{१}/_{२}$॥

अविमुक्त क्षेत्र वाराणसीपुरीमें आकर भगवान् शिवके साथ विराजमान भगवती रुद्राणीने उन भगवान् रुद्रसे यह पूछा॥ ३८$^{१}/_{२}$॥

देवी श्रीपार्वतीने कहा—हे महादेव! तप, विद्या, योग आदि किस साधनसे आप वशमें होते हैं, पूजित होते हैं तथा दर्शन देते हैं? हे प्रभो! मुझे बताइये॥ ३९$^{१}/_{२}$॥

सूतजी बोले—उन पार्वतीका वचन सुनकर बालचन्द्रमाको तिलकरूपमें धारण करनेवाले शिवने पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुखवाली पार्वतीकी ओर देखकर हँसते हुए उनसे कहा—॥ ४०$^{१}/_{२}$॥

पूर्वमें चिरकालतक कैलासपर पार्वतीसहित मुझे रहते हुए देखकर हिमालयकी पत्नी मेनाद्वारा [अपना स्थान होना चाहिये—इस प्रकार] कही गयी वाणीको स्मरणकर सदाशिव बोले—हे देवि! हे विलासिनि! क्या तुम स्थानहेतु अपनी माताके द्वारा कहे गये वचनोंको भूल गयी हो? अब तुमने परम रम्य काशीपुरीको पा लिया है, अतः निश्चिन्त होकर अब तुम प्रश्न करनेयोग्य हो॥ ४१-४२$^{१}/_{२}$॥

प्रश्न करनेवालोंमें श्रेष्ठ हे पार्वति! जिस प्रकार ब्रह्मात्मक तत्त्व जाननेके लिये इस समय तुमने मुझसे प्रश्न किया है, उसी प्रकार प्राचीन कालमें पितामह ब्रह्माने भी मुझसे पूछा था॥ ४३$^{१}/_{२}$॥

हे कल्याणि! श्वेतकल्पमें श्वेतवर्ण सद्योजात

सद्योजातं तथा रक्ते रक्तं वामं पितामहः।
पीते तत्पुरुषं पीतमघोरे कृष्णमीश्वरम्॥ ४५

ईशानं विश्वरूपाख्ये विश्वरूपं तदाह माम्।

पितामह उवाच

वाम तत्पुरुषाघोर सद्योजात महेश्वर॥ ४६

दृष्टो मया त्वं गायत्र्या देवदेव महेश्वर।
केन वश्यो महादेव ध्येयः कुत्र घृणानिधे॥ ४७

दृश्यः पूज्यस्तथा देव्या वक्तुमर्हसि शङ्कर।

श्रीभगवानुवाच

अवोचं श्रद्धयैवेति वश्यो वारिजसम्भव॥ ४८

ध्येयो लिङ्गे त्वया दृष्टे विष्णुना पयसां निधौ।
पूज्यः पञ्चास्यरूपेण पवित्रैः पञ्चभिर्द्विजैः॥ ४९

भवभक्त्याद्य दृष्टोऽहं त्वयाण्डज जगद्गुरो।
सोऽपि मामाह भावार्थं दत्तं तस्मै मया पुरा॥ ५०

भावं भावेन देवेशि दृष्टवान् मां हृदीश्वरम्।
तस्मात्तु श्रद्धया वश्यो दृश्यः श्रेष्ठगिरेः सुते॥ ५१

पूज्यो लिङ्गे न सन्देहः सर्वदा श्रद्धया द्विजैः।
श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुतं तपः॥ ५२

श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च दृश्योऽहं श्रद्धया सदा॥ ५३

नामवाले, रक्तकल्पमें रक्तवर्ण वामदेव नामवाले, पीतकल्पमें पीतवर्ण तत्पुरुष नामवाले, कृष्णकल्पमें कृष्णवर्ण अघोर नामवाले तथा विश्वरूपकल्पमें विश्वरूप ईशान नामवाले मुझ ईश्वरको देखकर ब्रह्माजीने मुझसे कहा॥ ४४-४५ १/२॥

ब्रह्माजी बोले—हे वामदेव! हे तत्पुरुष! हे अघोर! हे सद्योजात! हे महेश्वर! हे देवदेव! महादेव! मैंने गायत्री-उपासनासे आपका दर्शन किया है॥ ४६ १/२॥

हे महादेव! आप किस प्रकार वशमें होते हैं? हे दयानिधे! आपका ध्यान कहाँ करना चाहिये? आप देवी पार्वतीके द्वारा दृश्य तथा पूज्य हैं। हे शंकर! कृपा करके मुझे बताइये॥ ४७ १/२॥

भगवान् श्रीशंकर [पार्वतीसे] बोले—तब मैंने ब्रह्माजीसे कहा कि हे कमलोद्भव पितामह! मैं केवल श्रद्धासे वशमें किया जा सकता हूँ और आपने तथा विष्णुने समुद्रमें जिस लिङ्गका दर्शन किया था, उसीमें सबको मेरा ध्यान करना चाहिये॥ ४८ १/२॥

द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य)-को पवित्र सद्योजात आदि पाँच मन्त्रोंसे मेरे पंचमुखरूपकी पूजा करनी चाहिये। हे अण्डज! हे जगद्गुरो! आज आपने उसी भक्तिसे ही मेरा दर्शन प्राप्त किया है॥ ४९ १/२॥

हे देवेशि! उन पितामहने भावपूर्वक मुझ ईश्वरको अपने हृदयमें देखा और जब उन्होंने मुझसे यह कहा कि आपमें मेरी अचल भक्ति हो, तब मैंने पूर्व-कालमें उन्हें वह भक्तिभाव प्रदान कर दिया। अतः हे श्रेष्ठ पर्वतकी पुत्री पार्वती! मात्र श्रद्धासे ही भक्त मुझे वशमें कर सकता है तथा मेरा दर्शन कर सकता है॥ ५०-५१॥

द्विजोंको लिङ्गमें ही श्रद्धापूर्वक सदा मेरी पूजा करनी चाहिये और इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं होना चाहिये। श्रद्धा ही परम सूक्ष्म धर्म है। श्रद्धा ही ज्ञान, हवन, तप, स्वर्ग तथा मोक्ष आदिका फल प्रदान करती है और इसी श्रद्धासे भक्त सदा मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त कर सकते हैं॥ ५२-५३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भक्तिभावकथनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'भक्तिभावकथन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

श्वेतलोहितकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् सद्योजातका प्रादुर्भाव तथा उनकी महिमा

ऋषय ऊचुः

कथं वै दृष्टवान् ब्रह्मा सद्योजातं महेश्वरम्।
वामदेवं महात्मानं पुराणपुरुषोत्तमम्॥ १
अघोरं च तथेशानं यथावद्वक्तुमर्हसि।

सूत उवाच

एकोनत्रिंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः॥ २
तस्मिंस्तत्परमं ध्यानं ध्यायतो ब्रह्मणस्तदा।
उत्पन्नस्तु शिखायुक्तः कुमारः श्वेतलोहितः॥ ३
तं दृष्ट्वा पुरुषं श्रीमान् ब्रह्मा वै विश्वतोमुखः।
हृदि कृत्वा महात्मानं ब्रह्मरूपिणमीश्वरम्॥ ४
सद्योजातं ततो ब्रह्मा ध्यानयोगपरोऽभवत्।
ध्यानयोगात्परं ज्ञात्वा ववन्दे देवमीश्वरम्॥ ५
सद्योजातं ततो ब्रह्मा ब्रह्म वै समचिन्तयत्।
ततोऽस्य पार्श्वतः श्वेताः प्रादुर्भूता महायशाः॥ ६
सुनन्दो नन्दनश्चैव विश्वनन्दोपनन्दनौ।
शिष्यास्ते वै महात्मानो यैस्तद् ब्रह्म सदावृतम्॥ ७
तस्याग्रे श्वेतवर्णाभः श्वेतो नाम महामुनिः।
विजज्ञेऽथ महातेजास्तस्माज्जज्ञे हरस्त्वसौ॥ ८
तत्र ते मुनयः सर्वे सद्योजातं महेश्वरम्।
प्रपन्नाः परया भक्त्या गृणन्तो ब्रह्म शाश्वतम्॥ ९
तस्माद्विश्वेश्वरं देवं ये प्रपद्यन्ति वै द्विजाः।
प्राणायामपरा भूत्वा ब्रह्मतत्परमानसाः॥ १०
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चसः।
विष्णुलोकमतिक्रम्य रुद्रलोकं व्रजन्ति ते॥ ११

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] ब्रह्माजीने सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर तथा ईशानसंज्ञक सनातन पुरुषोत्तम महेश्वर शिवको किस प्रकार देखा? आप हमें यथावत् रूपसे यह बतानेकी कृपा कीजिये॥ १½॥

सूतजी बोले—उनतीसवाँ कल्प श्वेतलोहित नामसे जाना जाता है। उस कल्पमें जब ब्रह्माजी समाधिस्थ होकर परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे, उसी समय शिखाधारी श्वेतलोहित वर्णवाला एक कुमार प्रकट हुआ॥ २-३॥

उन सद्योजात कुमारको देखकर सर्वतोमुख श्रीमान् ब्रह्माजी उन्हीं ब्रह्मरूपी महात्मा परमेश्वरको हृदयमें धारण करके ध्यानयोगमें तत्पर हो गये। पुनः ध्यान-योगसे उन्हें साक्षात् परमेश्वर जानकर प्रणाम किया। ब्रह्माजीने उन सद्योजात कुमारको परात्पर ब्रह्म कल्पित कर लिया॥ ४-५½॥

तत्पश्चात् उन सद्योजात ब्रह्मके समीप ही सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द तथा उपनन्दन नामक श्वेतवर्णवाले चार महायशस्वी शिष्य प्रकट हुए। वे महात्मा शिष्य उन सद्योजात ब्रह्मकी सेवामें सर्वदा तत्पर रहते थे॥ ६-७॥

उनके आगे श्वेत वर्णकी आभावाले श्वेत नामक एक महातेजस्वी मुनि उत्पन्न हुए। उन सद्योजातसे उत्पन्न होनेके कारण उस मुनिका नाम हर भी है॥ ८॥

वहाँपर वे सभी मुनि परम भक्तिसे शाश्वत ब्रह्मरूप उन सद्योजात महेश्वरकी स्तुति करते हुए उनके शरणागत हुए॥ ९॥

अतएव हे द्विजो! जो प्राणी प्राणायामपरायण होकर ब्रह्मतत्परचित्तसे उन विश्वेश्वरदेवके शरणागत होते हैं; वे सभी पापोंसे मुक्त, विमल आत्मावाले तथा ब्रह्मज्ञानी हो जाते हैं और अन्तमें विष्णुलोकको भी पार करके रुद्रलोकको जाते हैं॥ १०-११॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सद्योजातमाहात्म्यं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सद्योजातमाहात्म्य' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

रक्तकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् वामदेवका प्रादुर्भाव तथा उनकी महिमा

सूत उवाच

ततस्त्रिंशत्तमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तितः।
ब्रह्मा यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत्॥ १

ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारो रक्तभूषणः॥ २

रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तनेत्रः प्रतापवान्।
स तं दृष्ट्वा महात्मानं कुमारं रक्तवाससम्॥ ३

परं ध्यानं समाश्रित्य बुबुधे देवमीश्वरम्।
स तं प्रणम्य भगवान् ब्रह्मा परमयन्त्रितः॥ ४

वामदेवं ततो ब्रह्मा ब्रह्म वै समचिन्तयत्।
तथा स्तुतो महादेवो ब्रह्मणा परमेश्वरः॥ ५

प्रतीतहृदयः सर्व इदमाह पितामहम्।
ध्यायता पुत्रकामेन यस्मात्तेऽहं पितामह॥ ६

दृष्टः परमया भक्त्या स्तुतश्च ब्रह्मपूर्वकम्।
तस्माद् ध्यानबलं प्राप्य कल्पे कल्पे प्रयत्नतः॥ ७

वेत्स्यसे मां प्रसंख्यातं लोकधातारमीश्वरम्।
ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारस्ते कुमारकाः॥ ८

सम्बभूवुर्महात्मानो विशुद्धा ब्रह्मवर्चसः।
विरजाश्च विबाहुश्च विशोको विश्वभावनः॥ ९

ब्रह्मण्या ब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिनः।
रक्ताम्बरधराः सर्वे रक्तमाल्यानुलेपनाः॥ १०

रक्तकुङ्कुमलिप्ताङ्गा रक्तभस्मानुलेपनाः।
ततो वर्षसहस्रान्ते ब्रह्मत्वेऽध्यवसायिनः॥ ११

सूतजी बोले—तीसवाँ कल्प रक्तकल्पके नामसे प्रसिद्ध है। महान् तेजस्वी ब्रह्माने उस कल्पमें रक्तवर्ण धारण किया था॥ १॥

पुत्रकी कामनासे ध्यानरत परमेष्ठी ब्रह्माजीके समक्ष एक महातेजस्वी तथा प्रतापी कुमार प्रकट हुआ। वह रक्तवर्णके भूषण, रक्तवर्णकी माला तथा रक्तवर्णके वस्त्र धारण किये हुए था तथा उसके नेत्र भी रक्तवर्णके थे॥ २½॥

लाल वस्त्र धारण किये उस महात्मा कुमारको देखकर ब्रह्माजीने परम ध्यानयोगसे यह जान लिया कि यह कुमार तो साक्षात् देवेश्वर है॥ ३½॥

उन्हें प्रणाम करके आत्मजित् भगवान् ब्रह्माने वामदेवसंज्ञक उन परमेश्वरको साक्षात् ब्रह्मस्वरूप कल्पित किया॥ ४½॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीके द्वारा अनेकविध स्तुति किये जानेपर प्रसन्नहृदय परमेश्वर महादेवने उन पितामहसे यह कहा॥ ५½॥

हे पितामह! पुत्रकी कामनासे ध्यानपरायण आपने मेरा दर्शन प्राप्त किया और परम भक्तिसे ब्रह्म अर्थात् 'वामदेवाय' मन्त्र पूर्वमें लगाकर अनेक स्तुतियोंसे मेरा स्तवन किया। अतएव आप प्रयत्नपूर्वक ध्यानबलका आश्रय लेकर कल्प-कल्पमें मुझ सर्वश्रेष्ठ तथा लोकके आधारस्वरूप परमेश्वरको भलीभाँति जानेंगे॥ ६-७½॥

इसके अनन्तर ब्रह्माजीके विरजा, विबाहु, विशोक तथा विश्वभावन नामवाले चार और कुमार उत्पन्न हुए। वे सभी कुमार महान्, विशुद्ध आत्मावाले तथा ब्रह्मतेजसे सम्पन्न थे॥ ८-९॥

वे सभी कुमार ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मातुल्य, वीर तथा अध्यवसायी थे। वे रक्तवर्णके वस्त्र तथा रक्तवर्णकी मालासे विभूषित थे। उनके शरीरमें लाल कुमकुम तथा लाल भस्म लगा हुआ था॥ १०½॥

तत्पश्चात् एक हजार वर्षके अनन्तर ब्रह्मभावमें

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

गृणन्तश्च महात्मानो ब्रह्म तद्वामदैविकम्।
अनुग्रहार्थं लोकानां शिष्याणां हितकाम्यया॥ १२

धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा ते ब्रह्मणः प्रियाः।
पुनरेव महादेवं प्रविष्टा रुद्रमव्ययम्॥ १३

येऽपि चान्ये द्विजश्रेष्ठा युञ्जाना वाममीश्वरम्।
प्रपश्यन्ति महादेवं तद्भक्तास्तत्परायणाः॥ १४

ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मचारिणः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ १५

लीन वे सभी ब्रह्मप्रिय महात्मा कुमार उस वामदेवरूप ब्रह्मका चिन्तन करते हुए लोकके अनुग्रह तथा शिष्योंके कल्याणकी कामनासे सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश करके पुनः शाश्वत महादेव रुद्रमें समाविष्ट हो गये॥ ११—१३॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! इसी प्रकार परमेश्वरपरायण अन्य जो भी भक्त समाधिसे ध्यान करके ब्रह्मरूप परमेश्वर वामदेवका दर्शन करेंगे; विमल आत्मावाले ब्रह्मनिष्ठ वे सभी भक्त पापसे छूटकर उस रुद्रलोकको प्राप्त होंगे, जहाँसे जीवका पुनः संसारमें आगमन नहीं होता॥ १४-१५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वामदेवमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'वामदेवमाहात्म्य' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

पीतवासाकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् तत्पुरुषका प्रादुर्भाव तथा उनका माहात्म्य

सूत उवाच

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः।
ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह॥ १

ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रधृक्॥ २

पीतगन्धानुलिप्ताङ्गः पीतमाल्याम्बरो युवा।
हेमयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुजः॥ ३

तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मा लोकमहेश्वरम्।
मनसा लोकधातारं प्रपेदे शरणं विभुम्॥ ४

ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरीं वराम्।
गां विश्वरूपां ददृशे महेश्वरमुखाच्च्युताम्॥ ५

चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुःस्तनीम्।
चतुर्नेत्रां चतुःशृङ्गीं चतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम्॥ ६

द्वात्रिंशद्गुणसंयुक्तामीश्वरीं सर्वतोमुखाम्।
स तां दृष्ट्वा महातेजा महादेवीं महेश्वरीम्॥ ७

सूतजी बोले—इकतीसवाँ कल्प 'पीतवासा' कल्प नामवाला कहा गया है, जिसमें महाभाग ब्रह्माने पीला वस्त्र धारण किया था॥ १॥

पुत्रप्राप्तिकी कामनासे परमेश्वरके ध्यानमें रत परमेष्ठी ब्रह्माजीके समक्ष पीतवस्त्रधारी एक महातेजस्वी कुमार प्रकट हुआ। वह कुमार पीतवर्णकी माला तथा पीत परिधान धारण किये हुए था। उस महान् भुजाओंवाले कुमारके अंगोंमें पीत वर्णका गन्ध लिप्त था तथा वह पीले वर्णकी पगड़ी और हेमवर्णके यज्ञोपवीतसे सुशोभित था॥ २-३॥

ध्यानयुक्त होकर ब्रह्माजीने जब यह जान लिया कि ये जगत्के परमेश्वर हैं, तब वे हृदयसे लोकके आधाररूप प्रभु महेश्वरके शरणागत हो गये॥ ४॥

उसी समय ध्यानगत ब्रह्माजीने महेश्वरके मुखसे निकली हुई, चार पैरोंवाली, चार वक्त्रोंवाली, चार हाथोंवाली, चार स्तनोंवाली, चार नेत्रोंवाली, चार सींगोंवाली, चार दाढ़ोंवाली, चार मुखोंवाली, बत्तीस गुणोंसे युक्त, सभी दिशाओंमें मुखवाली, ईश्वररूपिणी विश्वरूपा श्रेष्ठ महेश्वरस्वरूपिणी गाय देखी॥ ५-६$^{१}/_{२}$॥

तब उस महादेवी महेश्वरी गायको देखकर सभी

पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः।
मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः॥ ८

एह्येहीति महादेवि सातिष्ठत्प्राञ्जलिर्विभुम्।
विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु॥ ९

देवताओंके वन्दनीय महातेजस्वी महादेवने 'तुम मति हो, बुद्धि हो तथा स्मृति हो'—इस रूपमें उस धेनुकी महिमाका बार-बार गान करते हुए कहा—हे महादेवि! आओ, आओ; और सम्पूर्ण जगत्को योगके द्वारा आवृत करके अपने वशमें करो। इस प्रकार कहनेपर वह धेनु हाथ जोड़कर सर्वसमर्थ महादेवके सम्मुख खड़ी हो गयी॥ ७—९॥

अथ तामाह देवेशो रुद्राणी त्वं भविष्यसि।
ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्था भविष्यसि॥ १०

इसके अनन्तर देवेश्वर महादेवने उससे कहा—तुम रुद्राणी होओगी और ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये परमार्थसाधिका बनोगी॥ १०॥

तथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः।
प्रददौ देवदेवेशः चतुष्पादां जगद्गुरुः॥ ११

ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम्।
ब्रह्मा लोकगुरोः सोऽथ प्रतिपेदे महेश्वरीम्॥ १२

ऐसा कहकर देवाधिदेव जगद्गुरु महादेवने पुत्रकी कामनासे ध्यानरत ब्रह्माजीको वह चतुष्पाद गाय दे दी। तदनन्तर ध्यानयोगसे उस धेनुको परमेश्वरी जानकर ब्रह्माजीने जगद्गुरु महादेवसे वह माहेश्वर धेनु प्राप्त कर ली॥ ११-१२॥

गायत्रीं तु ततो रौद्रीं ध्यात्वा ब्रह्मानुयन्त्रितः।
इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रिमीरिताम्॥ १३

जपित्वा तु महादेवीं ब्रह्मा लोकनमस्कृताम्।
प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा॥ १४

ब्रह्माजी एकाग्रचित्त होकर रौद्री गायत्रीका ध्यान करके और रौद्री गायत्रीके रूपमें कथित इस वेदप्रतिपादित, ज्ञानदायिनी, विद्यास्वरूपिणी तथा लोकवन्द्या महादेवी (धेनु)-का ध्यानयुक्त मनसे जप करके महादेवके शरणागत हुए॥ १३-१४॥

ततस्तस्य महादेवो दिव्ययोगं बहुश्रुतम्।
ऐश्वर्यं ज्ञानसम्पत्तिं वैराग्यं च ददौ प्रभुः॥ १५

तत्पश्चात् परमेश्वर महादेवने उन ब्रह्माजीको दिव्य योग, महान् कीर्ति, ऐश्वर्य, ज्ञानसम्पदा तथा वैराग्य प्रदान किया॥ १५॥

ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः प्रादुर्भूताः कुमारकाः।
पीतमाल्याम्बरधराः पीतस्रगनुलेपनाः॥ १६

पीताभोष्णीषशिरसः पीतास्याः पीतमूर्धजाः।
ततो वर्षसहस्रान्त उषित्वा विमलौजसः॥ १७

योगात्मानस्तपोह्लादाः ब्राह्मणानां हितैषिणः।
धर्मयोगबलोपेता मुनीनां दीर्घसत्रिणाम्॥ १८

इसके बाद तत्पुरुषसंज्ञक उन महादेवके समीप दिव्य कुमार प्रकट हुए, जो पीले रंगकी माला तथा वस्त्र धारण किये हुए थे और पीले रंगके गन्धका अनुलेपन किये हुए थे। उनके सिरपर पीले रंगकी पगड़ी थी। उनके मुख तथा बाल भी पीतवर्णके थे॥ १६½॥

तदनन्तर विमल ओजसे युक्त, योगात्मा, तपस्यामें ही आह्लादित रहनेवाले, ब्राह्मणोंके हितैषी तथा धर्म एवं योगबलसे सम्पन्न वे कुमार एक हजार वर्षतक उन तत्पुरुष महादेवके समीप निवास करके यज्ञ करनेवाले मुनियोंको महायोगका उपदेश प्रदानकर महेश्वरमें समाविष्ट हो गये॥ १७-१८½॥

उपदिश्य महायोगं प्रविष्टास्ते महेश्वरम्।
एवमेतेन विधिना ये प्रपन्ना महेश्वरम्॥ १९

इसी विधिसे अन्य जो भी लोग नियतात्मा,

अन्येऽपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः।
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विमला ब्रह्मवर्चसः॥ २०
प्रविशन्ति महादेवं रुद्रं ते त्वपुनर्भवाः॥ २१

ध्यानपरायण तथा जितेन्द्रिय होकर महेश्वरके शरणागत होते हैं, वे समस्त पापोंसे मुक्त होकर शुद्धात्मा तथा ब्रह्मतेजसम्पन्न हो जाते हैं और अन्तमें महादेवमें प्रविष्ट हो जाते हैं तथा पुनर्भवके बन्धनसे छूट जाते हैं॥ १९—२१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे तत्पुरुषमाहात्म्यं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'तत्पुरुषमाहात्म्य' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

असितकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् अघोरका प्राकट्य और उनका माहात्म्य

सूत उवाच

ततस्तस्मिन् गते कल्पे पीतवर्णे स्वयम्भुवः।
पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु कल्पो नाम्नासितस्तु सः॥ १

एकार्णवे तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः॥ २

तस्य चिन्तयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभोः।
कृष्णः समभवद्वर्णो ध्यायतः परमेष्ठिनः॥ ३

अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम्।
कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा॥ ४

कृष्णाम्बरधरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम्।
कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्रगनुलेपनम्॥ ५

स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम्।
ववन्दे देवदेवेशमद्भुतं कृष्णपिङ्गलम्॥ ६

प्राणायामपरः श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम्।
मनसा ध्यानयुक्तेन प्रपन्नस्तु तमीश्वरम्॥ ७

अघोरं तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपं व्यचिन्तयत्।
तथा वै ध्यायमानस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ८

प्रददौ दर्शनं देवो ह्यघोरो घोरविक्रमः।
अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्रगनुलेपनाः॥ ९

सूतजी बोले—इसके बाद उस पीतकल्पके बीत जानेपर ब्रह्माका दूसरा कल्प प्रवृत्त हुआ। वह असित कल्प नामवाला था॥ १॥

एक हजार दिव्य वर्षोंतक जब सर्वत्र जल-ही-जल व्याप्त रहा, तब ब्रह्माजी अत्यन्त दुःखित होकर प्रजासृष्टिकी इच्छासे विचारमग्न हो गये॥ २॥

इस प्रकार चिन्तनमग्न होकर पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे प्रभु ब्रह्माका वर्ण काला हो गया॥ ३॥

इसी बीच महातेजस्वी ब्रह्माने कृष्णवर्णवाले, महान् वीर्यसम्पन्न, अपने तेजसे देदीप्यमान, कृष्णवर्णका वस्त्र-पगड़ी तथा यज्ञोपवीत धारण किये हुए, कृष्णमुकुटसे सुशोभित, कृष्णमाला धारण किये हुए तथा कृष्ण अंगरागसे अनुलिप्त अंगोंवाले एक कुमारको वहाँ प्रकट हुआ देखा॥ ४-५॥

उन घोर पराक्रमवाले महात्माको अघोरसंज्ञक महादेव जानकर ब्रह्माजीने अद्भुत कृष्ण-पिंगल वर्णकी आभासे युक्त उन देवदेवेशको प्रणाम किया॥ ६॥

तत्पश्चात् ध्यानयुक्त मनसे प्राणायामपरायण होकर तथा महेश्वरको हृदयमें धारणकर श्रीमान् ब्रह्माजी उन अघोररूप परमेश्वरके शरणागत हो गये और उन अघोरको ब्रह्मस्वरूप मानकर उनका ध्यान करने लगे। तदनन्तर घोर पराक्रमवाले अघोर महादेवने उन ध्यानपरायण परमेष्ठी ब्रह्माको साक्षात् दर्शन दिया॥ ७-८½॥

तदनन्तर उन अघोरके समीप कृष्ण, कृष्णशिख,

चत्वारस्तु महात्मानः सम्बभूवुः कुमारकाः।
कृष्णः कृष्णशिखश्चैव कृष्णास्यः कृष्णवस्त्रधृक्॥ १०

कृष्णास्य तथा कृष्णवस्त्रधृक् नामवाले चार महात्मा कुमार प्रादुर्भूत हुए, जो कृष्णवर्णके थे, कृष्णमालासे विभूषित थे और कृष्ण अंगरागसे अनुलिप्त थे॥ ९-१०॥

ततो वर्षसहस्रं तु योगतः परमेश्वरम्।
उपासित्वा महायोगं शिष्येभ्यः प्रददुः पुनः॥ ११

एक हजार वर्षोंतक योगपरायण होकर उन अघोर परमेश्वरकी उपासना करके उन कुमारोंने पुनः अपने शिष्योंको महायोगका उपदेश प्रदान किया॥ ११॥

योगेन योगसम्पन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम्।
अमलं निर्गुणं स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम्॥ १२

योगसम्पन्न वे सभी महात्मा मनसे शिवका ध्यानयोग करके महेश्वरके निर्विकार, निर्गुण, विश्वरूप तथा ऐश्वर्यमय स्थानमें प्रविष्ट हुए॥ १२॥

एवमेतेन योगेन येऽपि चान्ये मनीषिणः।
चिन्तयन्ति महादेवं गन्तारो रुद्रमव्ययम्॥ १३

इसी प्रकार और भी अन्य जो मनीषी इस योगके द्वारा महादेवका ध्यान करते हैं, वे अविनाशी भगवान् रुद्रके दिव्य लोकको प्राप्त होते हैं॥ १३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे अघोरोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अघोरोत्पत्तिवर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

अघोरेशमाहात्म्य तथा अघोरमन्त्रके जपसे विविध पातकोंका विनाश

सूत उवाच

ततस्तस्मिन् गते कल्पे कृष्णवर्णे भयानके।
तुष्टाव देवदेवेशं ब्रह्मा तं ब्रह्मरूपिणम्॥ १

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] उस भयावह कृष्ण कल्पके बीत जानेपर ब्रह्माजी उन ब्रह्मस्वरूप देवदेवेश अघोरकी स्तुति करने लगे॥ १॥

अनुगृह्य ततस्तुष्टो ब्रह्माणमवदद्धरः।
अनेनैव तु रूपेण संहरामि न संशयः॥ २

ब्रह्महत्यादिकान् घोरांस्तथान्यानपि पातकान्।
हीनांश्चैव महाभाग तथैव विविधान्यपि॥ ३

उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर महादेवने अनुग्रह करके ब्रह्मासे कहा—हे महाभाग! ब्रह्महत्या आदि महापातकों, अन्य पातकों तथा अनेकविध पापोंको मैं अपने इसी अघोर रूपसे दूर करता हूँ; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ २-३॥

उपपातकमप्येवं तथा पापानि सुव्रत।
मानसानि सुतीक्ष्णानि वाचिकानि पितामह॥ ४

कायिकानि सुमिश्राणि तथा प्रासङ्गिकानि च।
बुद्धिपूर्वं कृतान्येव सहजागन्तुकानि च॥ ५

मातृदेहोत्थितान्येवं पितृदेहे च पातकम्।
संहरामि न सन्देहः सर्वं पातकजं विभो॥ ६

हे सुव्रत! हे पितामह! इसी प्रकार सभी उपपातकों, मानसिक पापों, सुतीक्ष्ण वाचिक पापों, कायिक पापों, मिश्रित पापों, प्रासंगिक पापों, जानबूझकर किये गये पापों, सहज रूपमें आगन्तुक पापों तथा पितृ-मातृदेहजन्य पापोंको दूर कर देता हूँ और हे विभो! समस्त प्रकारके पातकजनित दुःखोंका नाश कर देता हूँ; इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है॥ ४—६॥

लक्षं जप्त्वा ह्यघोरेभ्यो ब्रह्महा मुच्यते प्रभो।
तदर्धं वाचिके वत्स तदर्धं मानसे पुनः॥ ७

हे प्रभो! एक लाख बार अघोर मन्त्र (**अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः०**) जपकर ब्रह्महत्यारा भी मुक्त हो जाता है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sonal_Shashi1_Back

चतुर्गुणं बुद्धिपूर्वे क्रोधादष्टगुणं स्मृतम्।
वीरहा लक्षमात्रेण भ्रूणहा कोटिमभ्यसेत्॥ ८

मातृहा नियुतं जप्त्वा शुद्ध्यते नात्र संशयः।
गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च स्त्रीघ्नः पापयुतो नरः॥ ९

अयुताघोरमभ्यस्य मुच्यते नात्र संशयः।
सुरापो लक्षमात्रेण बुद्ध्याबुद्ध्यापि वै प्रभो॥ १०

मुच्यते नात्र सन्देहस्तदर्धेन च वारुणीम्।
अस्नाताशी सहस्रेण अजपी च तथा द्विजः॥ ११

अहुताशी सहस्रेण अदाता च विशुद्ध्यति।
ब्राह्मणस्वापहर्ता च स्वर्णस्तेयी नराधमः॥ १२

नियुतं मानसं जप्त्वा मुच्यते नात्र संशयः।
गुरुतल्परतो वापि मातृघ्नो वा नराधमः॥ १३

ब्रह्मघ्नश्च जपेदेवं मानसं वै पितामह।
सम्पर्कात्पापिनां पापं तत्समं परिभाषितम्॥ १४

तथाप्ययुतमात्रेण पातकाद्वै प्रमुच्यते
संसर्गात्पातकी लक्षं जपेद्वै मानसं धिया॥ १५

उपांशु यच्चतुर्धा वै वाचिकं चाष्टधा जपेत्।
पातकादर्धमेव स्यादुपपातकिनां स्मृतम्॥ १६

हे वत्स! उससे आधा जप करनेसे वाचिक पाप तथा उससे भी आधे जपसे मानसिक पाप, चार गुना जप करनेसे बुद्धिपूर्वक अर्थात् जानबूझकर किये गये पाप तथा आठ गुना जप करनेसे क्रोधपूर्वक किये गये पाप दूर होते हैं॥ ७½॥

वीरोंकी हत्या करनेवालेको एक लाख जप तथा भ्रूण-हत्या करनेवालेको एक करोड़ जप करना चाहिये। माताका हत्यारा दस लाख जप करनेसे शुद्ध होता है; इसमें संशय नहीं है॥ ८½॥

गायकी हत्या करनेवाला, कृतघ्न तथा स्त्रीका हत्यारा—ऐसा पापी मनुष्य दस हजार बार अघोरमन्त्र जपकर पापमुक्त हो जाता है; इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है॥ ९½॥

हे प्रभो! जानकर अथवा बिना जाने सुरापान करनेवाला एक लाख जपसे तथा वारुणी (मद्य) पीनेवाला उसके आधे अर्थात् पचास हजार जपसे पापमुक्त हो जाता है; इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है॥ १०½॥

बिना स्नान किये भोजन करनेवाला, गायत्री-जप तथा अग्निहोत्र किये बिना और देवताओं एवं अतिथियों आदिको भोजन कराये बिना भोजन करनेवाला द्विज एक हजार जप करनेसे शुद्ध होता है॥ ११½॥

ब्राह्मणका धन हरण करनेवाला तथा स्वर्णकी चोरी करनेवाला अधम व्यक्ति दस लाख अघोर मन्त्र जपकर पापसे मुक्त होता है, इसमें संदेह नहीं है। इसी प्रकार हे पितामह! गुरुपत्नीमें आसक्ति रखनेवाले, माताका वध करनेवाले तथा ब्रह्महत्यारे नराधमको भी [पापमुक्तिहेतु] दस लाख मानस जप करना चाहिये॥ १२-१३½॥

पापियोंके सम्पर्कमात्रसे लगनेवाला पाप उन पापियोंके पापके ही समान कहा गया है, फिर भी मात्र दस हजार जपसे ही सम्पर्कमें रहनेवाला प्राणी उस पापसे मुक्त हो जाता है॥ १४½॥

संसर्गसे होनेवाले पाप-शमनके लिये पातकीको एक लाख मानस जप अथवा उसका चार गुना उपांशु जप अथवा आठ गुना वाचिक जप बुद्धिपूर्वक करना

तदर्धं केवले पापे नात्र कार्या विचारणा।
ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयमेव च॥ १७

कृत्वा च गुरुतल्पं च पापकृद् ब्राह्मणो यदि।
रुद्रगायत्रिया ग्राह्यं गोमूत्रं कापिलं द्विजाः॥ १८

गन्धद्वारेति तस्या वै गोमयं स्वस्थमाहरेत्।
तेजोऽसिशुक्रमित्याज्यं कापिलं संहरेद् बुधः॥ १९

आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति चाहरेत्।
गव्यं दधि नवं साक्षात्कापिलं वै पितामह॥ २०

देवस्य त्वेति मन्त्रेण सङ्ग्रहेद्वै कुशोदकम्।
एकस्थं हेमपात्रे वा कृत्वाघोरेण राजते॥ २१

ताम्रे वा पद्मपत्रे वा पालाशे वा दले शुभे।
सकूर्चं सर्वरत्नाढ्यं क्षिप्त्वा तत्रैव काञ्चनम्॥ २२

जपेल्लक्षमघोराख्यं हुत्वा चैव घृतादिभिः।
घृतेन चरुणा चैव समिद्भिश्च तिलैस्तथा॥ २३

यवैश्च व्रीहिभिश्चैव जुहुयाद्वै पृथक्पृथक्।
प्रत्येकं सप्तवारं तु द्रव्यालाभे घृतेन तु॥ २४

हुत्वाघोरेण देवेशं स्नात्वाघोरेण वै द्विजाः।
अष्टद्रोणघृतेनैव स्नाप्य पश्चाद्विशोध्य च॥ २५

अहोरात्रोषितः स्नातः पिबेत्कूर्चं शिवाग्रतः।
ब्राह्मं ब्रह्मजपं कुर्यादाचम्य च यथाविधि॥ २६

चाहिये। उपपातकीजनोंके लिये पापीजनोंके लिये निर्धारित जपका आधा जप करना बताया गया है तथा सामान्य पापोंसे मुक्तिहेतु उससे भी आधे जपका विधान है; इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये॥ १५-१६ १/२॥

हे द्विजो! ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णकी चोरी, गुरुपत्नीगमन आदि महापातक करनेवाले ब्राह्मणको चाहिये कि वह रुद्रगायत्री[१] मन्त्रके द्वारा कपिला (किंचित् पीतवर्ण) गायका मूत्र, '**गन्धद्वारा०**'[२] इस मन्त्रसे उसी गायका पृथ्वीके सम्पर्कसे रहित गोबर, '**तेजोऽसि शुक्रं**'[३] इस मन्त्रसे कपिला गायका घी, '**आप्यायस्व**'[४] इस मन्त्रसे दूध, '**दधिक्राव्ण**'[५] इस मन्त्रसे साक्षात् कपिला गायका ताजा दही और हे पितामह! '**देवस्य त्वा**'[६] इस मन्त्रसे कुशाका जल इकट्ठा करे। तत्पश्चात् इन सबको स्वर्ण, चाँदी या ताँबेके पात्रमें अथवा कमल या पलाशपत्रमें एकत्र करके अघोरमन्त्र[७]से अभिमन्त्रित करना चाहिये। पुनः उसमें ब्रह्मकूर्च तथा सभी रत्नोंसहित सोना डाल देना चाहिये॥ १७—२२॥

तत्पश्चात् अघोर मन्त्रका जप करके घी आदिसे हवन करना चाहिये। घी, चरु, समिध, तिल, यव, धान्यसे अलग-अलग आहुति देनी चाहिये। प्रत्येककी सात-सात बार आहुति देनेका विधान है। इन द्रव्योंके अभावमें अघोरमन्त्रसे केवल घीसे ही हवन किया जा सकता है। हे द्विजो! इसके बाद अघोर मन्त्रका जप करते हुए आठ द्रोण घीसे देवेश शिवको स्नान कराकर बादमें शुद्धोदक स्नान कराना चाहिये॥ २३—२५॥

पुनः दिन-रात उपवास करके दूसरे दिन प्रातः-काल स्नानकर ब्रह्मकूर्चविधिसे बनाये गये पंचगव्यका पान करना चाहिये। तत्पश्चात् आचमन करके शिवके

१. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥
२. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥
३. तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि॥ (शु०यजु० १।३१)
४. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे॥ (शु०यजु० १२।११२)
५. दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूꣳषि तारिषत्॥ (शु०यजु० २३।३२)
६. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
७. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

एवं कृत्वा कृतघ्नोऽपि ब्रह्महा भ्रूणहा तथा।
वीरहा गुरुघाती च मित्रविश्वासघातकः॥ २७

स्तेयी सुवर्णस्तेयी च गुरुतल्परतः सदा।
मद्यपो वृषलीसक्तः परदारविधर्षकः॥ २८

ब्रह्मस्वहा तथा गोघ्नो मातृहा पितृहा तथा।
देवप्रच्यावकश्चैव लिङ्गप्रध्वंसकस्तथा॥ २९

तथान्यानि च पापानि मानसानि द्विजो यदि।
वाचिकानि तथान्यानि कायिकानि सहस्रशः॥ ३०

कृत्वा विमुच्यते सद्यो जन्मान्तरशतैरपि।
एतद्रहस्यं कथितमघोरेशप्रसङ्गतः॥ ३१

तस्माज्जपेद् द्विजो नित्यं सर्वपापविशुद्धये॥ ३२

आगे विधिपूर्वक ब्रह्मसम्बन्धी गायत्री मन्त्रका जप करना चाहिये॥ २६॥

ऐसा करके कृतघ्न, ब्रह्महत्यारा, भ्रूणहत्या करनेवाला, वीरघाती, गुरुकी हत्या करनेवाला, मित्रके साथ विश्वासघात करनेवाला, चौर-वृत्तिवाला, स्वर्णचोर, गुरुकी पत्नीमें सदा आसक्ति रखनेवाला, मद्यपान करनेवाला, शूद्र-स्त्रीमें आसक्त, परायी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवाला, ब्राह्मणका धन हरण करनेवाला, गोहत्यारा, माता-पिताकी हत्या करनेवाला, देवताओंकी मूर्ति खण्डित करनेवाला, शिवलिङ्ग ध्वस्त करनेवाला तथा हजारों प्रकारके अन्य मानसिक-वाचिक-शारीरिक पाप करनेवाला द्विज शीघ्र ही पापमुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं, इस विधिके करनेसे सैकड़ों जन्म-जन्मान्तरके पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। मैंने अघोरेश्वर भगवान् शिवके प्रसंगसे इस रहस्यका वर्णन किया है। अतएव द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यको सभी पापोंसे मुक्तिहेतु इस अघोर मन्त्रका जप नित्य करना चाहिये॥ २७—३२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽघोरेशमाहात्म्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अघोरेशमाहात्म्य' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

विश्वरूप नामक कल्पमें शिवस्वरूप भगवान् ईशानका प्रादुर्भाव, ब्रह्माजीद्वारा ईशानकी स्तुति

सूत उवाच

अथान्यो ब्रह्मणः कल्पो वर्तते मुनिपुङ्गवाः।
विश्वरूप इति ख्यातो नामतः परमाद्भुतः॥ १

विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे।
ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः॥ २

प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती।
विश्वमाल्याम्बरधरा विश्वयज्ञोपवीतिनी॥ ३

विश्वोष्णीषा विश्वगन्धा विश्वमाता महोष्ठिका।
तथाविधं स भगवानीशानं परमेश्वरम्॥ ४

शुद्धस्फटिकसङ्काशं सर्वाभरणभूषितम्।
अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः॥ ५

सूतजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठो! असित कल्पके अनन्तर 'विश्वरूप' नामसे विख्यात ब्रह्माजीका दूसरा अत्यन्त अद्भुत कल्प आरम्भ हुआ॥ १॥

समस्त जगत्के संहारके अनन्तर चराचर संसारकी पुनः सृष्टिके निमित्त पुत्र-कामनासे ध्यानरत परमेष्ठी ब्रह्माजीके समक्ष महान् नाद करती हुई विश्वरूपा सरस्वती गौ प्रकट हुई। वह विश्वरूप माला, वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा शिरोभूषण (पगड़ी) धारण की हुई थी। उन महोष्ठिका विश्वमाताके सभी अंग विश्वगन्धसे अनुलिप्त थे॥ २-३$^{१}/_{२}$॥

तदनन्तर वे युक्तात्मा भगवान् ब्रह्मा उसी प्रकारके विश्वरूपवाले, शुद्ध स्फटिकमणिके तुल्य आभायुक्त

ववन्दे देवमीशानं सर्वेशं सर्वगं प्रभुम्।
ओमीशान नमस्तेऽस्तु महादेव नमोऽस्तु ते॥ ६

नमोऽस्तु सर्वविद्यानामीशान परमेश्वर।
नमोऽस्तु सर्वभूतानामीशान वृषवाहन॥ ७

ब्रह्मणोऽधिपते तुभ्यं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे।
नमो ब्रह्माधिपतये शिवं मेऽस्तु सदाशिव॥ ८

ओङ्कारमूर्ते देवेश सद्योजात नमो नमः।
प्रपद्ये त्वां प्रपन्नोऽस्मि सद्योजाताय वै नमः॥ ९

अभवे च भवे तुभ्यं तथा नातिभवे नमः।
भवोद्भव भवेशान मां भजस्व महाद्युते॥ १०

वामदेव नमस्तुभ्यं ज्येष्ठाय वरदाय च।
नमो रुद्राय कालाय कलनाय नमो नमः॥ ११

नमो विकरणायैव कालवर्णाय वर्णिने।
बलाय बलिनां नित्यं सदा विकरणाय ते॥ १२

बलप्रमथनायैव बलिने ब्रह्मरूपिणे।
सर्वभूतेश्वरेशाय भूतानां दमनाय च॥ १३

मनोन्मनाय देवाय नमस्तुभ्यं महाद्युते।
वामदेवाय वामाय नमस्तुभ्यं महात्मने॥ १४

ज्येष्ठाय चैव श्रेष्ठाय रुद्राय वरदाय च।
कालहन्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महात्मने॥ १५

इति स्तवेन देवेशं ननाम वृषभध्वजम्।
यः पठेत्सकृदेवेह ब्रह्मलोकं गमिष्यति॥ १६

तथा सभी आभूषणोंसे शोभायमान, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, सर्वसमर्थ परमात्मा ईशानदेवका मनसे ध्यान करके उनकी वन्दना करने लगे॥ ४-५ १/२॥

हे ओम्स्वरूप ईशान! आपको नमस्कार है। हे महादेव! आपको नमस्कार है। हे समस्त विद्याओंके ईशान (स्वामी) परमेश्वर! आपको नमस्कार है। हे सभी प्राणियोंके अधिपति वृषवाहन! आपको नमस्कार है। हे ब्रह्माधिपते! आप ब्रह्मरूप तथा साक्षात् ब्रह्मको नमस्कार है। आप ब्रह्माधिपतिको नमस्कार है। हे सदाशिव! मेरा कल्याण हो॥ ६—८॥

हे ओंकारमूर्ते! हे देवेश! हे सद्योजात! आपको बार-बार नमस्कार है। मैं कष्टसे पीड़ित होकर आपके शरणागत हूँ। सद्योजातको नमस्कार है। अजन्मा होनेपर भी आप लोकाभ्युदयार्थ ही जन्मादिको स्वीकार करनेवाले हैं, हे शिव! आपको नमस्कार है। हे विश्वोत्पादक! हे विश्वके ईशान (विश्वेश)! हे महाद्युते! मेरी रक्षा करो॥ ९-१०॥

हे वामदेव! आपको नमस्कार है। ज्येष्ठको नमस्कार है। वरदको नमस्कार है। रुद्रको, कालको तथा कलन (संख्यारूप)-को बार-बार नमस्कार है। वर्णी, कालवर्ण, विकरणको नित्य नमस्कार है। बलियोंके बली, विकरण (मनोरूप) आपको सर्वदा नमस्कार है॥ ११-१२॥

बलशाली तथा ब्रह्मरूप बलप्रमथनको नमस्कार है। सभी प्राणियोंका दमन करनेवाले सर्वभूतेश्वरेशको नमस्कार है। मनोन्मनको नमस्कार है। देवको नमस्कार है। हे महाद्युते! आपको नमस्कार है। वामदेवको नमस्कार है, वामको नमस्कार है, आप महात्माको नमस्कार है। ज्येष्ठको नमस्कार है, श्रेष्ठको नमस्कार है, रुद्रको नमस्कार है, वरदको नमस्कार है, महात्मा कालहन्ताको नमस्कार है। आपको नमस्कार है। आपको नमस्कार है॥ १३—१५॥

इस स्तवनसे ब्रह्माजीने वृषभध्वज ईशानको नमस्कार किया। जो पुरुष एक बार श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

श्रावयेद्वा द्विजान् श्राद्धे स याति परमां गतिम्।
एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमन्तं पितामहम्॥ १७

उवाच भगवानीशः प्रीतोऽहं ते किमिच्छसि।
ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्विशुद्धं महेश्वरम्॥ १८
उवाच भगवान् रुद्रं प्रीतं प्रीतेन चेतसा।
यदिदं विश्वरूपं ते विश्वगौः श्रेयसीश्वरी॥ १९
एतद्वेदितुमिच्छामि यथेयं परमेश्वर।
कैषा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी॥ २०
चतुःशृङ्गी चतुर्वक्त्रा चतुर्दंष्ट्रा चतुःस्तनी।
चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथं स्मृता॥ २१
किं नामगोत्रा कस्येयं किं वीर्या चापि कर्मतः।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो वृषध्वजः॥ २२
प्राह देववृषं ब्रह्मा ब्रह्माणं चात्मसम्भवम्।
रहस्यं सर्वमन्त्राणां पावनं पुष्टिवर्धनम्॥ २३
शृणुष्वैतत्परं गुह्यमादिसर्गे यथा तथा।
एवं यो वर्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ मतः॥ २४
ब्रह्मस्थानमिदं चापि यत्र प्राप्तं त्वया प्रभो।
त्वत्तः परतरं देव विष्णुना तत्पदं शुभम्॥ २५
वैकुण्ठेन विशुद्धेन मम वामाङ्गजेन वै।
तदा प्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम्॥ २६
शतं शतसहस्राणामतीता ये स्वयम्भुवः।
पुरस्तात्तव देवेश तच्छृणुष्व महामते॥ २७
आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दत्वे व्यवस्थितः।
माण्डव्यगोत्रस्तपसा मम पुत्रत्वमागतः॥ २८

है अथवा जो श्राद्धमें ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है॥ १६ १/२॥

इस प्रकार ध्यानमग्न होकर वन्दना करते हुए पितामह ब्रह्मासे भगवान् ईशान बोले—मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम क्या चाहते हो?॥ १७ १/२॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अत्यन्त निवेदनपूर्वक विशुद्ध वाणीवाले तथा प्रसन्नताको प्राप्त महेश्वरसे प्रसन्न मनसे कहा—हे परमेश्वर! यह आपका जो विश्वरूप है तथा परम कल्याणी यह जो विश्वरूपा गौ है—इसके विषयमें मैं जानना चाहता हूँ॥ १८-१९ १/२॥

चार पैरोंवाली, चार मुखवाली, चार सींगोंवाली, चार वक्त्रवाली, चार दाढ़ोंवाली, चार स्तनोंवाली, चार हाथों तथा चार नेत्रोंवाली ये भगवती कौन हैं तथा इन देवीको विश्वरूपा क्यों कहा गया है? इनका नाम तथा गोत्र क्या है? ये किसकी भार्या हैं तथा इनके कर्मका प्रभाव एवं सामर्थ्य क्या है?॥ २०-२१ १/२॥

उन ब्रह्माका वह वचन सुनकर ब्रह्मरूप देवदेव वृषध्वज शिवने देवताओंमें श्रेष्ठ अपने पुत्र ब्रह्मासे कहा—॥ २२ १/२॥

अब आदिसर्गमें जैसा था, वही पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, पवित्र तथा सभी मन्त्रोंका परम गुह्य रहस्य सुनो। हे प्रभो! यह जो वर्तमान कल्प है, वह विश्वरूप कल्प नामवाला कहा गया है। जिसमें आपने यह ब्रह्मपद प्राप्त किया है और मेरे वाम अंगसे उत्पन्न विष्णुके द्वारा विशुद्ध वैकुण्ठलोक प्राप्त किया गया। हे देव! विष्णुद्वारा प्राप्त वह शुभ पद तुम्हारे ब्रह्मपदसे भी श्रेष्ठ है॥ २३—२५ १/२॥

हे देवेश! हे महामते! उस समयसे अब यह तैंतीसवाँ कल्प है और इससे पूर्व लाखों कल्प बीत चुके हैं तथा आपसे पहले लाखों ब्रह्मा भी हो चुके हैं, उनके विषयमें सुनो॥ २६-२७॥

आपका माण्डव्य गोत्र है और तपस्यासे मुझे पुत्ररूपमें प्राप्त हुए हैं, अतएव आपको आनन्दरूप तत्त्वमें व्यवस्थित वह ब्रह्मरूप आनन्द जानना चाहिये॥ २८॥

त्वयि योगं च सांख्यं च तपो विद्याविधिक्रियाः।
ऋतं सत्यं दया ब्रह्म अहिंसा सन्मतिः क्षमा॥ २९

ध्यानं ध्येयं दमः शान्तिर्विद्याविद्या मतिर्धृतिः।
कान्तिर्नीतिः प्रथा मेधा लज्जा दृष्टिः सरस्वती॥ ३०

तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव प्रसादश्च प्रतिष्ठिताः।
द्वात्रिंशत्सुगुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसंज्ञया॥ ३१

प्रकृतिर्विहिता ब्रह्मंस्त्वत्प्रसूतिर्महेश्वरी।
विष्णोर्भगवतश्चापि तथान्येषामपि प्रभो॥ ३२

सैषा भगवती देवी मत्प्रसूतिः प्रतिष्ठिता।
चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रतिष्ठिता॥ ३३

गौरी माया च विद्या च कृष्णा हैमवतीति च।
प्रधानं प्रकृतिश्चैव यामाहुस्तत्त्वचिन्तकाः॥ ३४

आपमें योग, सांख्य (तत्त्वज्ञान), तप, विद्या, विधि, क्रिया, ऋत (प्रियभाषण), सत्य, दया, वेद, अहिंसा, सन्मति, क्षमा, ध्यान, ध्येय (ईश्वर-सन्निधान), इन्द्रियनिग्रह, शान्ति, ज्ञान, अविद्या (माया), बुद्धि, धृति, कान्ति, नीति, प्रथा (ख्याति), मेधा (धारणवती बुद्धि), लज्जा, दृष्टि (दिव्य ज्ञान), सरस्वती (सर्वलक्षणयुक्त वाणी), तुष्टि, पुष्टि, क्रिया (वेदविहित कर्म) तथा प्रसाद—ये बत्तीस गुण प्रतिष्ठित हैं। ककार आदि बत्तीस अक्षरस्वरूपा तथा बत्तीस गुणोंसे युक्त यह विश्वरूपा गाय तुम्हें उत्पन्न करनेवाली है; इसीलिये तुम उन बत्तीस गुणोंसे सम्पन्न हो। हे ब्रह्मन्! प्रकृतिकी रचना मैंने की है और हे प्रभो! आप, भगवान् विष्णु तथा इन्द्र आदि देवता इस महेश्वरीसे प्रसूत हैं। जगत्को उत्पन्न करनेवाली साक्षात् देवी भगवतीस्वरूपा यह चतुर्मुखी प्रकृति गौ मुझसे उत्पन्न होकर प्रतिष्ठाको प्राप्त हुई है, जिसे तत्त्वचिन्तक गौरी, माया, विद्या, कृष्णा, हैमवती, प्रधान तथा प्रकृति—ऐसा कहते हैं॥ २९—३४॥

अजामेकां लोहितां शुक्लकृष्णां
विश्वप्रजां सृजमानां सरूपाम्।
अजोऽहं मां विद्धि तां विश्वरूपं
गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्ध्या॥ ३५

विश्वकी प्रजाओंकी सृष्टि करनेवाली, रक्त-श्वेत-कृष्ण-वर्णवाली, रूपसम्पन्न, अजन्मा तथा अद्वितीय इस विश्वरूपा गायको अपने बुद्धि-विचारसे साक्षात् गायत्री जानो और मैं भी अजन्मा हूँ, मुझे भी विश्वरूप जानो॥ ३५॥

एवमुक्त्वा महादेवः ससर्ज परमेश्वरः।
ततश्च पार्श्वगा देव्याः सर्वरूपकुमारकाः॥ ३६

जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्धमुण्डश्च जज्ञिरे।
ततस्तेन यथोक्तेन योगेन सुमहौजसः॥ ३७

दिव्यवर्षसहस्रान्ते उपासित्वा महेश्वरम्।
धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा योगमयं दृढम्॥ ३८

शिष्टाश्च नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम्॥ ३९

तदनन्तर ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर परमेश्वर महादेवने कई कुमार सृजित किये और इस प्रकार देवीके समीपसे अनेक रूपोंवाले कुमार प्रकट हुए, जिनमें कोई जटाधारी था, कोई मुण्डितसिर था, कोई सिरपर शिखा धारण किये था तथा कोई अर्धमुण्डित सिरवाला था। तदनन्तर सदाचारी, नियत आत्मावाले तथा महान् ओजसे सम्पन्न वे कुमार यथोक्त योगाभ्यास करते हुए देवताओंके एक हजार वर्षतक महेश्वरकी आराधना करके दृढ़ योगयुक्त सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश अपने शिष्यों-प्रशिष्योंको देकर अन्तमें परमेश्वर रुद्रमें प्रवेश कर गये॥ ३६—३९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ईशानमाहात्म्यकथनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ईशानमाहात्म्यकथन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा तथा विष्णुके समक्ष ज्योतिर्मय महालिङ्गका प्राकट्य, ब्रह्मा और विष्णुद्वारा हंस एवं वाराहरूप धारणकर लिङ्गके मूलस्थानका अन्वेषण, लिङ्गमध्यसे शब्दमय उमा-महेश्वरका प्रादुर्भाव और ईशानादि पाँच शिवरूपोंकी उत्पत्ति

सूत उवाच

एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तः सद्यादीनां समुद्भवः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्॥ १

स याति ब्रह्मसायुज्यं प्रसादात्परमेष्ठिनः।

सूतजी बोले—हे मुनियो! इस प्रकार मैंने शिवजीके सद्योजात आदि अवतारोंका वर्णन संक्षेपमें कर दिया। जो इसे पढ़ता है, सुनता है अथवा श्रेष्ठ द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)-को सुनाता है, वह शिवजीके अनुग्रहसे ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होता है॥ १ १/२॥

ऋषय ऊचुः

कथं लिङ्गमभूल्लिङ्गे समभ्यर्च्यः स शङ्करः॥ २

किं लिङ्गं कस्तथा लिङ्गी सूत वक्तुमिहार्हसि।

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! लिङ्गकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा उस लिङ्गमें शंकरजीकी उपासना कैसे की जानी चाहिये? लिङ्ग क्या है तथा लिङ्गी कौन है? यह आप हमें बताइये॥ २ १/२॥

रोमहर्षण उवाच

एवं देवाश्च ऋषयः प्रणिपत्य पितामहम्॥ ३

अपृच्छन् भगवँल्लिङ्गं कथमासीदिति स्वयम्।
लिङ्गे महेश्वरो रुद्रः समभ्यर्च्यः कथं त्विति॥ ४

किं लिङ्गं कस्तथा लिङ्गी सोऽप्याह च पितामहः।

रोमहर्षण [सूतजी] बोले—हे ऋषियो! इसी प्रकार अत्यन्त निवेदनपूर्वक देवताओंने भी पितामह ब्रह्मासे पूछा था कि हे भगवन्! यह लिङ्ग कैसे उत्पन्न हुआ तथा लिङ्गमें महेश्वर रुद्रका किस प्रकार पूजन होना चाहिये? लिङ्ग क्या है तथा लिङ्गी कौन है? इसपर वे ब्रह्मा बोले॥ ३-४ १/२॥

पितामह उवाच

प्रधानं लिङ्गमाख्यातं लिङ्गी च परमेश्वरः॥ ५

रक्षार्थमम्बुधौ मह्यं विष्णोस्त्वासीत्सुरोत्तमाः।
वैमानिके गते सर्गे जनलोकं सहर्षिभिः॥ ६

स्थितिकाले तदा पूर्णे ततः प्रत्याहृते तथा।
चतुर्युगसहस्रान्ते सत्यलोकं गते सुराः॥ ७

विनाधिपत्यं समतां गतेऽन्ते ब्रह्मणो मम।
शुष्के च स्थावरे सर्वे त्वनावृष्ट्या च सर्वशः॥ ८

पशवो मानुषा वृक्षाः पिशाचाः पिशिताशनाः।
गन्धर्वाद्याः क्रमेणैव निर्दग्धा भानुभानुभिः॥ ९

एकार्णवे महाघोरे तमोभूते समन्ततः।
सुष्वापाम्भसि योगात्मा निर्मलो निरुपप्लवः॥ १०

पितामह [ब्रह्माजी]-ने कहा—प्रधानको लिङ्ग तथा परमेश्वरको लिङ्गी कहा गया है। हे उत्तम देवताओ! यह मेरी तथा विष्णुकी रक्षाके लिये समुद्रमें प्रकट हुआ था॥ ५ १/२॥

जब देवताओंकी सृष्टि समाप्त हो गयी, तब वे देवता ऋषियोंके साथ जनलोक चले गये और पुनः स्थिति-कालके पूर्ण होनेपर और इसके बाद हजार चतुर्युगीके अन्तमें पुनः प्रलयके उपस्थित होनेपर वे सत्यलोक चले गये॥ ६-७॥

उस समय मैं ब्रह्मा बिना किसी आधिपत्यके साम्य-अवस्थाको प्राप्त था। इस प्रकार अन्तमें अनावृष्टिके कारण सभी स्थावर पदार्थोंके सूख जानेपर सभी ओर समस्त पशु, मनुष्य, वृक्ष, पिशाच, राक्षस, गन्धर्व आदि क्रमसे सूर्यकी किरणोंसे दग्ध हो गये॥ ८-९॥

तत्पश्चात् चारों ओर समुद्र-ही-समुद्रके व्याप्त हो

सहस्रशीर्षा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सहस्रबाहुः सर्वज्ञः सर्वदेवभवोद्भवः॥ ११

हिरण्यगर्भो रजसा तमसा शङ्करः स्वयम्।
सत्त्वेन सर्वगो विष्णुः सर्वात्मत्वे महेश्वरः॥ १२

कालात्मा कालनाभस्तु शुक्लः कृष्णस्तु निर्गुणः।
नारायणो महाबाहुः सर्वात्मा सदसन्मयः॥ १३

तथाभूतमहं दृष्ट्वा शयानं पङ्कजेक्षणम्।
मायया मोहितस्तस्य तमवोचममर्षितः॥ १४

कस्त्वं वदेति हस्तेन समुत्थाप्य सनातनम्।
तदा हस्तप्रहारेण तीव्रेण स दृढेन तु॥ १५

प्रबुद्धोऽहीयशयनात्समासीनः क्षणं वशी।
ददर्श निद्राविक्लिन्ननीरजामललोचनः॥ १६

मामग्रे संस्थितं भासाध्यासितो भगवान् हरिः।
आह चोत्थाय भगवान् हसन्मां मधुरं सकृत्॥ १७

स्वागतं स्वागतं वत्स पितामह महाद्युते।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्मितपूर्वं सुरर्षभाः॥ १८

रजसा बद्धवैरश्च तमवोचं जनार्दनम्।
भाषसे वत्स वत्सेति सर्गसंहारकारणम्॥ १९

मामिहान्तः स्मितं कृत्वा गुरुः शिष्यमिवानघ।
कर्तारं जगतां साक्षात्प्रकृतेश्च प्रवर्तकम्॥ २०

सनातनमजं विष्णुं विरिञ्चिं विश्वसम्भवम्।
विश्वात्मानं विधातारं धातारं पङ्कजेक्षणम्॥ २१

किमर्थं भाषसे मोहाद्वक्तुमर्हसि सत्वरम्।
सोऽपि मामाह जगतां कर्ताहमिति लोकय॥ २२

जाने तथा घोर अन्धकार छा जानेपर योगात्मा, निर्मल, उपद्रवरहित, हजार सिरोंवाले, हजार नेत्रोंवाले, हजार पैरोंवाले, हजार भुजाओंवाले, विश्वात्मा, सब कुछ जाननेवाले, सभी देवताओं तथा संसारकी उत्पत्ति करनेवाले, रजोगुणसे युक्त होनेके कारण ब्रह्मा, तमोगुणसे युक्त होनेके कारण स्वयं शंकर, सत्त्वगुणसे युक्त होनेके कारण सर्वव्यापी विष्णु, सबकी आत्मा होनेके कारण महेश्वर, कालात्मा, कालरूप नाभिवाले, शुक्ल, कृष्ण, गुणोंसे रहित, नारायण, महान् बाहुवाले तथा सत्-असत्से युक्त सर्वात्मा जलके मध्यमें शयन करने लगे॥ १०—१३॥

उन्हें इस प्रकार जल-स्थित कमलपर सोते हुए देखकर मैं उस क्षण उनकी मायासे मोहित हो गया और उन सनातनको हाथसे पकड़कर उठाते हुए क्रोधपूर्वक मैंने उनसे कहा—तुम कौन हो, यह मुझे बताओ?॥ १४½॥

तत्पश्चात् मेरे तेज तथा दृढ़ हस्त-प्रहारसे शेषनाग-रूपी शय्यासे उठकर इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले वे प्रभु उस क्षण बैठ गये॥ १५½॥

इसके बाद निद्रासे विक्लिन्न स्वच्छ कमलसदृश नेत्रोंवाले प्रभायुक्त भगवान् हरिने अपने सम्मुख विराजमान मुझ ब्रह्माको देखा और उन भगवान्ने शय्यासे उठकर थोड़ा हँसते हुए मुझसे मधुर-मधुर वाणीमें कहा—हे महाद्युते! हे वत्स! हे पितामह! तुम्हारा स्वागत है, स्वागत है॥ १६-१७½॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! उनका वह वचन सुनकर रजोगुणसे युक्त होनेके कारण शत्रुतापूर्ण भावसे मैंने मुसकराकर उन जनार्दनसे कहा—॥ १८½॥

हे अनघ! सृजन तथा संहार करनेवाले मुझ ब्रह्माको तुम 'वत्स! वत्स!' इस प्रकार सम्बोधित करते हुए जैसे गुरु शिष्यसे कहता है, उस प्रकारसे मुसकराकर क्यों बोल रहे हो?॥ १९½॥

जगत्के साक्षात् रचयिता, प्रकृतिके प्रवर्तक, सनातन, अजन्मा, पालनकर्ता,विश्वके उत्पत्तिकारक ब्रह्मा, विश्वात्मा, विधाता तथा धारणकर्ता मुझ कमलनयन पितामहसे मोहयुक्त होकर इस प्रकार क्यों बोल रहे हो? इसका

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

भर्ता हर्ता भवानङ्गादवतीर्णो ममाव्ययात्।
विस्मृतोऽसि जगन्नाथं नारायणमनामयम्॥ २३

पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
विष्णुमच्युतमीशानं विश्वस्य प्रभवोद्भवम्॥ २४

तवापराधो नास्त्यत्र मम मायाकृतं त्विदम्।
शृणु सत्यं चतुर्वक्त्र सर्वदेवेश्वरो ह्यहम्॥ २५

कर्ता नेता च हर्ता च न मयास्ति समो विभुः।
अहमेव परं ब्रह्म परं तत्त्वं पितामह॥ २६

अहमेव परं ज्योतिः परमात्मा त्वहं विभुः।
यद्यदृष्टं श्रुतं सर्वं जगत्यस्मिंश्चराचरम्॥ २७

तत्तद्विद्धि चतुर्वक्त्र सर्वं मन्मयमित्यथ।
मया सृष्टं पुरा व्यक्तं चतुर्विंशतिकं स्वयम्॥ २८

नित्यान्ता ह्यणवो बद्धाः सृष्टाः क्रोधोद्भवादयः।
प्रसादाद्धि भवानण्डान्यनेकानीह लीलया॥ २९

सृष्टा बुद्धिर्मया तस्यामहङ्कारस्त्रिधा ततः।
तन्मात्रापञ्चकं तस्मान्मनः षष्ठेन्द्रियाणि च॥ ३०

आकाशादीनि भूतानि भौतिकानि च लीलया।
इत्युक्तवति तस्मिंश्च मयि चापि वचस्तथा॥ ३१

आवयोश्चाभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्।
प्रलयार्णवमध्ये तु रजसा बद्धवैरयोः॥ ३२

एतस्मिन्नन्तरे लिङ्गमभवच्चावयोः पुरः।
विवादशमनार्थं हि प्रबोधार्थं च भास्वरम्॥ ३३

कारण शीघ्र बताओ॥ २०-२१½॥

इसपर उन्होंने भी मुझसे कहा—सम्पूर्ण जगत्का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता मैं (विष्णु) ही हूँ, ऐसा जानो और तुमने भी मुझ शाश्वत परमेश्वरके अंगसे ही अवतार ग्रहण किया है। फिर भी तुम मुझ जगत्पति, नारायण, रोग-विकाररहित, परम पुरुष, परमात्मा, सभीसे आवाहित होनेवाले, पुरुष्टुत, अच्युत, ऐश्वर्यसम्पन्न तथा विश्वकी उत्पत्तिके कारणस्वरूप मुझ विष्णुको भूल गये हो, किंतु इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। यह सब तो मेरी मायाद्वारा रचा गया है॥ २२—२४½॥

हे चार मुखवाले ब्रह्मन्! तुम यह सत्य जानो कि सृष्टिका कर्ता, पालक, संहारक तथा सभी देवताओंका स्वामी मैं ही हूँ। मेरे सदृश ऐश्वर्यवाला और कोई नहीं है॥ २५½॥

हे पितामह! मैं ही परम ब्रह्म हूँ, मैं ही परम तत्त्व हूँ, मैं ही परम ज्योति हूँ तथा मैं ही परम समर्थ परमात्मा हूँ॥ २६½॥

हे चतुर्मुख! इस जगत्में जो भी समस्त स्थावर-जंगम वस्तुएँ दिखायी पड़ रही हैं अथवा जिनके बारेमें सुना जाता है; उन सबको मुझसे व्याप्त किया हुआ जानो॥ २७½॥

प्राचीन कालमें मैंने ही स्वयं चौबीस तत्त्वमय व्यक्त सृष्टि रची है। नित्य अन्तको प्राप्त होनेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म बद्धजीव, क्रोधसे उत्पन्न अन्यान्य तामसी सृष्टि तथा आप (ब्रह्मा)-सहित अनेक ब्रह्माण्ड मेरी मायाके प्रभावसे ही विरचित हैं॥ २८-२९॥

मैंने बुद्धिकी रचना की है तथा उसमें तीन प्रकारके अहंकारों (सात्त्विक, राजस, तामस)-का निर्माण किया है। इसी प्रकार अपनी मायासे पाँच तन्मात्राएँ एवं मन, इन्द्रियाँ, आकाश आदि पाँच महाभूतोंकी सृष्टि मैंने ही की है॥ ३०½॥

यह वचन कहनेके अनन्तर रजोगुणकी वृद्धिसे परस्पर शत्रुता-भावको प्राप्त हम दोनोंमें उस प्रलय-सागरके मध्य भीषण रोमांचकारी संग्राम होने लगा॥ ३१-३२॥

इसी बीच हम दोनोंके कलहको दूर करने तथा

ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम्।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ३४

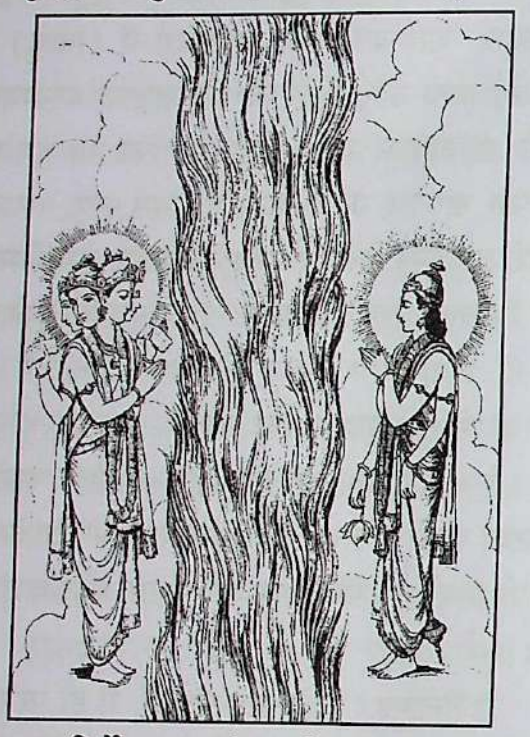

अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं विश्वसम्भवम्।
तस्य ज्वालासहस्रेण मोहितो भगवान् हरिः ॥ ३५
मोहितं प्राह मामत्र परीक्षावोऽग्निसम्भवम्।
अधोगमिष्याम्यनलस्तम्भस्यानुपमस्य च ॥ ३६
भवानूर्ध्वं प्रयत्नेन गन्तुमर्हसि सत्वरम्।
एवं व्याहृत्य विश्वात्मा स्वरूपमकरोत्तदा ॥ ३७
वाराहमहमप्याशु हंसत्वं प्राप्तवान् सुराः।
तदा प्रभृति मामाहुर्हंसं हंसो विराडिति ॥ ३८
हंस हंसेति यो ब्रूयान्मां हंसः स भविष्यति।
सुश्वेतो ह्यनलाक्षश्च विश्वतः पक्षसंयुतः ॥ ३९
मनोऽनिलजवो भूत्वा गतोऽहं चोर्ध्वतः सुराः।
नारायणोऽपि विश्वात्मा नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ४०
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्।
मेरुपर्वतवर्ष्माणं गौरतीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम् ॥ ४१
कालादित्यसमाभासं दीर्घघोणं महास्वनम्।
ह्रस्वपादं विचित्राङ्गं जैत्रं दृढमनौपमम् ॥ ४२
वाराहमसितं रूपमास्थाय गतवानधः।
एवं वर्षसहस्रं तु त्वरन् विष्णुरधोगतः ॥ ४३
नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिङ्गस्य सूकरः।
तावत्कालं गतो ह्यूर्ध्वमहमप्यरिसूदनः ॥ ४४
सत्वरं सर्वयत्नेन तस्यान्तं ज्ञातुमिच्छया।
श्रान्तो ह्यदृष्ट्वा तस्यान्तमहङ्कारादधोगतः ॥ ४५

ज्ञान प्रदान करनेके निमित्त एक दीप्तिमान् लिङ्ग हमलोगोंके समक्ष प्रकट हुआ। वह लिङ्ग हजारों अग्नि-ज्वालाओंसे व्याप्त, सैकड़ों कालाग्निके सदृश, क्षय तथा वृद्धिसे रहित, आदि-मध्य-अन्तसे हीन, अतुलनीय, अवर्णनीय, अव्यक्त तथा विश्वका उत्पत्तिकर्तारूप था॥ ३३-३४$^{१}/_{२}$॥

उस लिङ्गकी हजारों ज्वालाओंसे भगवान् विष्णु तथा मैं—दोनों लोग मोहित हो गये। फिर विष्णुने मुझसे कहा कि हमें अग्नि-उद्भूत इस लिङ्गका पता लगाना चाहिये। एतदर्थ मैं इस अनुपम अग्नि-स्तम्भके नीचे जाता हूँ और आप प्रयत्नपूर्वक शीघ्र इसके ऊपर जाइये॥ ३५-३६$^{१}/_{२}$॥

हे देवताओ! ऐसा कहकर विश्वात्मा भगवान् विष्णुने वाराहका रूप धारण कर लिया और मैं भी शीघ्र हंसके रूपको प्राप्त हो गया। उसी समयसे मुझ ब्रह्माको विराट् रूपवाले भगवान् विष्णु 'हंस' कहने लगे। जो प्राणी 'हंस-हंस' नामसे मेरा कीर्तन करता है, वह हंसत्वको प्राप्त हो जाता है॥ ३७-३८$^{१}/_{२}$॥

हे देवताओ! उस समय मैं अत्यन्त श्वेत वर्णका था, मेरे नेत्र अग्निके समान थे और मैं सभी ओरसे पंखोंसे युक्त था—इस प्रकार हंसरूपमें मैं मनरूपी वायुके वेगसे उड़कर ऊपरकी ओर गया॥ ३९$^{१}/_{२}$॥

उधर विश्वात्मा नारायण विष्णु भी दस योजन चौड़े तथा शत योजन लम्बे और नीले अंजनके समूहसदृश, मेरुपर्वत-तुल्य शरीरवाले, श्वेत तथा तीक्ष्ण दंष्ट्रांकुर एवं विशाल थूथनवाले, छोटे-छोटे पैरोंवाले, विचित्र अंगोंवाले, प्रलयकालीन सूर्यके समान प्रकाशमान, दृढ़, अनुपमेय, भीषण शब्दवाले तथा सर्वथा अपराजेय कृष्णवाराहका रूप धारण करके उस अग्नि-स्तम्भ (लिङ्ग)-के नीचेकी ओर गये॥ ४०—४२$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार विष्णुभगवान् एक हजार वर्षतक वेगपूर्वक नीचेकी ओर जाते रहे, किंतु वाराहरूप विष्णु इस लिङ्गके मूलका अल्पांश भी नहीं देख सके॥ ४३$^{१}/_{२}$॥

शत्रुओंका दमन करनेवाला मैं ब्रह्मा भी उस लिङ्गका अन्त जाननेकी इच्छासे पूरे प्रयासके साथ शीघ्रतापूर्वक ऊपरकी ओर जाता रहा॥ ४४$^{१}/_{२}$॥

तथैव भगवान् विष्णुः श्रान्तः सन्त्रस्तलोचनः।
सर्वदेवभवस्तूर्णमुत्थितः स महावपुः॥ ४६

समागतो मया सार्धं प्रणिपत्य महामनाः।
मायया मोहितः शम्भोस्तस्थौ संविग्नमानसः॥ ४७

पृष्ठतः पार्श्वतश्चैव चाग्रतः परमेश्वरम्।
प्रणिपत्य मया सार्धं सस्मार किमिदं त्विति॥ ४८

तदा समभवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः।
ओमोमिति सुरश्रेष्ठाः सुव्यक्तः प्लुतलक्षणः॥ ४९

किमिदं त्विति सञ्चिन्त्य मया तिष्ठन् महास्वनम्।
लिङ्गस्य दक्षिणे भागे तदापश्यत्सनातनम्॥ ५०

आद्यवर्णमकारं तु उकारं चोत्तरे ततः।
मकारं मध्यतश्चैव नादान्तं तस्य चोमिति॥ ५१

सूर्यमण्डलवद् दृष्ट्वा वर्णमाद्यं तु दक्षिणे।
उत्तरे पावकप्रख्यमुकारं पुरुषर्षभः॥ ५२

शीतांशुमण्डलप्रख्यं मकारं मध्यमं तथा।
तस्योपरि तदापश्यच्छुद्धस्फटिकवत्प्रभुम्॥ ५३

तुरीयातीतममृतं निष्कलं निरुपप्लवम्।
निर्द्वन्द्वं केवलं शून्यं बाह्याभ्यन्तरवर्जितम्॥ ५४

सबाह्याभ्यन्तरं चैव सबाह्याभ्यन्तरस्थितम्।
आदिमध्यान्तरहितमानन्दस्यापि कारणम्॥ ५५

मात्रास्तिस्त्रस्त्वर्धमात्रं नादाख्यं ब्रह्मसंज्ञितम्।
ऋग्यजुःसामवेदा वै मात्रारूपेण माधवः॥ ५६

वेदशब्देभ्य एवेशं विश्वात्मानमचिन्तयत्।
तदाभवदृषिर्वेद ऋषेः सारतमं शुभम्॥ ५७

तत्पश्चात् अहंकारपूर्वक ऊपर गया हुआ मैं उस लिङ्गका अन्त न देखकर अत्यन्त थका हुआ नीचे लौट आया और उसी प्रकार सभी देवताओंके उद्भवकर्ता तथा महान् शरीरवाले वे भगवान् विष्णु भी थकान एवं सन्त्रासभरे नेत्रोंके साथ लिङ्गका मूल न पाकर नीचेसे ऊपर आ गये॥ ४५-४६॥

शंकरकी मायासे मोहको प्राप्त वे महामना विष्णु मेरे साथ आकर परमेश्वरको प्रणाम करके व्याकुल मनसे खड़े हो गये। इसके बाद मेरे साथ पुनः परमेश्वरको पीछेसे, बगलसे तथा आगेसे प्रणाम करके वे विचार करने लगे कि [आदि-अन्तहीन] यह क्या है?॥ ४७-४८॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! उसी समय वहाँ प्लुत स्वरसे युक्त 'ओम्-ओम्' ऐसा अत्यन्त स्पष्ट शब्दरूप नाद सुनायी पड़ा॥ ४९॥

यह तीव्र शब्द क्या है— ऐसा मेरे साथ विचार करते हुए वे विष्णु खड़े रहे। तभी उन्होंने उस 'ओम्' नादके अन्तमें लिङ्गके दक्षिण भागमें सनातन आदि वर्ण अकार, उसके उत्तर भागमें उकार तथा उसके मध्यमें मकार देखा॥ ५०-५१॥

इस प्रकार सूर्यमण्डलके समान आदि वर्ण अकारको लिङ्गके दक्षिणमें, अग्निके सदृश प्रतीत होनेवाले उकारको उत्तरमें तथा चन्द्रमण्डलके तुल्य मकारको मध्यमें देखनेके बाद उन पुरुषश्रेष्ठ विष्णुने उसके ऊपर तुरीयातीत, अमृतरूप, कलारहित, विकारशून्य, निर्द्वन्द्व, अद्वितीय, शून्यस्वरूप, बाह्य तथा आभ्यन्तरसे रहित, बाह्य तथा आभ्यन्तरसे युक्त, बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों रूपोंमें स्थित, आदि-मध्य-अन्तसे रहित तथा आनन्दके भी कारणस्वरूप शुद्ध स्फटिकके सदृश प्रकाशमान प्रभुको देखा॥ ५२—५५॥

अकार, उकार और मकाररूप तीन मात्राएँ तथा बिन्दुरूप अर्धमात्रास्वरूपवाला प्रणव ही नाद कहलाता है और वही ब्रह्मसंज्ञावाला है। ऋक्-यजुः तथा सामवेद उन तीनों मात्राओंके रूपमें विष्णु ही हैं॥ ५६॥

उसी वेदरूप शब्दके द्वारा विष्णुने विश्वात्मा

तेनैव ऋषिणा विष्णुर्ज्ञातवान् परमेश्वरम्।

देव उवाच

चिन्तया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह॥ ५८

अप्राप्य तं निवर्तन्ते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः।
एकाक्षरेण तद्वाच्यमृतं परमकारणम्॥ ५९

सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्म परात्परम्।
एकाक्षरादकाराख्यो भगवान् कनकाण्डजः॥ ६०

एकाक्षरादुकाराख्यो हरिः परमकारणम्।
एकाक्षरान्मकाराख्यो भगवान्नीललोहितः॥ ६१

सर्गकर्ता त्वकाराख्यो ह्युकाराख्यस्तु मोहकः।
मकाराख्यस्तयोर्नित्यमनुग्रहकरोऽभवत् ॥ ६२

मकाराख्यो विभुर्बीजी ह्यकारो बीजमुच्यते।
उकाराख्यो हरिर्योनिः प्रधानपुरुषेश्वरः॥ ६३

बीजी च बीजं तद्योनिर्नादाख्यश्च महेश्वरः।
बीजी विभज्य चात्मानं स्वेच्छया तु व्यवस्थितः॥ ६४

अस्य लिङ्गादभूद्बीजमकारो बीजिनः प्रभोः।
उकारयोनौ निक्षिप्तमवर्धत समन्ततः॥ ६५

सौवर्णमभवच्चाण्डमावेष्ट्याद्यं तदक्षरम्।
अनेकाब्दं तथा चाप्सु दिव्यमण्डं व्यवस्थितम्॥ ६६

ततो वर्षसहस्रान्ते द्विधा कृतमजोद्भवम्।
अण्डमप्सु स्थितं साक्षादाद्याख्येनेश्वरेण तु॥ ६७

तस्याण्डस्य शुभं हैमं कपालं चोर्ध्वसंस्थितम्।
जज्ञे यद् द्यौस्तदपरं पृथिवी पञ्चलक्षणा॥ ६८

ईश्वर शिवका चिन्तन किया। उसी समयसे अतीन्द्रिय-दर्शक, परम-तत्त्वरूप कल्याणकारी वेद हुआ और उसी ऋषि (वेद)-से विष्णुने परमेश्वर शिवको जाना॥ ५७½॥

देव (ब्रह्मा) बोले—वाणी भी मनके साथ जिन्हें प्राप्त न करके लौट आती है, उन चिन्तारहित भगवान् रुद्रका वाचक एकाक्षर प्रणव ही है और यही एकाक्षर प्रणव उस सृष्टिके परम कारणरूप, सत्य-आनन्द तथा अमृतरूप परात्पर परम ब्रह्मका भी वाचक है*॥ ५८-५९½॥

उसी एकाक्षर प्रणवसे अकारसंज्ञक भगवान् ब्रह्मा, उकारसंज्ञक परमकारणस्वरूप विष्णु तथा मकारसंज्ञक परमेश्वर नीललोहितका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ६०-६१॥

अकारसंज्ञक ब्रह्मा सृष्टिके निर्माता, उकारसंज्ञक विष्णु मोह करनेवाले तथा मकारसंज्ञक शिव उन दोनों ब्रह्मा तथा विष्णुपर सदा अनुग्रह करनेवाले हैं॥ ६२॥

मकाररूप भगवान् शिव बीजवान्, अकाररूप ब्रह्मा बीज तथा उकाररूप प्रधानपुरुषेश्वर विष्णु योनि कहे जाते हैं॥ ६३॥

नादरूप महेश्वर शिव ही स्वयं बीजी, बीज तथा योनि—तीनों हैं। वे बीजीरूप महेश्वर स्वेच्छासे अपनेको विभाजित करके प्रतिष्ठित हैं॥ ६४॥

इन बीजीरूप परमेश्वर शिवके लिङ्गसे अकाररूप बीज (ब्रह्मा), उकाररूप योनि (विष्णु)-में गिरकर चारों ओर वृद्धिको प्राप्त होने लगा और वह फिर स्वर्णका अण्ड हो गया। इसके बाद एकाक्षर प्रणवको आदि-अन्तसे आवेष्टित करके वह दिव्य अण्ड बहुत वर्षोंतक जलमें स्थित रहा॥ ६५-६६॥

तदनन्तर हजार वर्षोंके बाद साक्षात् आदिरूप परमेश्वरने जलमें स्थित उस अजोद्भूत अण्डको दो भागोंमें कर दिया॥ ६७॥

उस अण्डके ऊर्ध्वस्थित हेममय पवित्र कपालसे आकाश तथा नीचेके भागसे पाँच लक्षणोंसे सम्पन्न पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई॥ ६८॥

* यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। (तैत्ति० २।४।१)

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

तस्मादण्डोद्भवो जज्ञे त्वकाराख्यश्चतुर्मुखः।
स स्रष्टा सर्वलोकानां स एव त्रिविधः प्रभुः॥ ६९

उसी अण्डसे अकारसंज्ञक चतुर्मुख ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। अतएव वही लिङ्गरूप प्रणव सभी लोकोंकी सृष्टि करनेवाला है तथा वही प्रणव अकार-उकार-मकाररूप तीन प्रकारका ईश्वर है॥ ६९॥

एवमोमोमिति प्रोक्तमित्याहुर्यजुषां वराः।
यजुषां वचनं श्रुत्वा ऋचः सामानि सादरम्॥ ७०

इस प्रकार वह प्रणव ओम्-ओम्रूप ब्रह्म कहा गया है—ऐसा यजुर्वेदके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ मनीषियोंने कहा है और उन यजुर्वेद-ज्ञाताओंके वचन सुनकर उसे ऋग्वेदकी ऋचाओं तथा साममन्त्रोंने भी आदरपूर्वक स्वीकार किया है और इसी तरह सभी श्रुतियोंने उसी 'ओम्' को सदा हे हरे! हे ब्रह्मन्! के रूपमें सम्बोधित किया है॥ ७०$^{१}/_{२}$॥

एवमेव हरे ब्रह्मन्नित्याहुः श्रुतयस्तदा।
ततो विज्ञाय देवेशं यथावच्छ्रुतिसम्भवैः॥ ७१

मन्त्रैर्महेश्वरं देवं तुष्टाव सुमहोदयम्।
आवयोः स्तुतिसन्तुष्टो लिङ्गे तस्मिन्निरञ्जनः॥ ७२

इस वेद-वाक्य आदिसे शिवको यथावत् जानकर हम दोनों वैदिक मन्त्रोंसे महोदय देवेश्वर महादेवकी स्तुति करने लगे॥ ७१$^{१}/_{२}$॥

दिव्यं शब्दमयं रूपमास्थाय प्रहसन् स्थितः।
अकारस्तस्य मूर्द्धा तु ललाटं दीर्घमुच्यते॥ ७३

इकारो दक्षिणं नेत्रमीकारो वामलोचनम्।
उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारो वाममुच्यते॥ ७४

ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं परमेष्ठिनः।
वामं कपोलमॄकारो लृलॄ नासापुटे उभे॥ ७५

एकारमोष्ठमूर्ध्वश्च ऐकारस्त्वधरो विभोः।
ओकारश्च तथौकारो दन्तपङ्क्तिद्वयं क्रमात्॥ ७६

अमस्तु तालुनी तस्य देवदेवस्य धीमतः।
कादिपञ्चाक्षराण्यस्य पञ्च हस्तानि दक्षिणे॥ ७७

चादिपञ्चाक्षराण्येवं पञ्च हस्तानि वामतः।
टादिपञ्चाक्षरं पादस्तादिपञ्चाक्षरं तथा॥ ७८

पकारमुदरं तस्य फकारः पार्श्वमुच्यते।
बकारो वामपार्श्वं वै भकारं स्कन्धमस्य तत्॥ ७९

मकारं हृदयं शम्भोर्महादेवस्य योगिनः।
यकारादिसकारान्ता विभोर्वै सप्तधातवः॥ ८०

हकार आत्मरूपं वै क्षकारः क्रोध उच्यते।
तं दृष्ट्वा उमया सार्द्धं भगवन्तं महेश्वरम्॥ ८१

इस प्रकार वह प्रणव ओम्-ओम्रूप ब्रह्म कहा गया है—ऐसा यजुर्वेदके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ मनीषियोंने कहा है और उन यजुर्वेद-ज्ञाताओंके वचन सुनकर उसे ऋग्वेदकी ऋचाओं तथा साममन्त्रोंने भी आदरपूर्वक स्वीकार किया है और इसी तरह सभी श्रुतियोंने उसी 'ओम्' को सदा हे हरे! हे ब्रह्मन्! के रूपमें सम्बोधित किया है॥ ७०$^{१}/_{२}$॥

इस वेद-वाक्य आदिसे शिवको यथावत् जानकर हम दोनों वैदिक मन्त्रोंसे महोदय देवेश्वर महादेवकी स्तुति करने लगे॥ ७१$^{१}/_{२}$॥

हम दोनोंके स्तवनसे प्रसन्न होकर मायाके आवरणसे रहित महेश्वर दिव्य शब्दमय रूप धारणकर हँसते हुए उस लिङ्गमें प्रकट हुए॥ ७२$^{१}/_{२}$॥

अकार उनका मस्तक तथा दीर्घ (आकार) उनका ललाट कहा जाता है। इकार दाहिना नेत्र, ईकार बायाँ नेत्र, उकार दाहिना कान, ऊकार बायाँ कान, ऋकार उन परमेष्ठी महेश्वरका दायाँ कपोल, ॠकार उनका बायाँ कपोल, लृ तथा लॄ क्रमशः उनके दाहिने तथा बायें—दोनों नासापुट, एकार ऊपरी ओष्ठ, ऐकार उन प्रभुका नीचेका ओष्ठ, ओकार तथा औकार क्रमशः ऊपर तथा नीचेकी दन्त-पंक्तियाँ, अं तथा अः उन धीमान् देवदेवके क्रमशः ऊपर तथा नीचेके तालु, ककार आदि पाँच अक्षर (क, ख, ग, घ, ङ) उनके दाहिनी ओरके पाँच हाथ, इसी प्रकार चकार आदि पाँच अक्षर बायीं ओरके पाँच हाथ, टकार आदि पाँच अक्षर दायाँ पैर, तकार आदि पाँच अक्षर बायाँ पैर, पकार उन परमेश्वरका उदर, फकार दाहिना पार्श्व, बकार बायाँ पार्श्व, भकार उनका स्कन्ध, मकार परम योगी महादेव शंकरका हृदय, यकारसे लेकर सकारपर्यन्त सात वर्ण (य, र, ल, व, श, ष, स) उन प्रभुके सातों धातु*, हकार उनकी आत्मा तथा क्षकार उनका क्रोध कहा गया है॥ ७३—८०$^{१}/_{२}$॥

* रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात शरीरस्थ धातुएँ हैं।

प्रणम्य भगवान् विष्णुः पुनश्चापश्यदूर्ध्वतः।
ॐकारप्रभवं मन्त्रं कलापञ्चकसंयुतम्॥ ८२

शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम्।
मेधाकरमभूद्भूयः सर्वधर्मार्थसाधकम्॥ ८३

गायत्रीप्रभवं मन्त्रं हरितं वश्यकारकम्।
चतुर्विंशति वर्णाढ्यं चतुष्कलमनुत्तमम्॥ ८४

अथर्वमसितं मन्त्रं कलाष्टकसमायुतम्।
अभिचारिकमत्यर्थं त्रयस्त्रिंशच्छुभाक्षरम्॥ ८५

यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चत्रिंशच्छुभाक्षरम्।
कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शान्तिकं तथा॥ ८६

त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैः सह लोहितम्।
सामोद्भवं जगत्याद्यं वृद्धिसंहारकारणम्॥ ८७

वर्णाः षडधिकाः षष्टिरस्य मन्त्रवरस्य तु।
पञ्चमन्त्रांस्तथा लब्ध्वा जजाप भगवान् हरिः॥ ८८

अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुःसामरूपिणम्।
ईशानमीशमुकुटं पुरुषास्यं पुरातनम्॥ ८९

अघोरहृदयं हृद्यं वामगुह्यं सदाशिवम्।
सद्यः पादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम्॥ ९०

विश्वतः पादवदनं विश्वतोऽक्षिकरं शिवम्।
ब्रह्मणोऽधिपतिं सर्गस्थितिसंहारकारणम्॥ ९१

तुष्टाव पुनरिष्टाभिर्वाग्भिर्वरदमीश्वरम्॥ ९२

उमाके साथ उन भगवान् महेश्वरको देखकर पुनः उन्हें प्रणाम करके जब भगवान् विष्णुने ऊपरकी ओर देखा तब उन्हें ॐकारसे उत्पन्न, पाँच कलाओंसे युक्त, बुद्धिविवर्धक तथा सभी धर्म-अर्थको सिद्ध करनेवाला शुद्ध स्फटिक-तुल्य अत्यन्त शुभ्र तथा अड़तीस शुभ अक्षरोंवाला पवित्र मन्त्र (**ईशानः सर्वविद्यानाम्०**)[१] दृष्टिगोचर हुआ। साथ ही गायत्रीसे उत्पन्न, चार कलाओंवाला, चौबीस अक्षरोंसे युक्त तथा वश्यकारक हरित वर्ण अत्युत्तम मन्त्र (**तत्पुरुषाय विद्महे०**)[२]; अथर्ववेदसे उत्पन्न आठ कलाओंसे युक्त तैंतीस शुभ अक्षरोंवाला कृष्णवर्ण तथा अत्यन्त अभिचारिक अघोर-मन्त्र (**अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्य०**)[३]; यजुर्वेदसे प्रादुर्भूत, आठ कलाओंवाला, श्वेतवर्णवाला, शान्तिकारक पैंतीस अक्षरोंसे युक्त पवित्र सद्योजात मन्त्र (**सद्योजातं प्रपद्यामि०**)[४] एवं सामवेदसे उत्पन्न, रक्तवर्ण, बाल आदि तेरह कलाओंसे युक्त, जगत्का आदि स्वरूप तथा वृद्धि-संहारका कारणरूप छाछठ अक्षरोंवाला उत्तम मन्त्र (**वामदेवाय नमो०**)[५] दृष्टिगत हुए। इन पाँचों मन्त्रोंको प्राप्तकर भगवान् विष्णुने इनका जप करना आरम्भ कर दिया॥ ८१—८८॥

तत्पश्चात् समस्त कलाओंकी कान्तिसे युक्त, ऋक्-यजुः-सामस्वरूप, ईशान मन्त्ररूप मुकुटवाले, तत्पुरुष मन्त्ररूप मुखवाले, अघोर मन्त्ररूप करुणामय हृदयवाले, वामदेव मन्त्र-रूप सदा कल्याणकर गुह्यस्थान-वाले तथा सद्योजात मन्त्ररूप चरणोंवाले, विशाल सर्पोंका आभूषण धारण करनेवाले, चारों ओर पैर-मुख-आँख धारण किये हुए, सृष्टि-पालन-संहारके कारणस्वरूप, पुरातन पुरुष महादेव ब्रह्माधिपति शिवको देखकर भगवान् विष्णु अभीष्ट स्तुतियोंसे उन वरदाता परमेश्वर ईशानका पुनः स्तवन करने लगे॥ ८९—९२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे लिङ्गोद्भवो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'लिङ्गोद्भव' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

---

१. ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥ (नारायणोपनिषद्)
२. तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ (नारायणोपनिषद्)
३. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥ (नारायणोपनिषद्)
४. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमोनमः। भवे भवे नाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥ (नारायणोपनिषद्)
५. वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥ (नारायणोपनिषद्)

अठारहवाँ अध्याय

विष्णुद्वारा की गयी भगवान् महेश्वरकी स्तुति तथा उसका माहात्म्य

विष्णुरुवाच

एकाक्षराय रुद्राय अकारायात्मरूपिणे।
उकारायादिदेवाय विद्यादेहाय वै नमः॥ १

तृतीयाय मकाराय शिवाय परमात्मने।
सूर्याग्निसोमवर्णाय यजमानाय वै नमः॥ २

अग्नये रुद्ररूपाय रुद्राणां पतये नमः।
शिवाय शिवमन्त्राय सद्योजाताय वेधसे॥ ३

वामाय वामदेवाय वरदायामृताय ते।
अघोरायातिघोराय सद्योजाताय रंहसे॥ ४

ईशानाय श्मशानाय अतिवेगाय वेगिने।
नमोऽस्तु श्रुतिपादाय ऊर्ध्वलिङ्गाय लिङ्गिने॥ ५

हेमलिङ्गाय हेमाय वारिलिङ्गाय चाम्भसे।
शिवाय शिवलिङ्गाय व्यापिने व्योमव्यापिने॥ ६

वायवे वायुवेगाय नमस्ते वायुव्यापिने।
तेजसे तेजसां भर्त्रे नमस्तेजोऽधिव्यापिने॥ ७

जलाय जलभूताय नमस्ते जलव्यापिने।
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय पृथिवीव्यापिने नमः॥ ८

शब्दस्पर्शस्वरूपाय रसगन्धाय गन्धिने।
गणाधिपतये तुभ्यं गुह्याद् गुह्यतमाय ते॥ ९

अनन्ताय विरूपाय अनन्तानामयाय च।
शाश्वताय वरिष्ठाय वारिगर्भाय योगिने॥ १०

संस्थितायाम्भसां मध्ये आवयोर्मध्यवर्चसे।
गोप्त्रे हर्त्रे सदा कर्त्रे निधनायेश्वराय च॥ ११

भगवान् विष्णु बोले—अद्वितीय तथा नाशरहित प्रणवरूप रुद्रको नमस्कार है। अकाररूप परमात्मा तथा उकाररूप आदिदेव विद्यादेहको नमस्कार है॥ १॥

तीसरे मकाररूप परमात्मा शिव और सूर्य-अग्नि-चन्द्रवर्णवाले रुद्र तथा यजमानरूपवाले महादेवको नमस्कार है॥ २॥

रुद्ररूप अग्निको तथा रुद्रोंके पतिको नमस्कार है। शिवको, शिवमन्त्रको, सद्योजात-रूप वेधाको नमस्कार है॥ ३॥

सुन्दर वामदेवको, वरदाताको तथा अमृतरूप आप शिवको नमस्कार है। अघोरको, अतिघोरको तथा वेगरूप सद्योजातको नमस्कार है॥ ४॥

ईशानको, श्मशान (काशीक्षेत्र)-को, अतिवेगशालीको, वेगवान्को, श्रुतिपाद (वेदोंसे ज्ञेय)-को, ऊर्ध्व लिङ्गको तथा लिङ्गीको नमस्कार है॥ ५॥

हेमलिङ्गको, हेमको, जललिङ्गको, जलको, शिवको, शिवलिङ्गको, व्यापीको तथा व्योममें व्याप्त रहनेवाले रुद्रको नमस्कार है॥ ६॥

वायुको, वायुवेगको तथा वायुव्यापीको नमस्कार है। तेजोंके भी तेज तथा तेजको पूर्णतः व्याप्त करनेवाले भरणकर्ता आप रुद्रको नमस्कार है॥ ७॥

जलको, जलभूत तथा जलमें व्याप्त रहनेवाले आप शिवको नमस्कार है। पृथ्वीको, अन्तरिक्षको तथा पृथ्वीमें व्याप्त रहनेवाले महेश्वरको नमस्कार है॥ ८॥

शब्द तथा स्पर्शस्वरूपको, रस तथा गन्धस्वरूपको, गन्धीको, गणोंके अधिपतिको तथा गुह्यसे भी गुह्यतम आप रुद्रको नमस्कार है॥ ९॥

शेषरूप अनन्तको, गरुड़रूप विरूपको, रोग-विकारशून्य अनन्त शिवको, शाश्वत, वरिष्ठ, वारिगर्भको तथा महायोगी महेश्वरको नमस्कार है॥ १०॥

जलके मध्य स्थित रहनेवाले, हम दोनों (विष्णु तथा ब्रह्मा)-के मध्य प्रकाशमान, सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता,

अचेतनाय चिन्त्याय चेतनायासहारिणे।
अरूपाय सुरूपाय अनङ्गायाङ्गहारिणे॥ १२
भस्मदिग्धशरीराय भानुसोमाग्निहेतवे।
श्वेताय श्वेतवर्णाय तुहिनाद्रिचराय च॥ १३

सुश्वेताय सुवक्त्राय नमः श्वेतशिखाय च।
श्वेतास्याय महास्याय नमस्ते श्वेतलोहित॥ १४
सुताराय विशिष्टाय नमो दुन्दुभिने हर।
शतरूपविरूपाय नमः केतुमते सदा॥ १५
ऋद्धिशोकविशोकाय पिनाकाय कपर्दिने।
विपाशाय सुपाशाय नमस्ते पाशनाशिने॥ १६
सुहोत्राय हविष्याय सुब्रह्मण्याय सूरिणे।
सुमुखाय सुवक्त्राय दुर्दमाय दमाय च॥ १७
कङ्काय कङ्करूपाय कङ्कणीकृतपन्नग।
सनकाय नमस्तुभ्यं सनातन सनन्दन॥ १८
सनत्कुमार सारङ्गमारणाय महात्मने।
लोकाक्षिणे त्रिधामाय नमो विरजसे सदा॥ १९
शङ्खपालाय शङ्खाय रजसे तमसे नमः।
सारस्वताय मेघाय मेघवाहन ते नमः॥ २०
सुवाहाय विवाहाय विवादवरदाय च।
नमः शिवाय रुद्राय प्रधानाय नमो नमः॥ २१
त्रिगुणाय नमस्तुभ्यं चतुर्व्यूहात्मने नमः।
संसाराय नमस्तुभ्यं नमः संसारहेतवे॥ २२

संहारकर्ता तथा मृत्युस्वरूप ईश्वरको नमस्कार है॥ ११॥

चित्तजन्य ज्ञानसे रहित, चिन्तनके योग्य, जीवोंके जन्म-मरणरूप कष्टोंका हरण करनेवाले, रूपरहित तथा सुन्दर रूपवाले, अंगोंसे रहित कामदेवरूप तथा अंगोंका नाश करनेवाले रुद्रको नमस्कार है॥ १२॥

भस्मसे भूषित शरीरवाले, सूर्य-चन्द्र-अग्निके कारणरूप, श्वेतरूप, श्वेत वर्णवाले, हिमाद्रिपर विचरण करनेवाले, अति श्वेतरूपसम्पन्न, सुन्दर वक्त्रवाले तथा श्वेत शिखाधारी, श्वेत मुखवाले, महान् मुखवाले हे श्वेतलोहित! आपको नमस्कार है॥ १३-१४॥

सुन्दर कान्तिवाले, विशिष्टतासम्पन्न तथा दुन्दुभि धारण करनेवाले, सैकड़ों रूपोंवाले, विशिष्ट रूपवाले तथा केतुमान् हे हर! आपको सर्वदा नमस्कार है॥ १५॥

ऋद्धि-शोक-विशोकस्वरूप, पिनाक धारण करनेवाले, जटाजूट धारण करनेवाले, बन्धनमुक्त, सुन्दर पाश धारण करनेवाले तथा पाशहर आप रुद्रको नमस्कार है॥ १६॥

हे भुजंगरूप कंकण (कंगन) धारण करनेवाले! आप श्रेष्ठ यजनकर्ता, हविष्यरूप, सुब्रह्मण्य, महाविद्या-सम्पन्न, सुन्दर मुखवाले, शुभ वक्त्रवाले, दुर्दमनीय, दमन करनेवाले, कंक (कपटद्विजरूप), कंकरूप (यम-स्वरूप)-को नमस्कार है। आप सनकको नमस्कार है। हे सनातनरूप! हे सनन्दनरूप! हे सनत्कुमाररूप! पशु-पक्षियोंको मारनेके लिये किरातरूप! महात्मा, संसारके नेत्ररूप, तीन धामोंवाले तथा आप विरजको सदा नमस्कार है॥ १७—१९॥

शंखपाल, शंखरूप, रज तथा तम गुणोंसे युक्त शिवको नमस्कार है। हे मेघवाहन! आप मेघरूप तथा सारस्वतको नमस्कार है॥ २०॥

भलीभाँति सबको वहन करनेवाले, विशिष्ट वाहनवाले, वाद (तर्क-वितर्क)-से रहित भक्तोंको वर देनेवाले, प्रधानरूप, कल्याणप्रद रुद्रको नमस्कार है, नमस्कार है॥ २१॥

तीन गुणोंवाले आपको नमस्कार है। चतुर्व्यूहरूप आपको नमस्कार है। संसारस्वरूप तथा संसारके कारण-रूप आपको बार-बार नमस्कार है॥ २२॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

मोक्षाय मोक्षरूपाय मोक्षकर्त्रे नमो नमः।
आत्मने ऋषये तुभ्यं स्वामिने विष्णवे नमः॥ २३

मोक्ष, मोक्षरूप तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आत्मास्वरूप, ऋषि, स्वामी तथा व्यापक शिवको नमस्कार है॥ २३॥

नमो भगवते तुभ्यं नागानां पतये नमः।
ओङ्काराय नमस्तुभ्यं सर्वज्ञाय नमो नमः॥ २४

आप भगवान्‌को नमस्कार है। आप सर्पोंके पतिको नमस्कार है। आप ओंकारको नमस्कार है। सर्वज्ञको बार-बार नमस्कार है॥ २४॥

सर्वाय च नमस्तुभ्यं नमो नारायणाय च।
नमो हिरण्यगर्भाय आदिदेवाय ते नमः॥ २५

आप सर्व (पूर्णस्वरूप)-को नमस्कार है और नारायणको नमस्कार है। हिरण्यगर्भको नमस्कार है। आप आदिदेवको नमस्कार है॥ २५॥

नमोस्त्वजाय पतये प्रजानां व्यूहहेतवे।
महादेवाय देवानामीश्वराय नमो नमः॥ २६

अज, प्रजापति, व्यूहहेतु, महादेव तथा देवताओंके ईश्वरको नमस्कार है, नमस्कार है॥ २६॥

शर्वाय च नमस्तुभ्यं सत्याय शमनाय च।
ब्रह्मणे चैव भूतानां सर्वज्ञाय नमो नमः॥ २७

आप शर्वको नमस्कार है। सत्यरूप, शान्तिरूप, ब्रह्मस्वरूप तथा सर्वज्ञाताको नमस्कार है, नमस्कार है॥ २७॥

महात्मने नमस्तुभ्यं प्रज्ञारूपाय वै नमः।
चितये चितिरूपाय स्मृतिरूपाय वै नमः॥ २८

आप महात्माको नमस्कार है। आप प्रज्ञारूपको नमस्कार है। चिति, चितिरूप तथा स्मृतिरूप आपको नमस्कार है॥ २८॥

ज्ञानाय ज्ञानगम्याय नमस्ते संविदे सदा।
शिखराय नमस्तुभ्यं नीलकण्ठाय वै नमः॥ २९

आप ज्ञानरूप, ज्ञानगम्य तथा चैतन्यरूपको सर्वदा नमस्कार है। आप शिखरको नमस्कार है तथा नीलकण्ठको नमस्कार है॥ २९॥

अर्धनारीशरीराय अव्यक्ताय नमो नमः।
एकादशविभेदाय स्थाणवे ते नमः सदा॥ ३०

अर्धनारीका शरीर धारण करनेवाले तथा अव्यक्तको बार-बार नमस्कार है। ग्यारह रूपोंमें परिवर्तित होनेवाले आप स्थाणुको सदा नमस्कार है॥ ३०॥

नमः सोमाय सूर्याय भवाय भवहारिणे।
यशस्कराय देवाय शङ्करायेश्वराय च॥ ३१

सोम, सूर्य, भव, भवहारी, यशस्कर, देव, शंकर तथा ईश्वरको नमस्कार है॥ ३१॥

नमोऽम्बिकाधिपतये उमायाः पतये नमः।
हिरण्यबाहवे तुभ्यं नमस्ते हेमरेतसे॥ ३२

पार्वतीपतिको नमस्कार है। उमापतिको नमस्कार है। आप हिरण्यबाहु तथा सुवर्णवीर्यको नमस्कार है॥ ३२॥

नीलकेशाय वित्ताय शितिकण्ठाय वै नमः।
कपर्दिने नमस्तुभ्यं नागाङ्गाभरणाय च॥ ३३

नीलकेश, वित्त तथा शितिकण्ठको नमस्कार है। कपर्दी (जटाजूट धारण करनेवाले) तथा अंगोंके आभूषण-रूपमें सर्पोंको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३३॥

वृषारूढाय सर्वस्य हर्त्रे कर्त्रे नमो नमः।
वीररामातिरामाय रामनाथाय ते विभो॥ ३४

वृषारूढ़ (बैलपर सवार होनेवाले) तथा सभीके कर्ता और हर्ताको बार-बार नमस्कार है। हे विभो! आप वीरराम, अतिराम तथा रामनाथको नमस्कार है॥ ३४॥

नमो राजाधिराजाय राज्ञामधिगताय ते।
नमः पालाधिपतये पालाशाकृन्तते नमः॥ ३५

राजाओंके भी अधिराज तथा राजाओंके द्वारा प्राप्त

नमः केयूरभूषाय गोपते ते नमो नमः।
नमः श्रीकण्ठनाथाय नमो लिकुचपाणये॥ ३६

भुवनेशाय देवाय वेदशास्त्र नमोऽस्तु ते।
सारङ्गाय नमस्तुभ्यं राजहंसाय ते नमः॥ ३७

कनकाङ्गदहाराय नमः सर्पोपवीतिने।
सर्पकुण्डलमालाय कटिसूत्रीकृताहिने॥ ३८

वेदगर्भाय गर्भाय विश्वगर्भाय ते शिव।

ब्रह्मोवाच

विररामेति संस्तुत्वा ब्रह्मणा सहितो हरिः॥ ३९

एतत्स्तोत्रवरं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
यः पठेच्छ्रावयेद्वापि ब्राह्मणान् वेदपारगान्॥ ४०

स याति ब्रह्मणो लोके पापकर्मरतोऽपि वै।
तस्माज्जपेत्पठेन्नित्यं श्रावयेद् ब्राह्मणाञ्छुभान्॥ ४१

सर्वपापविशुद्ध्यर्थं विष्णुना परिभाषितम्॥ ४२

किये जानेयोग्य आपको नमस्कार है। पालाशाकृन्त एवं पालाधिपतिको नमस्कार है॥ ३५॥

आभूषणके रूपमें सर्पका बाजूबन्द धारण करनेवाले शिवको नमस्कार है। हे गोपते! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। श्रीकंठनाथको नमस्कार है। श्रीदण्डपाणिको नमस्कार है॥ ३६॥

हे वेदशास्त्ररूप! आप भुवनेशदेवको नमस्कार है। आप सारंग तथा राजहंसको नमस्कार है॥ ३७॥

धतूरेका बाजूबन्द तथा हार धारण करनेवाले एवं सर्पका जनेऊ धारण करनेवाले, सर्पोंका कुण्डल तथा माला पहननेवाले, सर्पका कटिसूत्र (करधनी) धारण करनेवाले, वेदगर्भ, गर्भरूप तथा विश्वगर्भ हे शिव! आपको नमस्कार है॥ ३८ १/२॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार [मुझ] ब्रह्माके साथ विष्णुभगवान् स्तुति करके शान्त हो गये। पुण्य प्रदान करनेवाले तथा सभी पापोंका नाश करनेवाले इस उत्तम स्तोत्रका जो प्राणी पाठ करता है अथवा इसे वेदके पारगामी ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह पापकर्ममें लिप्त रहनेपर भी ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। अतएव सभी पापोंकी शुद्धिहेतु मनुष्यको विष्णुद्वारा कहे गये इस स्तोत्रका नित्य जप करना चाहिये, पाठ करना चाहिये तथा इसे धर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको सुनाना चाहिये॥ ३९—४२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विष्णुस्तवो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'विष्णुस्तव' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

महादेवजीद्वारा ब्रह्मा एवं विष्णुको वर प्रदान करना तथा उमामहेश्वर-पूजनके रूपमें लिङ्गपूजनकी परम्पराका प्रारम्भ

सूत उवाच

अथोवाच महादेवः प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ।
पश्यतां मां महादेवं भयं सर्वं विमुच्यताम्॥ १

युवां प्रसूतौ गात्राभ्यां मम पूर्वं महाबलौ।
अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २

सूतजी बोले—तदनन्तर महादेवजीने कहा—हे श्रेष्ठ देवद्वय (ब्रह्मा, विष्णु)! मैं आप दोनोंपर प्रसन्न हूँ। मुझ महादेवका दर्शन करो और सभी प्रकारके भयका त्याग कर दो॥ १॥

आप दोनों महाबली देवता पूर्वकालमें मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए थे। सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ये ब्रह्मा मेरे दक्षिण (दायें) अंगसे तथा विश्वात्मा और हृदयोद्भव

वामे पार्श्वे च मे विष्णुर्विश्वात्मा हृदयोद्भवः।
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम्॥ ३

एवमुक्त्वा तु तं विष्णुं कराभ्यां परमेश्वरः।
पस्पर्श सुभगाभ्यां तु कृपया तु कृपानिधिः॥ ४

ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य महेश्वरम्।
प्राह नारायणो नाथं लिङ्गस्थं लिङ्गवर्जितम्॥ ५

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि चाव्यभिचारिणी॥ ६

देवः प्रदत्तवान् देवाः स्वात्मन्यव्यभिचारिणीम्।
ब्रह्मणे विष्णवे चैव श्रद्धां शीतांशुभूषणः॥ ७

जानुभ्यामवनीं गत्वा पुनर्नारायणः स्वयम्।
प्रणिपत्य च विश्वेशं प्राह मन्दतरं वशी॥ ८

आवयोर्देवदेवेश विवादमतिशोभनम्।
इहागतो भवान् यस्माद्विवादशमनाय नौ॥ ९

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह हरो हरिम्।
प्रणिपत्य स्थितं मूर्ध्ना कृताञ्जलिपुटं स्मयन्॥ १०

श्रीमहादेव उवाच

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ता त्वं धरणीपते।
वत्स वत्स हरे विष्णो पालयैतच्चराचरम्॥ ११

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुभवाख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः॥ १२

सम्मोहं त्यज भो विष्णो पालयैनं पितामहम्।
पाद्मे भविष्यति सुतः कल्पे तव पितामहः॥ १३

तदा द्रक्ष्यसि मां चैवं सोऽपि द्रक्ष्यति पद्मजः।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १४

ये विष्णु मेरे बायें अंगसे उत्पन्न हुए हैं। मैं आप दोनोंपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अतएव यथेच्छ वर माँगो; मैं उसे अभी दूँगा॥ २-३॥

इतना कहकर कृपानिधि परमेश्वर महादेवने अपने दोनों सुन्दर हाथोंसे प्रीतिपूर्वक उन विष्णुका स्पर्श किया॥ ४॥

तब लिङ्गमें विराजित तथा लिङ्गदेहशून्य स्वेच्छासे विग्रह धारण करनेवाले महेश्वरको प्रणाम करके प्रसन्न मनसे नारायण विष्णुने कहा॥ ५॥

यदि आपके हृदयमें हमारे प्रति प्रीति-भाव उत्पन्न हुआ है और यदि हमें वरदान देना चाहते हैं, तो यही वर दीजिये कि आपके प्रति हम दोनोंकी सदा दृढ़ भक्ति बनी रहे॥ ६॥

हे देवताओ! चन्द्रमाको आभूषणस्वरूप धारण करनेवाले महादेवने ब्रह्मा तथा विष्णुको अपनी अचल श्रद्धा-भक्ति प्रदान की॥ ७॥

पुनः जमीनपर घुटना टेककर प्रणाम करते हुए इन्द्रियजित् नारायण विष्णुने साक्षात् विश्वेश्वर महादेवसे अत्यन्त मधुरतासे कहा॥ ८॥

हे देवदेवेश! हम दोनोंका यह विवाद तो अत्यन्त मङ्गलकारी सिद्ध हुआ; क्योंकि हम दोनोंके इसी विवादको समाप्त करनेके निमित्त आप यहाँ प्रकट हुए हैं॥ ९॥

उनका यह वचन सुनकर भगवान् शम्भुने दोनों हाथ जोड़े तथा सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए वहाँ स्थित विष्णुसे मुसकराकर पुनः कहा॥ १०॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पृथ्वीपते! उत्पत्ति, स्थिति तथा संहारके कर्ता आप हैं। हे वत्स! हे वत्स! हे हरे! हे विष्णो! आप इस चराचर जगत्का पालन कीजिये॥ ११॥

हे विष्णो! मैं निष्कल परमेश्वर ही ब्रह्मा, विष्णु तथा भव (रुद्र) नामोंसे अलग-अलग तीन प्रकारके रूपोंमें सृजन, पालन तथा संहारके गुणोंसे युक्त हूँ॥ १२॥

हे विष्णो! आप मोहका त्याग करें और इन पितामहका पालन करें। ये पितामह पाद्म कल्पमें आपके पुत्र होंगे। उस समय आप तथा आपके पुत्ररूप वे कमलोद्भव ब्रह्मा—दोनों लोग मेरा दर्शन प्राप्त करेंगे।

तदाप्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता।
लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः॥ १५

ऐसा कहकर वे भगवान् महादेव वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १३-१४॥

उसी समयसे लोकोंमें शिवलिङ्गके पूजनकी प्रसिद्धि व्याप्त हो गयी। लिङ्गवेदीके रूपमें महादेवी पार्वती तथा लिङ्गरूपमें साक्षात् महेश्वर प्रतिष्ठित रहते हैं॥ १५॥

लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः।
यस्तु लैङ्गं पठेन्नित्यमाख्यानं लिङ्गसन्निधौ॥ १६
स याति शिवतां विप्रो नात्र कार्या विचारणा॥ १७

हे देवताओ! समग्र जगत्को अपनेमें लय करनेके कारण यह लिङ्ग कहा गया है। जो विप्र शिवलिङ्गके समक्ष लिङ्ग-आख्यानका प्रतिदिन पाठ करता है, वह शिवत्वको प्राप्त हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १६-१७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विष्णुप्रबोधो नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'विष्णुप्रबोध' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

शेषशय्यापर आसीन भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव, भगवान् शिवकी मायासे दोनोंका विमोहित होना, विष्णुद्वारा ब्रह्माके प्रति शिवमाहात्म्यका कथन

ऋषय ऊचुः

कथं पाद्मे पुरा कल्पे ब्रह्मा पद्मोद्भवोऽभवत्।
भवं च दृष्टवांस्तेन ब्रह्मणा पुरुषोत्तमः॥ १
एतत्सर्वं विशेषेण साम्प्रतं वक्तुमर्हसि।

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] प्राचीनकालमें पाद्म कल्पमें ब्रह्माजी कमलसे किस प्रकार जायमान हुए और पुरुषोत्तम विष्णुने उन ब्रह्माके साथ शिवका दर्शन कैसे किया? कृपया अब इन सब वृत्तान्तोंका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें॥ १½॥

सूत उवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्॥ २
मध्ये चैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः।
जीमूताम्भोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः॥ ३
नारायणमुखोद्गीर्णसर्वात्मा पुरुषोत्तमः।
अष्टबाहुर्महावक्षा लोकानां योनिरुच्यते॥ ४
किमप्यचिन्त्यं योगात्मा योगमास्थाय योगवित्।
फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम्॥ ५
महाभोगपतेर्भोगं साध्वास्तीर्य महोच्छ्रयम्।
तस्मिन् महति पर्यङ्के शेते चैकार्णवे प्रभुः॥ ६

सूतजी बोले—प्रलयके समय चारों ओर जल-ही-जल तथा घोर, घनीभूत अन्धकार व्याप्त था। उस प्रलयसागरके मध्य शंख-चक्र-गदा धारण किये, नील मेघके सदृश वर्णवाले, कमलके समान नेत्रवाले, मुकुट धारण किये, आठ भुजाओंवाले, विशाल वक्षःस्थलवाले, लोकोंकी योनि कहे जानेवाले, सभी जीवात्माएँ जिनके मुखसे निकली हैं—ऐसे योगात्मा तथा योगवित् सर्वात्मा नारायण पुरुषोत्तम लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु किसी अनिर्वचनीय योगमें स्थित होकर, हजार फणोंसे सुशोभित शेषनागके अप्रतिम ओजसम्पन्न, अति उन्नत तथा छायायुक्त फणरूप शय्याको भलीभाँति बिछाकर प्रलय-सागर-स्थित उस महान् पर्यंक (शेषशय्या)-पर शयन कर रहे थे॥ २—६॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
आत्मारामेण क्रीडार्थं लीलयाक्लिष्टकर्मणा॥ ७

शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम्।
वज्रदण्डं महोत्सेधं नाभ्यां सृष्टं तु पुष्करम्॥ ८

तस्यैवं क्रीडमानस्य समीपं देवमीढुषः।
हेमगर्भाण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः॥ ९

चतुर्वक्त्रो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया।
श्रिया युक्तेन दिव्येन सुशुभेन सुगन्धिना॥ १०

क्रीडमानं च पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा शुभेक्षणम्।
सविस्मयमथागम्य सौम्यसम्पन्नया गिरा॥ ११

प्रोवाच को भवाञ्छेते ह्याश्रितो मध्यमम्भसाम्।
अथ तस्याच्युतः श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभं वचः॥ १२

उदतिष्ठत पर्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
प्रत्युवाचोत्तरं चैव कल्पे कल्पे प्रतिश्रयः॥ १३

कर्तव्यं च कृतं चैव क्रियते यच्च किञ्चन।
द्यौरन्तरिक्षं भूश्चैव परं पदमहं भुवः॥ १४

तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनरथाब्रवीत्।
कस्त्वं खलु समायातः समीपं भगवान् कुतः॥ १५

क्व वा भूयश्च गन्तव्यं कश्च वा ते प्रतिश्रयः।
को भवान् विश्वमूर्तिर्वै कर्तव्यं किं च ते मया॥ १६

एवं ब्रुवन्तं वैकुण्ठं प्रत्युवाच पितामहः।
मायया मोहितः शम्भोरविज्ञाय जनार्दनम्॥ १७

मायया मोहितं देवमविज्ञातं महात्मनः।
यथा भवांस्तथैवाहमादिकर्ता प्रजापतिः॥ १८

सविस्मयं वचः श्रुत्वा ब्रह्मणो लोकतन्त्रिणः।
अनुज्ञातश्च ते नाथ वैकुण्ठो विश्वसम्भवः॥ १९

कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम्।
इमानष्टादश द्वीपान् ससमुद्रान् सपर्वतान्॥ २०

प्रविश्य सुमहातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान्।
ब्रह्मणस्तम्बपर्यन्तं सप्तलोकान् सनातनान्॥ २१

इस प्रकार वहाँ शयन कर रहे गूढ़ रहस्योंवाले सर्वव्यापी आत्माराम विष्णुने अपनी क्रीड़ाके निमित्त अत्यन्त ऊँचे वज्रदण्डसे युक्त एक कमल, जो शतयोजन विस्तीर्ण तथा प्रखर सूर्यके समान था, अपनी नाभिसे लीलापूर्वक उत्पन्न किया॥ ७-८॥

कमलके साथ क्रीड़ारत उन देवश्रेष्ठ विष्णुके पास आकर हिरण्यगर्भ, अण्डज, सोनेके वर्णवाले, अतीन्द्रिय, चार मुखवाले तथा विशाल नेत्रोंवाले ब्रह्माने शोभासम्पन्न, दिव्य, सुन्दर तथा सुगन्धित कमलके साथ सुन्दर नयनोंवाले विष्णुको खेलते हुए देखा। तत्पश्चात् उनके सन्निकट पहुँचकर ब्रह्माजीने विस्मयपूर्ण भावसे विनम्रतायुक्त वाणीमें उनसे पूछा—आप कौन हैं और इस समुद्रके मध्य आश्रय लेकर क्यों सो रहे हैं?॥ ९—११½॥

उन ब्रह्माका यह सुखद वचन सुनकर विष्णुजी पर्यंकसे उठकर बैठ गये और नेत्रोंमें प्रसन्नता भरकर उनके उत्तरमें कहने लगे कि मैं प्रत्येक कल्पमें इसी स्थानका आश्रय लेकर शयन करता हूँ॥ १२-१३॥

जो कुछ भी किया जाना है, किया गया है और किया जा रहा है तथा स्वर्गलोक, आकाश, पृथ्वी एवं भुवर्लोक—इन सबका परम पद मैं ही हूँ॥ १४॥

उनसे इस प्रकार कहकर भगवान् विष्णुने पुनः उनसे पूछा—ऐश्वर्यसम्पन्न आप कौन हैं तथा मेरे पास कहाँसे आये हैं? आप पुनः कहाँ जायँगे तथा आपका निवासस्थान कहाँ है? विश्वमूर्तिस्वरूप आप कौन हैं तथा मैं आपके लिये क्या करूँ?॥ १५-१६॥

विष्णुके ऐसा कहनेपर महात्मा शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण भगवान् जनार्दनको पहचाने बिना पितामह ब्रह्मा उन्हीं शिवकी मायासे मोहको प्राप्त अविज्ञात विष्णुदेवसे कहने लगे, जिस प्रकार आप इस जगत्के आदिकर्ता तथा प्रजापति हैं, वैसे ही मैं भी हूँ॥ १७-१८॥

जगत्के रचयिता ब्रह्माजीका यह विस्मयकारी वचन सुनकर और उनकी आज्ञा लेकर विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले योगी महायोगी विष्णुभगवान् कौतूहलवश ब्रह्माके मुखमें प्रविष्ट हो गये॥ १९½॥

ब्रह्माजीके उदरमें प्रवेश करके वहाँपर अठारह द्वीपों, सभी समुद्रों, समस्त पर्वतों, ब्राह्मण आदि चार वर्णोंके जनसमूहों, सनातन सात लोकों तथा ब्रह्मासे

ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान् विष्णुर्महाभुजः।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा च पुनः पुनः॥ २२
अटित्वा विविधाँल्लोकान् विष्णुर्नानाविधाश्रयान्।
ततो वर्षसहस्रान्ते नान्तं हि ददृशे यदा॥ २३
तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः।
नारायणो जगद्धाता पितामहमथाब्रवीत्॥ २४
भगवानादिरन्तश्च मध्यं कालो दिशो नभः।
नाहमन्तं प्रपश्यामि उदरस्य तवानघ॥ २५
एवमुक्त्वाब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः।
भगवानेवमेवाहं शाश्वतं हि ममोदरम्॥ २६
प्रविश्य लोकान् पश्यैताननौपम्यान् सुरोत्तम।
ततः प्राह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च॥ २७
श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश पितामहः।
तानेव लोकान् गर्भस्थानपश्यत्सत्यविक्रमः।
पर्यटित्वा तु देवस्य ददृशेऽन्तं न वै हरेः॥ २८
ज्ञात्वा गतिं तस्य पितामहस्य
द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णुः।
विभुर्मनः कर्तुमियेष चाशु
सुखं प्रसुप्तोऽहमिति प्रचिन्त्य॥ २९
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समीक्ष्य वै।
सूक्ष्मं कृत्वात्मनो रूपं नाभ्यां द्वारमविन्दत॥ ३०
पद्मसूत्रानुसारेण चान्वपश्यत्पितामहः।
उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः॥ ३१

विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवाञ्जगद्योनिः पितामहः॥ ३२

लेकर तृणपर्यन्त सभी स्थावर-जंगम पदार्थ देखकर महाभुज महातेजस्वी विष्णुभगवान् अत्यन्त विस्मित हुए। 'अहो! इनकी तपस्याका ऐसा प्रभाव'—ऐसा बार-बार कहते हुए विष्णुभगवान् उदरके अन्दर विविध लोकों तथा अनेक स्थानोंपर हजार वर्षोंतक भ्रमण करते रहे, किंतु जब उसका अन्त नहीं पा सके, तब वे शेषशायी जगदाधार नारायण उन ब्रह्माके मुखमार्गसे बाहर निकलकर उनसे कहने लगे॥ २०—२४॥

हे अनघ! आप भगवान् हैं। आप आदि, अन्त, मध्य, काल, दिशा, आकाश आदिसे युक्त हैं। मैं आपके उदरका अन्त नहीं देख पाया॥ २५॥

ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने ब्रह्मासे पुनः यह कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मैं भी इसी तरह भगवान् हूँ। अब आप भी मेरे शाश्वत उदरमें प्रवेश करके इन्हीं अनुपम लोकोंका दर्शन करें॥ २६ १/२॥

लक्ष्मीकान्त विष्णुकी यह आह्लादकारिणी वाणी सुनकर उन्हें प्रसन्न करते हुए ब्रह्माजी उनके उदरमें प्रविष्ट हुए॥ २७ १/२॥

सत्य पराक्रमवाले ब्रह्माजीने विष्णुके उदरमें स्थित उन्हीं सब लोकोंको देखा और उसमें बहुत भ्रमण करनेके उपरान्त भी विष्णुदेवके उदरका अन्त नहीं पा सके॥ २८॥

सभी इन्द्रियद्वारोंको निरुद्ध करके मैं सुखपूर्वक सो लिया—ऐसा सोचकर और ब्रह्माजीकी गतिको जानकर सर्वव्यापक विष्णुजीने शीघ्र ही उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेकी इच्छा की॥ २९॥

तत्पश्चात् सभी द्वारोंको बन्द देखकर पितामहने अत्यन्त सूक्ष्म रूप धारण करके नाभिमें मार्ग पाया तथा पद्मसूत्र (कमलनाल)-के सहारे पुष्कर (कमल)-से स्वयंको बाहर निकाला, तदनन्तर पद्मगर्भके समान कान्तिवाले जगद्योनि स्वयम्भू पितामह भगवान् ब्रह्मा कमलके ऊपर शोभित हुए॥ ३०—३२॥

एतस्मिन्नन्तरे ताभ्यामेकैकस्य तु कृत्स्नशः।
वर्तमाने तु सङ्घर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु॥ ३३

कुतोऽप्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः।
शूलपाणिर्महादेवो हेमवीराम्बरच्छदः॥ ३४

अगच्छद्यत्र सोऽनन्तो नागभोगपतिर्हरिः।
शीघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामाक्रान्तपीडिताः॥ ३५

उद्धूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिन्दवः।
अत्युष्णश्चातिशीतश्च वायुस्तत्र ववौ पुनः॥ ३६

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभाषत।
अब्बिन्दवश्च शीतोष्णाः कम्पयन्त्यम्बुजं भृशम्॥ ३७

एतन्मे संशयं ब्रूहि किं वा त्वन्यच्चिकीर्षसि।
एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्गतम्॥ ३८

श्रुत्वाप्रतिमकर्मा हि भगवानसुरान्तकृत्।
किं नु खल्वत्र मे नाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम्॥ ३९

वदति प्रियमत्यर्थं मन्युश्चास्य मया कृतः।
इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम्॥ ४०

किमत्र भगवानद्य पुष्करे जातसम्भ्रमः।
किं मया च कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम्॥ ४१

भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः।
एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रानुगं ततः॥ ४२

प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः।
योऽसौ तवोदरं पूर्वं प्रविष्टोऽहं त्वदिच्छया॥ ४३

यथा ममोदरे लोकाः सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो।
तथैव दृष्टाः कार्त्स्न्येन मया लोकास्तवोदरे॥ ४४

उस समुद्रके मध्य ब्रह्मा और विष्णुमें अनेक प्रकारसे संघर्ष चल रहा था, उसी समय श्रेष्ठ स्वर्णके समान वस्त्रको धारण करनेवाले, अमेय आत्मावाले, जीवोंके स्वामी शूलपाणि महादेव कहींसे वहाँपर पहुँच गये, जहाँ वे शेषशायी अनन्त विष्णुभगवान् थे॥ ३३-३४½॥

उनके शीघ्रतापूर्वक चलनेसे चरणोंके प्रहारसे संपीडित होकर समुद्र-जलकी बड़ी-बड़ी बूँदें आकाशतक पहुँचने लगीं और वहाँ कभी अत्यन्त गर्म तथा कभी अत्यन्त शीतल वायु बहने लगी॥ ३५-३६॥

उस महान् आश्चर्यको देखकर ब्रह्माने विष्णुसे कहा कि ये शीतल एवं उष्ण जलकी बूँदें इस कमलको अत्यधिक कम्पायमान कर रही हैं। इस विषयमें मेरी शंकाका समाधान कीजिये अथवा आप कुछ और करना तो नहीं चाहते?॥ ३७½॥

ब्रह्माके मुखसे निर्गत इस प्रकारकी बात सुनकर अप्रतिम कर्मवाले असुरसंहारक भगवान् विष्णु सोचने लगे कि मेरी नाभिमें इस कौन-से जीवने अपना स्थान बना लिया है, जो इस तरह प्रेमपूर्वक मधुर-मधुर बोल रहा है; तथा मैंने इसके प्रति कहीं क्रोध किया है—ऐसा मनमें ध्यान करके विष्णुभगवान् यह उत्तर देने लगे॥ ३८—४०॥

आप भगवान् हैं और आपको यहाँ कमलके विषयमें व्याकुलता क्यों हो रही है? हे देव! मैंने कौन-सा श्रेष्ठ कार्य किया है, जो आप मुझसे प्रेमपूर्वक बोल रहे हैं? हे पुरुषश्रेष्ठ! इसका कारण मुझे यथार्थ रूपसे बताइये॥ ४१½॥

लोकयात्राका अनुवर्तन करनेवाले तथा कमलकी आभाके समान नेत्रवाले देवेश्वर विष्णुके इस प्रकार बोलनेपर वेदनिधि प्रभु ब्रह्माने उनसे कहा॥ ४२½॥

यह मैं आपकी ही इच्छासे पूर्वकालमें आपके उदरमें प्रविष्ट हुआ था। हे प्रभो! जिस प्रकार प्रथम मेरे उदरमें प्रवेश करके आपने सभी लोकोंको देखा था, उसी प्रकार मैंने भी आपके उदरमें उन सम्पूर्ण लोकोंका दर्शन किया है॥ ४३-४४॥

ततो वर्षसहस्रात्तु उपावृत्तस्य मेऽनघ।
त्वया मत्सरभावेन मां वशीकर्तुमिच्छता॥ ४५

आशु द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समन्ततः।
ततो मया महाभाग सञ्चिन्त्य स्वेन तेजसा॥ ४६

लब्धो नाभिप्रदेशेन पद्मसूत्राद्विनिर्गमः।
मा भूत्ते मनसोऽल्पोऽपि व्याघातोऽयं कथञ्चन॥ ४७

इत्येषानुगतिर्विष्णो कार्याणामौपसर्पिणी।
यन्मयानन्तरं कार्यं ब्रूहि किं करवाण्यहम्॥ ४८

ततः परममेयात्मा हिरण्यकशिपो रिपुः।
अनवद्यां प्रियामिष्टां शिवां वाणीं पितामहात्॥ ४९

श्रुत्वा विगतमात्सर्यं वाक्यमस्मै ददौ हरिः।
न ह्येवमीदृशं कार्यं मयाध्यवसितं तव॥ ५०

त्वां बोधयितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मयात्मनः॥ ५१

न तेऽन्यथावगन्तव्यं मान्यः पूज्यश्च मे भवान्।
सर्वं मर्षय कल्याण यन्मयापकृतं तव॥ ५२

अस्मान् मयोह्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो।
नाहं भवन्तं शक्नोमि सोढुं तेजोमयं गुरुम्॥ ५३

स होवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो।
पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनाम्॥ ५४

सद्भाववचनं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो।
स त्वं च नो महायोगी त्वमीड्यः प्रणवात्मकः॥ ५५

अद्यप्रभृति सर्वेशः श्वेतोष्णीषविभूषितः।
पद्मयोनिरिति ह्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि॥ ५६

हे अनघ! वहाँ मैं हजार वर्षोंतक चक्कर लगाता रहा। इसके बाद ईर्ष्याभावसे युक्त होकर आपने मुझे वशमें करनेकी इच्छासे चारों ओरसे सभी इन्द्रियद्वार शीघ्रतापूर्वक बन्द कर लिये॥ ४५ १/२॥

तदनन्तर हे महाभाग! मैं अपने तेजके प्रभावसे विवेकपूर्वक अतिसूक्ष्मरूप धारणकर आपके नाभि-स्थलसे कमलनालके सहारे बाहर निकल आया। इसके लिये आपके मनमें थोड़ा भी विषाद नहीं होना चाहिये॥ ४६-४७॥

हे विष्णो! जो यह मेरा बाहर निकलना हुआ है, वह किसी विशेष कार्यके लिये है। अब आप मुझे यह बताइये कि मैं क्या करूँ?॥ ४८॥

तदनन्तर पितामह ब्रह्माकी प्रिय, मधुर, पवित्र तथा कल्याणमयी वाणी सुनकर हिरण्यकशिपुके शत्रु अप्रमेयात्मा भगवान् विष्णुने ईर्ष्यारहित होकर उनसे यह वचन कहा कि आपके नाभिकमलोद्भवरूप इस कार्यके लिये मैंने कोई प्रयास नहीं किया है॥ ४९-५०॥

आपको बोध करानेकी इच्छासे मैंने तो क्रीड़ापूर्वक दैवयोगसे यों ही अपने सभी दरवाजे शीघ्र बन्द कर लिये थे। इसे आप कुछ भी अन्यथा न समझें। हे कल्याणकारक! आप मेरे मान्य तथा पूज्य हैं, अतएव मैंने आपका जो भी अपकार किया है, वह सब आप क्षमा करें॥ ५१-५२॥

हे प्रभो! मेरे द्वारा वहन किये जाते हुए आप अब कमलसे उतर आइये; क्योंकि आपके अत्यन्त गुरुतर तथा तेजसम्पन्न होनेके कारण मैं आपका भार सहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ॥ ५३॥

तब ब्रह्माने कहा कि आप मुझसे वरदान माँगिये। इसपर विष्णु कहने लगे—हे प्रभो! आप कमलसे नीचे उतर आइये और यही वर दीजिये कि आप मेरे पुत्र बनेंगे। हे शत्रुदलन! इससे आपको भी अपार हर्ष प्राप्त होगा॥ ५४॥

हे प्रभो! आप सद्भावनापूर्ण वचन बोलिये और कमलसे नीचे उतर आइये। आप महायोगी तथा प्रणवरूप हैं। आप हमारे पूज्य हैं। आजसे आप सबके

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन् सप्तलोकाधिपः प्रभो।
ततः स भगवान् देवो वरं दत्त्वा किरीटिने॥ ५७

एवं भवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सरः।
प्रत्यासन्नमथायान्तं बालार्काभं महाननम्॥ ५८

भवमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत्।
अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री ध्वस्तशिरोरुहः॥ ५९

दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतः स्थितः।
लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली॥ ६०

मेढ्रेणोर्ध्वेन महता नर्दमानोऽतिभैरवम्।
कः खल्वेष पुमान् विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः॥ ६१

व्याप्य सर्वा दिशो द्यां च इत एवाभिवर्तते।
तेनैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणमब्रवीत्॥ ६२

पद्भ्यां तलनिपातेन यस्य विक्रमतोऽर्णवे।
वेगेन महताकाशेऽप्युत्थिताश्च जलाशयाः॥ ६३

स्थूलाद्भिर्विश्वतोऽत्यर्थं सिच्यसे पद्मसम्भव।
घ्राणजेन च वातेन कम्प्यमानं त्वया सह॥ ६४

दोधूयते महापद्मं स्वच्छन्दं मम नाभिजम्।
समागतो भवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृत्प्रभुः॥ ६५

भवानहं च स्तोत्रेण उपतिष्ठाव गोध्वजम्।
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम्॥ ६६

भवान्न नूनमात्मानं वेत्ति लोकप्रभुं विभुम्।
ब्रह्माणं लोककर्तारं मां न वेत्सि सनातनम्॥ ६७

को ह्यसौ शङ्करो नाम आवयोर्व्यतिरिच्यते।
तस्य तत्क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा हरिरभाषत॥ ६८

मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः।
महायोगेन्धनो धर्मो दुराधर्षो वरप्रदः॥ ६९

स्वामी हैं तथा श्वेत पगड़ीसे सदा शोभायमान रहेंगे और इस प्रकार 'पद्मयोनि' नामसे लोकमें प्रसिद्ध होंगे। हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! आप मेरे पुत्र तथा सात लोकोंके स्वामी हों॥ ५५-५६½॥

तत्पश्चात् किरीटधारी विष्णुसे 'ऐसा ही होगा' कहकर अर्थात् वर देकर ब्रह्माजी प्रसन्नतायुक्त तथा द्वेषरहित हो गये। इसके बाद पितामहने उदीयमान सूर्यकी आभाके समान विशाल मुखवाले तथा अत्यन्त अद्भुत रूपवाले शिवको अति समीप आते हुए देखकर भगवान् विष्णुसे कहा—॥ ५७-५८½॥

हे विष्णो! अप्रमेय, विशाल वक्त्रसम्पन्न, वाराहके समान दाढ़ोंवाला, फैले हुए केशोंवाला, दश भुजाओंवाला, त्रिशूलधारी, नेत्रोंसे हर जगह स्थित अर्थात् सर्वदर्शी, मुंजकी मेखला धारण किये, विकृत रूपवाला, उन्नत तथा विशाल मेढ्रवाला, अत्यन्त भयंकर ध्वनि करता हुआ साक्षात् लोक-प्रभुतुल्य, महान् कान्तिसम्पन्न तथा तेजपुंज-सा यह कौन प्राणी सभी दिशाओं तथा आकाशको व्याप्त करके इधर ही चला आ रहा है?॥ ५९—६१½॥

ब्रह्माके इस प्रकार कहनेपर भगवान् विष्णुने उनसे कहा—इस सागरमें चलनेके कारण जिनके दोनों पैरोंके आघातसे आकाशमें महान् वेगसे जलाशय उठ रहे हैं, सभी ओर उठी हुई विशाल जल-बूँदोंसे आप सिक्त हो चुके हैं, जिनकी नासिकासे निकली वायुसे आपके साथ कम्पायमान यह महापद्म—जो मेरी नाभिसे उत्पन्न है, स्वच्छन्दतापूर्वक दोलायमान हो रहा है, वे ही आदि-अन्तरहित पार्वतीनाथ प्रभु शिव आ रहे हैं। अब हम दोनों मिलकर स्तोत्रके द्वारा इन वृषध्वज महादेवकी प्रार्थना करें॥ ६२—६५½॥

तत्पश्चात् कमलकी आभाके समान नेत्रोंवाले भगवान् विष्णुसे ब्रह्माजीने कुपित होकर कहा कि लोकोंके स्वामी तथा सर्वव्यापी स्वयं अपनेको एवं जगत्के कर्ता मुझ सनातन ब्रह्माको आप नहीं जानते। हम दोनोंसे बढ़कर यह शंकर नामवाला कौन है?॥ ६६-६७½॥

उन ब्रह्माका वह क्रोधयुक्त वचन सुनकर भगवान् विष्णु बोले—हे कल्याणकारक! महात्मा शिवके लिये

हेतुरस्याथ जगतः पुराणपुरुषोऽव्ययः।
बीजी खल्वेष बीजानां ज्योतिरेकः प्रकाशते॥ ७०

बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शङ्करः स्वयम्।
प्रधानमव्ययो योनिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः॥ ७१

मम चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः।
यः कः स इति दुःखार्तैर्दृश्यते यतिभिः शिवः॥ ७२

एष बीजी भवान् बीजमहं योनिः सनातनः।
स एवमुक्तो विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमपृच्छत॥ ७३

भवान् योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः।
एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्हसि॥ ७४

ज्ञात्वा च विविधोत्पत्तिं ब्रह्मणो लोकतन्त्रिणः।
इमं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः॥ ७५

अस्मान्महत्तरं भूतं गुह्यमन्यन्न विद्यते।
महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम्॥ ७६

द्विविधं चैवमात्मानं प्रविभज्य व्यवस्थितः।
निष्कलस्तत्र योऽव्यक्तः सकलश्च महेश्वरः॥ ७७

यस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च।
पुरा लिङ्गोद्भवं बीजं प्रथमं त्वादिसर्गिकम्॥ ७८

मम योनौ समायुक्तं तद् बीजं कालपर्ययात्।
हिरण्मयमकूपारे योन्यामण्डमजायत॥ ७९

ऐसा निन्दित वचन मत बोलिये। ये महादेव साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, अत्यन्त प्रचण्ड हैं, महायोग प्रदीप्त करनेवाले तथा वर प्रदान करनेवाले हैं॥ ६८-६९॥

ये शिव ही इस जगत्के कारण हैं। ये प्राचीन पुरुष हैं, समस्त बीजों अर्थात् कारणोंके मूल बीज अर्थात् परम कारण हैं, निर्विकार हैं एवं एकमात्र ज्योतिके रूपमें जगत्को प्रकाशित कर रहे हैं। जिस प्रकार बच्चे खिलौनोंसे खेलते हैं, उसी प्रकार ये महादेव स्वयं जगत्के साथ खेलते रहते हैं अर्थात् नानाविध लीलाएँ रचते रहते हैं॥ ७०½॥

प्रधान, अव्यय, योनि, अव्यक्त, प्रकृति, तम, नित्य आदि ये नाम मुझ प्रसवधर्मीके हैं और जिनके विषयमें आपने पूछा है कि ये कौन हैं, वे शिव जन्म-मरण आदि दुःखोंका भलीभाँति अनुभव करके वैराग्यको प्राप्त यतियोंद्वारा दृष्टिगत किये जाते हैं। ये शिव बीजवान् हैं, आप (ब्रह्मा) बीज हैं तथा सनातनरूप मैं (विष्णु) योनि हूँ॥ ७१-७२½॥

विष्णुके इस प्रकार कहनेपर विश्वात्मा ब्रह्माने उनसे पूछा—आप योनि, मैं बीज तथा महेश्वर शिव बीजी (बीजवान्) किस प्रकार हैं? आप मेरे इस सूक्ष्म तथा अव्यक्त संदेहका निवारण करनेकी कृपा करें॥ ७३-७४॥

अनेक प्रकारसे लोकतन्त्री ब्रह्माकी उत्पत्ति जानकर भगवान् विष्णुने उनके इस परम निगूढ़ प्रश्नका उत्तर दिया। इन महादेवसे बढ़कर अन्य कोई भी गूढ़ तत्त्व नहीं है। महत्तत्त्वका सर्वोत्कृष्ट स्थान अध्यात्मज्ञानियोंका कल्याणमय पद है॥ ७५-७६॥

उन्होंने अपनेको सगुण तथा निर्गुण—इन दो रूपोंमें विभाजित किया। उनमें जो निर्गुण हैं, वे अव्यक्तरूपमें तथा जो सगुण हैं, वे महेश्वररूपमें प्रतिष्ठित हैं॥ ७७॥

प्राचीनकालमें सृष्टिके आदिमें मायाकी विधिको भी जाननेवाले, अगम्य तथा दुर्बोध उन्हीं महादेवके लिङ्गसे प्रादुर्भूत बीज सर्वप्रथम मेरी योनिमें गिरा। पुनः कालान्तरमें उस सागररूप योनिमें वह बीज स्वर्णके

शतानि दशवर्षाणामण्डमप्सु प्रतिष्ठितम्।
अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुना तद् द्विधा कृतम्॥ ८०

कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः।
उल्बं तस्य महोत्सेधो योऽसौ कनकपर्वतः॥ ८१

ततश्च प्रतिसन्ध्यात्मा देवदेवो वरः प्रभुः।
हिरण्यगर्भो भगवांस्त्वभिजज्ञे चतुर्मुखः॥ ८२

आतारार्केन्दुनक्षत्रं शून्यं लोकमवेक्ष्य च।
कोऽहमित्यपि च ध्याते कुमारास्तेऽभवंस्तदा॥ ८३

प्रियदर्शनास्तु यतयो यतीनां पूर्वजास्तव।
भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवात्मजास्तव॥ ८४

भुवनानलसङ्काशाः पद्मपत्रायतेक्षणाः।
श्रीमान् सनत्कुमारश्च ऋभुश्चैवोर्ध्वरेतसौ॥ ८५

सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनन्दनः।
उत्पन्नाः समकालं ते बुद्ध्यातीन्द्रियदर्शनाः॥ ८६

उत्पन्नाः प्रतिभात्मानो जगतां स्थितिहेतवः।
नारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिताः॥ ८७

अल्पसौख्यं बहुक्लेशं जराशोकसमन्वितम्।
जीवनं मरणं चैव सम्भवश्च पुनः पुनः॥ ८८

अल्पभूतं सुखं स्वर्गे दुःखानि नरके तथा।
विदित्वा चागमं सर्वमवश्यं भवितव्यताम्॥ ८९

ऋभुं सनत्कुमारं च दृष्ट्वा तव वशे स्थितौ।
त्रयस्तु त्रीन् गुणान् हित्वा चात्मजाः सनकादयः॥ ९०

वैवर्तेन तु ज्ञानेन प्रवृत्तास्ते महौजसः।
ततस्तेषु प्रवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु॥ ९१

भविष्यसि विमूढस्त्वं मायया शङ्करस्य तु।
एवं कल्पे तु वै वृत्ते संज्ञा नश्यति तेऽनघ॥ ९२

कल्पे शेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च।
सर्वेषां ह्यैश्वरी माया जागृतिः समुदाहृता॥ ९३

अण्डमें परिवर्तित हो गया॥ ७८-७९॥

एक हजार वर्षोंतक वह अण्ड जलमें ही स्थित रहा; इस अवधिके अन्तमें वायुके द्वारा यह दो भागोंमें विभक्त हो गया। एक खण्डसे आकाश तथा दूसरे खण्डसे पृथ्वीका प्रादुर्भाव हुआ। यह अति उन्नत जो स्वर्णपर्वत मेरु है, वह उस अण्डके गर्भावरणसे निर्मित हुआ॥ ८०-८१॥

तत्पश्चात् प्रतिसन्ध्यात्मा देवाधिदेव हिरण्यगर्भ चतुर्मुख महाप्रभु भगवान् ब्रह्मा आविर्भूत हुए॥ ८२॥

तारा, सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्रपर्यन्त समस्त लोकोंको शून्य देखकर 'मैं कौन हूँ'—ऐसा आपके विचार करनेपर पुनः एक हजार वर्षके अनन्तर यतियोंके पूर्वज, यत्नशील, प्रिय दर्शनवाले, समस्त भुवनोंको अपने तेजसे व्याप्त करनेवाले, कमलपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाले श्रीमान् सनत्कुमार, ऋभु, सनक, सनातन तथा सनन्दन नामक वे कुमार आपके पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए, जिनमें सनत्कुमार तथा ऋभु ऊर्ध्वरेता थे। बुद्धि तथा इन्द्रियोंसे अगोचर, विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न, जगत्की स्थितिके कारणरूप तथा तीन प्रकारके तापोंसे रहित वे कुमार एक साथ उत्पन्न हुए थे, जिनकी कर्ममार्गमें प्रवृत्ति नहीं थी॥ ८३—८७॥

जीवनमें सुख कम तथा दुःख अधिक है, जीवन जरा तथा शोकसे युक्त है, जीवनमें जन्म तथा मरण बार-बार होते रहते हैं, स्वर्गमें अत्यल्प सुख तथा नरकमें दुःख-ही-दुःख है और भावी अटल है—ये सब बातें अवश्यम्भावी हैं, ऐसा जानकर ऋभु तथा सनत्कुमारको आपके वशमें स्थित देखकर त्रिगुणातीत सनक-सनातन-सनन्दन—ये आपके तीनों महातेजस्वी पुत्र अध्यात्मसम्बन्धी ब्रह्मज्ञानकी ओर प्रवृत्त हो गये॥ ८८—९०½॥

तत्पश्चात् उन सनक आदि तीनों कुमारोंके ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त हो जानेपर आप महादेवकी मायासे विमूढ़ (मोहित) हो गये। हे अनघ! इस प्रकार कल्पके प्रवृत्त होनेपर आपका ज्ञान नष्ट हो जाया करता है॥ ९१-९२॥

कल्पमें जो सूक्ष्म जीव तथा पार्थिव पदार्थ अवशिष्ट रह जाते हैं। उन सबको जाग्रत् करनेवाली

यथैष पर्वतो मेरुर्देवलोको ह्युदाहृतः।
तस्य चेदं हि माहात्म्यं विद्धि देववरस्य ह॥ ९४

शक्ति ही ऐश्वरी माया कही गयी है॥ ९३॥

जिस प्रकार यह मेरुपर्वत देवलोकके रूपमें प्रसिद्ध है, उसी प्रकार उन देवश्रेष्ठ महादेवके इस माहात्म्यको भी प्रसिद्ध समझिये॥ ९४॥

ज्ञात्वा चेश्वरसद्भावं ज्ञात्वा मामम्बुजेक्षणम्।
महादेवं महाभूतं भूतानां वरदं प्रभुम्॥ ९५

प्रणवेनाथ साम्ना तु नमस्कृत्य जगद्गुरुम्।
त्वां च मां चैव सङ्क्रुद्धो निःश्वासान्निर्दहेदयम्॥ ९६

परमेश्वर महादेवका सद्भाव जानकर तथा मुझ कमलनयनको जानकर प्रणवयुक्त साममन्त्रोंके द्वारा भूतोंके भी महाभूत वरदाता जगद्गुरु प्रभु महादेवको नमस्कार करके उठिये, अन्यथा ये क्रोधित होकर अपने निःश्वाससे मुझे तथा आपको दग्ध कर डालेंगे॥ ९५-९६॥

एवं ज्ञात्वा महायोगमभ्युत्तिष्ठन्महाबलम्।
अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोष्याम्यनलसप्रभम्॥ ९७

इस प्रकार उनके महान् योग तथा अमित बलको जानकर आपको आगे करके अग्निसदृश प्रभावाले महादेवके निकट खड़ा होकर मैं उनकी स्तुति करूँगा॥ ९७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मप्रबोधनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ब्रह्मप्रबोधन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा तथा विष्णुद्वारा की गयी भगवान् महेश्वरकी स्तुति एवं उसका माहात्म्य

सूत उवाच

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः।
अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्तमानैस्तथैव च॥ १
नामभिश्छान्दसैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयेत्।

सूतजी बोले—तदनन्तर ब्रह्माको आगे करके वे गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु अतीत, भविष्य तथा वर्तमान कल्पोंसे सम्बन्धित महादेवजीके वेदप्रतिपादित नामोंसे इस स्तोत्रका वाचन करने लगे॥ १½॥

विष्णुरुवाच

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतानन्ततेजसे॥ २
नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः।
सुमेंद्रायार्च्यमेंद्राय दण्डिने रूक्षरेतसे॥ ३

विष्णुजी बोले—हे सुव्रत! आप अनन्त तेजसम्पन्न भगवान्‌को नमस्कार है। क्षेत्राधिपति, बीजी तथा त्रिशूलधारीको नमस्कार है। सुमेंद्र (सुन्दर लिङ्गवाले), अर्च्यमेंद्र (पूजनीय लिङ्गवाले), दण्डी तथा रूक्षरेता (रूक्ष वीर्यवाले)-को नमस्कार है॥ २-३॥

नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय पूर्वाय प्रथमाय च।
नमो मान्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः॥ ४
गह्वराय घटेशाय व्योमचीराम्बराय च।
नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवे नमः॥ ५

ज्येष्ठको, श्रेष्ठको, पूर्वको तथा प्रथमको नमस्कार है। मान्यको, पूज्यको तथा सद्योजातको नमस्कार है। गह्वर (अगम्य)-को, घटेश (चेष्टमान जीवोंके स्वामी)-को तथा आकाश एवं वृक्षकी छालको अम्बर (वस्त्र)-के रूपमें धारण करनेवाले तथा हम-जैसे प्राणियोंके स्वामीको नमस्कार है॥ ४-५॥

वेदानां प्रभवे चैव स्मृतीनां प्रभवे नमः।
प्रभवे कर्मदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः॥ ६

वेदोंके स्वामी तथा स्मृतियोंके स्वामीको नमस्कार है। कर्मों तथा दान आदिके स्वामी और द्रव्योंके

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः।
नमो ध्रुवनिबद्धानामृषीणां प्रभवे नमः॥ ७

ऋक्षाणां प्रभवे तुभ्यं ग्रहाणां प्रभवे नमः।
वैद्युताशनिमेघानां गर्जितप्रभवे नमः॥ ८

महोदधीनां प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः।
अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः॥ ९

नमो नदीनां प्रभवे नदानां प्रभवे नमः।
महौषधीनां प्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः॥ १०

धर्मवृक्षाय धर्माय स्थितीनां प्रभवे नमः।
प्रभवे च परार्धस्य परस्य प्रभवे नमः॥ ११

नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः।
क्षणानां प्रभवे चैव लवानां प्रभवे नमः॥ १२

अहोरात्रार्धमासानां मासानां प्रभवे नमः।
ऋतूनां प्रभवे तुभ्यं संख्यायाः प्रभवे नमः॥ १३

प्रभवे चापरार्धस्य परार्धप्रभवे नमः।
नमः पुराणप्रभवे सर्गाणां प्रभवे नमः॥ १४

मन्वन्तराणां प्रभवे योगस्य प्रभवे नमः।
चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे॥ १५

कल्पोदयनिबन्धानां वार्तानां प्रभवे नमः।
नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्माधिपतये नमः॥ १६

विद्यानां प्रभवे चैव विद्याधिपतये नमः।
नमो व्रताधिपतये व्रतानां प्रभवे नमः॥ १७

मन्त्राणां प्रभवे तुभ्यं मन्त्राधिपतये नमः।
पितॄणां पतये चैव पशूनां पतये नमः॥ १८

स्वामीको नमस्कार है॥ ६॥

योगके प्रभुको नमस्कार है और सांख्यके प्रभुको नमस्कार है। ध्रुवसे सम्बन्धित ऋषियों अर्थात् सप्तर्षियोंके प्रभुको नमस्कार है॥ ७॥

नक्षत्रोंके स्वामीको नमस्कार है, ग्रहोंके स्वामीको नमस्कार है, आपको नमस्कार है। विद्युताग्निसे युक्त मेघोंकी गर्जनाके स्वामीको नमस्कार है॥ ८॥

महासागरोंके स्वामी तथा द्वीपोंके स्वामीको नमस्कार है। पर्वतों तथा भारत आदि नौ वर्षोंके स्वामीको नमस्कार है। नदियों तथा नदोंके स्वामीको नमस्कार है। महौषधियों तथा वृक्षोंके स्वामीको नमस्कार है॥ ९-१०॥

अनेकविध धर्मोंके कारणरूप धर्मवृक्षको नमस्कार है, धर्मको नमस्कार है तथा स्थितियोंके स्वामीको नमस्कार है। परार्धके स्वामी तथा परके स्वामीको नमस्कार है॥ ११॥

सभी रसोंके स्वामी तथा रत्नोंके स्वामीको नमस्कार है। क्षणोंके स्वामी तथा लवों (क्षणांश)-के स्वामीको नमस्कार है। दिन, रात, अर्धमास (पक्ष) तथा मासोंके स्वामीको नमस्कार है। ऋतुओंके स्वामी तथा संख्याओंके स्वामी आप शिवको नमस्कार है॥ १२-१३॥

अपरार्ध तथा परार्धके स्वामीको नमस्कार है। पुराणोंके स्वामीको नमस्कार है। सर्गोंके स्वामीको नमस्कार है। मन्वन्तरोंके स्वामी तथा योगके स्वामीको नमस्कार है। (जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्जरूप) चार प्रकारकी सृष्टिके स्वामीको नमस्कार है। अनन्त ज्योतिको नमस्कार है॥ १४-१५॥

कल्पके उदयमें प्रणीत धर्मशास्त्रों तथा वार्ताओं (कृषि एवं वाणिज्यशास्त्रों)-के स्वामीको नमस्कार है। विश्वके स्वामीको नमस्कार है। ब्रह्माधिपतिको नमस्कार है। विद्याओंके स्वामी तथा विद्याधिपतिको नमस्कार है। व्रतोंके स्वामीको नमस्कार है। व्रताधिपतिको नमस्कार है॥ १६-१७॥

मन्त्रोंके स्वामी तथा मन्त्रोंके अधिपति आपको नमस्कार है। पितरोंके पति तथा पशुओंके पतिको

वाग्वृषाय नमस्तुभ्यं पुराणवृषभाय च।
नमः पशूनां पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च॥ १९

प्रजापतीनां पतये सिद्धीनां पतये नमः।
दैत्यदानवसङ्घानां रक्षसां पतये नमः॥ २०

गन्धर्वाणां च पतये यक्षाणां पतये नमः।
गरुडोरगसर्पाणां पक्षिणां पतये नमः॥ २१

सर्वगुह्यपिशाचानां गुह्याधिपतये नमः।
गोकर्णाय च गोप्त्रे च शङ्कुकर्णाय वै नमः॥ २२

वराहायाप्रमेयाय ऋक्षाय विरजाय च।
नमो सुराणां पतये गणानां पतये नमः॥ २३

अम्भसां पतये चैव ओजसां पतये नमः।
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये श्रीपाय क्षितिपाय च॥ २४

बलाबलसमूहाय अक्षोभ्यक्षोभणाय च।
दीप्तशृङ्गैकशृङ्गाय वृषभाय ककुद्मिने॥ २५

नमः स्थैर्याय वपुषे तेजसानुव्रताय च।
अतीताय भविष्याय वर्तमानाय वै नमः॥ २६

सुवर्चसे च वीर्याय शूराय ह्यजिताय च।
वरदाय वरेण्याय पुरुषाय महात्मने॥ २७

नमो भूताय भव्याय महते प्रभवाय च।
जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च॥ २८

अणवे महते चैव नमः सर्वगताय च।
नमो बन्धाय मोक्षाय स्वर्गाय नरकाय च॥ २९

नमो भवाय देवाय इज्याय याजकाय च।
प्रत्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वायातिगुणाय च॥ ३०

नमः पाशाय शस्त्राय नमस्त्वाभरणाय च।
हुताय उपहूताय प्रहुतप्राशिताय च॥ ३१

नमस्कार है। श्रेष्ठ वाणीवाले तथा पुराणश्रेष्ठ आप शिवको नमस्कार है। पशुओंके पति तथा गोवृषेन्द्रध्वजको नमस्कार है॥ १८-१९॥

प्रजाओंके पति तथा सिद्धियोंके पतिको नमस्कार है। दैत्य, दानव तथा राक्षससमूहोंके पतिको नमस्कार है। गन्धर्वों तथा यक्षोंके पतिको नमस्कार है। गरुड़, उरग, सर्प तथा पक्षियोंके पतिको नमस्कार है॥ २०-२१॥

सभी गुप्त पिशाचोंके गुह्याधिपतिको नमस्कार है। गोकर्ण, गोप्ता तथा शंकुकर्णको नमस्कार है। वाराहको, अप्रमेयको, ऋक्षको तथा विरजको नमस्कार है। देवताओंके पति तथा गणोंके पतिको नमस्कार है॥ २२-२३॥

जलोंके पति तथा ओजोंके पतिको नमस्कार है। लक्ष्मीपति, लक्ष्मीके रक्षक तथा पृथ्वीके पालन-कर्ताको नमस्कार है। शक्तिमान् तथा शक्तिहीन प्राणियोंके समुच्चयरूप शिवको नमस्कार है। अक्षोभ्यक्षोभणको नमस्कार है। दीप्तशृंग, एकशृंग, वृषभ तथा ककुद्मीको नमस्कार है॥ २४-२५॥

स्थैर्य, तेजोमयवपु तथा अनुव्रतको नमस्कार है। अतीत, भविष्य तथा वर्तमानरूप शिवको नमस्कार है। सुवर्चा, वीर्य, शूर, अजित, वरद, वरेण्य, पुरुष तथा महात्माको नमस्कार है॥ २६-२७॥

भूत, भव्य, महत् तथा प्रभवको नमस्कार है। जन, तप तथा वरदको नमस्कार है; आपको नमस्कार है। अणु (परम सूक्ष्म), महत् (महा-आकारसम्पन्न) तथा सर्वगत (सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले)-को नमस्कार है। बन्ध (जन्म-मरण-बन्धन), मोक्ष, स्वर्ग तथा नरकरूपको नमस्कार है॥ २८-२९॥

भव, देव, इज्य (देवताओंके आचार्य) तथा याजक (यज्ञ करानेवाले)-को नमस्कार है। प्रत्युदीर्ण (महान्), दीप्त (आलोकयुक्त), तत्त्व तथा अतिगुण (गुणातीत)-को नमस्कार है। पाश, शस्त्र तथा आभरणको नमस्कार है। हुत (हविद्रव्यरूप), उपहूत (यज्ञ आदिमें आवाहन किये जानेवाले), प्रहुतप्राशित (भक्तिपूर्वक दी गयी आहुतिको भोज्यरूपमें ग्रहण करनेवाले) शिवको नमस्कार है॥ ३०-३१॥

नमोऽस्त्विष्टाय पूर्ताय अग्निष्टोमद्विजाय च।
सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृथाय च॥ ३२

अहिंसायाप्रलोभाय पशुमन्त्रौषधाय च।
नमः पुष्टिप्रदानाय सुशीलाय सुशीलिने॥ ३३

इष्ट (यज्ञकर्म आदि), पूर्त (कूप-तड़ागादि-निर्माण), अग्निष्टोमद्विजरूप शिवको नमस्कार है। सदस्यरूप, दक्षिणारूप तथा अवभृथ (यज्ञकी समाप्तिके अनन्तर शुद्धिके लिये किये जानेवाले स्नान)-रूप शिवको नमस्कार है। अहिंसा-अप्रलोभ-पशुमन्त्रौषधरूप, पुष्टिप्रदायक, सुशील तथा सदाचारीको नमस्कार है॥ ३२-३३॥

अतीताय भविष्याय वर्तमानाय ते नमः।
सुवर्चसे च वीर्याय शूराय ह्यजिताय च॥ ३४

वरदाय वरेण्याय पुरुषाय महात्मने।
नमो भूताय भव्याय महते चाभयाय च॥ ३५

अतीत, भविष्य तथा वर्तमानकालरूप अर्थात् सर्वकालव्यापी शिवको नमस्कार है। सुवर्चा (महान् शक्तिमान्), वीर्य, शूर, अजित, वरद, वरेण्य, पुरुष, महात्मा, भूत, भव्य, महत् तथा अभयरूप शिवको नमस्कार है॥ ३४-३५॥

जरासिद्ध नमस्तुभ्यमयसे वरदाय च।
अधरे महते चैव नमः सस्तुपताय च॥ ३६

जरासिद्ध (नित्य तरुणरूप), सुवर्णरूप तथा वरदानी शिव आपको नमस्कार है। अधोरूप, महान्‌रूप तथा निद्रितोंके पतिको नमस्कार है॥ ३६॥

नमश्चेन्द्रियपत्राणां लेलिहानाय स्त्रग्विणे।
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतः शिरसे नमः॥ ३७

सर्वतः पाणिपादाय रुद्रायाप्रतिमाय च।
नमो हव्याय कव्याय हव्यवाहाय वै नमः॥ ३८

इन्द्रियरूप वाहनवाले, आस्वादनरूप, हार धारण करनेवाले, विश्व, विश्वरूप तथा सभी ओरसे सिरवाले शिवको नमस्कार है। सभी दिशाओंमें हाथों तथा पैरोंवाले, अप्रतिम, हव्य, कव्य तथा हव्यवाहरूप रुद्रको नमस्कार है॥ ३७-३८॥

नमः सिद्धाय मेध्याय इष्टायेज्यापराय च।
सुवीराय सुघोराय अक्षोभ्यक्षोभणाय च॥ ३९

सुप्रजाय सुमेधाय दीप्ताय भास्कराय च।
नमो बुद्धाय शुद्धाय विस्तृताय मताय च॥ ४०

सिद्ध, पवित्रात्मा, यज्ञरूप, यज्ञपरायण, सुवीर, सुघोर, अक्षोभ्यका भी क्षोभण करनेवाले, सुन्दर प्रजाओंवाले, तीव्र मेधावाले, दीप्त, भास्कर, बुद्ध, शुद्ध, प्रतिष्ठित तथा विस्तृत शिवको नमस्कार है॥ ३९-४०॥

नमः स्थूलाय सूक्ष्माय दृश्यादृश्याय सर्वशः।
वर्षते ज्वलते चैव वायवे शिशिराय च॥ ४१

नमस्ते वक्रकेशाय ऊरुवक्षःशिखाय च।
नमो नमः सुवर्णाय तपनीयनिभाय च॥ ४२

स्थूल, सूक्ष्म, दृश्य, अदृश्य, वृष्टि, ताप, वायु तथा शिशिर (ठंड)-रूप शिवको नमस्कार है। वक्रकेश (टेढ़े बालोंवाले) तथा उन्नत ऊरुप्रदेश एवं वक्षःस्थलवाले शिवको नमस्कार है। सुन्दर वर्णवाले तथा तप्त स्वर्णके तुल्य आभावाले शिवको बार-बार नमस्कार है॥ ४१-४२॥

विरूपाक्षाय लिङ्गाय पिङ्गलाय महौजसे।
वृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणाय च॥ ४३

विरूपाक्ष, लिङ्गरूप, पिंगल, महान् ओजसे सम्पन्न, वृष्टिका अवरोध करनेवाले तथा सौम्य दृष्टिवाले शिवको नमस्कार है, नमस्कार है॥ ४३॥

नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च।
पिशिताय पिशङ्गाय पीताय च निषङ्गिणे॥ ४४

धूम्र, श्वेत, कृष्ण, लोहित, पिशित, पिशंग तथा पीतरूप धनुर्धर शिवको नमस्कार है। विशेषतायुक्त तथा

नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नमः।
नम ईज्याय पूज्याय उपजीव्याय वै नमः॥ ४५

नमः क्षेम्याय वृद्धाय वत्सलाय नमो नमः।
नमो भूताय सत्याय सत्यासत्याय वै नमः॥ ४६

नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे।
नमो गौराय श्यामाय कद्रवे लोहिताय च॥ ४७

महासन्ध्याभ्रवर्णाय चारुदीप्ताय दीक्षिणे।
नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय कपर्दिने॥ ४८

अप्रमाणाय सर्वाय अव्ययायामराय च।
नमो रूपाय गन्धाय शाश्वतायाक्षताय च॥ ४९

पुरस्ताद् बृंहते चैव विभ्रान्ताय कृताय च।
दुर्गमाय महेशाय क्रोधाय कपिलाय च॥ ५०

तर्क्यातर्क्यशरीराय बलिने रंहसाय च।
सिकत्याय प्रवाह्याय स्थिताय प्रसृताय च॥ ५१

सुमेधसे कुलालाय नमस्ते शशिखण्डिने।
चित्राय चित्रवेषाय चित्रवर्णाय मेधसे॥ ५२

चेकितानाय तुष्टाय नमस्ते निहिताय च।
नमः क्षान्ताय दान्ताय वज्रसंहननाय च॥ ५३

रक्षोघ्नाय विषघ्नाय शितिकण्ठोर्ध्वमन्यवे।
लेलिहाय कृतान्ताय तिग्मायुधधराय च॥ ५४

प्रमोदाय सम्मोदाय यतिवेद्याय ते नमः।
अनामयाय सर्वाय महाकालाय वै नमः॥ ५५

प्रणवप्रणवेशाय भगनेत्रान्तकाय च।
मृगव्याधाय दक्षाय दक्षयज्ञान्तकाय च॥ ५६

सर्वभूतात्मभूताय सर्वेशातिशयाय च।
पुरघ्नाय सुशस्त्राय धन्विनेऽथ परश्वधे॥ ५७

विशेषतारहित शिवको नमस्कार है। ईज्य, पूज्य तथा उपजीव्यको नमस्कार है॥ ४४-४५॥

क्षेम्य, वृद्ध, वत्सलको बार-बार नमस्कार है। भूत, सत्य तथा सत्य-असत्यरूप शिवको नमस्कार है। पद्मवर्ण, मृत्युके विनाशक तथा मृत्युरूप शिवको नमस्कार है। गौर, श्याम, कद्रू (भूरावर्ण) तथा लोहितवर्ण शिवको नमस्कार है॥ ४६-४७॥

महासन्ध्याकालीन बादलोंके समान वर्णवाले, सुन्दर दीप्तिवाले, दीक्षा प्रदान करनेवाले, हाथमें कमल धारण करनेवाले, दिग्वास (दिशाओंमें वास करनेवाले अथवा दिगम्बर) तथा जटाजूटधारी शिवको नमस्कार है। अप्रमाणरूप (इयत्तारहित), समग्ररूप, अव्यय, मरणरहित, रूप, गन्ध, नित्य तथा अविनाशी शिवको नमस्कार है॥ ४८-४९॥

उपस्थित होकर पालन-पोषण करनेवाले, अस्थिर, कर्मरूप, दुर्गम, महेश, क्रोधरूप, कपिल, तर्क-अतर्कसे परे विग्रहवाले, बलवान्, वेगरूप, बालुकामें विराजमान, प्रवाहरूप, स्थित, व्यापक, उत्तम मेधासम्पन्न, पृथिवीका लालन-पालन करनेवाले, चन्द्रकला धारण करनेवाले, चित्ररूप, विचित्र वेष धारण करनेवाले, विचित्र वर्णवाले तथा यज्ञरूप शिव आपको नमस्कार है॥ ५०—५२॥

चेकितान (विशिष्ट ज्ञानवाले), संतोषरूप तथा निहित (अत्यन्त हितकारक) आपको नमस्कार है। क्षमाशील, इन्द्रियजित् तथा वज्रके समान आघात करनेवाले शिवको नमस्कार है॥ ५३॥

राक्षसोंका विनाश करनेवाले, विषका शमन करनेवाले, शुभ्र ग्रीवावाले, क्रुद्ध प्रतीत होते हुए भी सौम्य रूपवाले, सर्परूप, यमराजस्वरूप, तीक्ष्ण शस्त्र धारण करनेवाले, आनन्दस्वरूप, मोदसदृश, संन्यासियोंके द्वारा ज्ञेय आप शिवको नमस्कार है। रोगविकारसे रहित, सर्वरूप महाकालको नमस्कार है॥ ५४-५५॥

ओंकार, ओंकारेश्वर, भग नामक देवताके नेत्रका नाश करनेवाले, मृगव्याधरूप, दक्षरूप, दक्षप्रजापतिके यज्ञका विध्वंस करनेवाले, सभी प्राणियोंके आत्मस्वरूप, सर्वेश्वर, अतिशयस्वरूप, त्रिपुरके संहर्ता, सुन्दर शस्त्र

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Ayinash Shashi 1985 Linga Mahapurana Section 5_1_Back

पूषदन्तविनाशाय भगनेत्रान्तकाय च।
कामदाय वरिष्ठाय कामाङ्गदहनाय च॥ ५८

रङ्गे करालवक्त्राय नागेन्द्रवदनाय च।
दैत्यानामन्तकेशाय दैत्याक्रन्दकराय च॥ ५९

हिमघ्नाय च तीक्ष्णाय आर्द्रचर्मधराय च।
श्मशानरतिनित्याय नमोऽस्तूल्मुकधारिणे॥ ६०

नमस्ते प्राणपालाय मुण्डमालाधराय च।
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय च॥ ६१

नरनारीशरीराय देव्याः प्रियकराय च।
जटिने मुण्डिने चैव व्यालयज्ञोपवीतिने॥ ६२

नमोऽस्तु नृत्यशीलाय उपनृत्यप्रियाय च।
मन्यवे गीतशीलाय मुनिभिर्गायते नमः॥ ६३

कटङ्कटाय तिग्माय अप्रियाय प्रियाय च।
विभीषणाय भीष्माय भगप्रमथनाय च॥ ६४

सिद्धसङ्घानुगीताय महाभागाय वै नमः।
नमो मुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटिताय च॥ ६५

नर्दते कूर्दते चैव नमः प्रमुदितात्मने।
नमो मृडाय श्वसते धावतेऽधिष्ठिते नमः॥ ६६

ध्यायते जृम्भते चैव रुदते द्रवते नमः।
वल्गते क्रीडते चैव लम्बोदरशरीरिणे॥ ६७

नमोऽकृत्याय कृत्याय मुण्डाय विकटाय च।
नम उन्मत्तदेहाय किङ्किणीकाय वै नमः॥ ६८

नमो विकृतवेषाय क्रूरायामर्षणाय च।
अप्रमेयाय गोप्त्रे च दीप्तायानिर्गुणाय च॥ ६९

धारण करनेवाले, धनुर्धर, कुठार धारण करनेवाले, दक्षके यज्ञमें पूषानामक देवताका दाँत तोड़नेवाले तथा भग नामक देवताको नेत्रविहीन करनेवाले, मनोरथ पूर्ण करनेवाले, वरिष्ठ, कामदेवका शरीर दग्ध करनेवाले, रणभूमिमें विकराल वक्त्रवाले, गजाननरूप, दैत्योंके संहारक हम ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंके भी स्वामी, दैत्योंको क्रन्दित करनेवाले, शीतका निवारण करनेवाले, तीक्ष्ण रूपवाले, मृदुचर्म धारण करनेवाले, नित्य श्मशानसे अनुराग रखनेवाले तथा हाथमें प्रज्वलित काष्ठ धारण करनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है॥ ५६—६०॥

प्रिय भक्तोंका पालन करनेवाले, मुण्डकी माला धारण करनेवाले, शोकरहित, अनेकविध भूतोंसे घिरे रहनेवाले शिवको नमस्कार है। नर-नारीका विग्रह धारण करनेवाले (अर्धनारीश्वर), देवी पार्वतीका सदा प्रिय करनेवाले, जटाधारी, मुण्डी, सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, नृत्यमें अभिरुचि रखनेवाले, नृत्यशालाके प्रति प्रीति रखनेवाले, क्रोधरूप, गीतप्रिय तथा मुनियोंके द्वारा स्तुत्य शिवको नमस्कार है॥ ६१—६३॥

हाथीका मस्तक काटनेवाले अर्थात् सिंहरूप, तीक्ष्ण, अप्रिय, प्रिय, अति भयानक, प्रचण्ड, भगका प्रमथन करनेवाले, सिद्धसमुदायद्वारा नित्य अनुगीत महाभागको नमस्कार है। मुक्तरूपसे अट्टहास करनेवाले, क्रोधावस्थामें सिंहगर्जना करके प्रकम्पित शरीरवाले शिवको नमस्कार है॥ ६४-६५॥

तीव्र नाद करनेवाले, कूदने-फाँदनेवाले तथा प्रमुदित आत्मावाले शिवको नमस्कार है। श्वास लेनेवाले, दौड़नेवाले, अधिष्ठाता तथा आनन्दरूप शिवको नमस्कार है। ध्यान करनेवाले, जम्भाई लेनेवाले, रुदन करनेवाले तथा द्रवित होनेवाले शिवको नमस्कार है। छलाँग लगानेवाले, क्रीड़ा करनेवाले तथा लम्बे उदरयुक्त शरीरवाले शिवको नमस्कार है॥ ६६-६७॥

विधि-निषेधरूप (कृत्य-अकृत्य), मुण्ड, विकटरूप शिवको नमस्कार है। उन्मत्त देहवाले तथा किंकिणीसे शोभायमान शरीरवाले शिवको नमस्कार है। विकृत वेष धारण करनेवाले, क्रूर, कोपाविष्ट, अप्रमेय,

वामप्रियाय वामाय चूडामणिधराय च।
नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रमिताय च॥ ७०

नमो गुण्याय गुह्याय अगम्यगमनाय च।
लोकधात्री त्वियं भूमिः पादौ सज्जनसेवितौ॥ ७१

सर्वेषां सिद्धियोगानामधिष्ठानं तवोदरम्।
मध्येऽन्तरिक्षं विस्तीर्णं तारागणविभूषितम्॥ ७२

स्वातेः पथ इवाभाति श्रीमान् हारस्तवोरसि।
दिशो दशभुजास्तुभ्यं केयूराङ्गदभूषिताः॥ ७३

विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलाञ्जनचयोपमः।
कण्ठस्ते शोभते श्रीमान् हेमसूत्रविभूषितः॥ ७४

दंष्ट्रा करालं दुर्धर्षमनौपम्यं मुखं तथा।
पद्ममालाकृतोष्णीषं शिरो द्यौः शोभतेऽधिकम्॥ ७५

दीप्तिः सूर्ये वपुश्चन्द्रे स्थैर्यं शैलेऽनिले बलम्।
औष्ण्यमग्नौ तथा शैत्यमप्सु शब्दोऽम्बरे तथा॥ ७६

अक्षरान्तरनिष्पन्दाद् गुणानेतान् विदुर्बुधाः।
जपो जप्यो महादेवो महायोगो महेश्वरः॥ ७७

पुरेशयो गुहावासी खेचरो रजनीचरः।
तपोनिधिर्गुहगुरुर्नन्दनो नन्दवर्धनः॥ ७८

हयशीर्षा पयोधाता विधाता भूतभावनः।
बोद्धव्यो बोधिता नेता दुर्धर्षो दुष्प्रकम्पनः॥ ७९

बृहद्रथो भीमकर्मा बृहत्कीर्तिर्धनञ्जयः।
घण्टाप्रियो ध्वजी छत्री पिनाकी ध्वजिनीपतिः॥ ८०

रक्षा करनेवाले, दीप्त तथा सगुणरूप शिवको नमस्कार है॥ ६८-६९॥

वामभागमें अपनी प्रिया गौरीसे विभूषित, सुन्दर, चूड़ामणि धारण करनेवाले, बालरूप विग्रहवाले तथा अप्रमेय गुणोंसे सम्पन्न शिवको नमस्कार है॥ ७०॥

सद्गुणोंसे युक्त, निगूढ़ तथा अगम्य गतिवाले शिवको नमस्कार है। सदाचारीजनोंद्वारा सेवित आपके दोनों चरण लोकधात्री इस पृथ्वीके तुल्य हैं। सभी सिद्धियों तथा योगोंका अधिष्ठानस्वरूप मध्यस्थित आपका उदर तारासमूहोंसे विभूषित विस्तृत अन्तरिक्षके समान है। आपके वक्षःस्थलपर शोभायमान श्रीयुक्त हार तारापुंजोंके मार्गकी भाँति प्रतीत होता है। केयूर तथा अंगदसे विभूषित आपके दस हाथ दसों दिशाओंके तुल्य हैं॥ ७१—७३॥

नीले अंजनके समूहके तुल्य विस्तृत परिधिवाला आपका श्रीयुक्त कण्ठ स्वर्णसूत्रसे सुशोभित है। विकराल दाँतोंवाला आपका मुख अत्यन्त भयावह तथा अनुपमेय है। पद्ममाला तथा पगड़ीसे शोभायमान आपका सिर आकाशकी भाँति अत्यधिक शोभाको प्राप्त हो रहा है॥ ७४-७५॥

सूर्यमें प्रकाश, चन्द्रमामें कान्ति, पर्वतमें स्थिरता, वायुमें शक्ति, अग्निमें उष्णता, जलमें शीतलता तथा आकाशमें शब्दरूप विद्यमान—ये गुण अविनाशी शिवके निष्पन्द अर्थात् अल्पांशसे उत्पन्न हुए हैं—ऐसा मनीषी लोग मानते हैं। जप, जप्य, महादेव, महायोग, महेश्वर, पुरेशय, गुहावासी (गुफामें निवास करनेवाले), खेचर (आकाशमें विचरणशील), रजनीचर (रात्रिमें भ्रमण करनेवाले), तपोनिधि, कार्तिकेयके गुरु, आनन्दरूप, आनन्दकी वृद्धि करनेवाले, हयशीर्ष (घोड़ेके सिरवाले विष्णुरूप), पयोधाता (जल धारण करनेवाले इन्द्ररूप), विधाता (ब्रह्मारूप), भूतभावन, बोद्धव्य (बोध करनेयोग्य), बोधिता (बोध करानेवाले), नेता, दुर्धर्ष (अपराजेय), दुष्प्रकम्पन, बृहद्रथ (विशाल रथवाले), भीमकर्मा (भयंकर कर्मवाले), बृहत्कीर्ति (महान् यशवाले), धनंजय, घण्टाप्रिय, ध्वजी (ध्वज धारण

कवची पट्टिशी खड्गी धनुर्हस्तः परश्वधी।
अघस्मरोऽनघः शूरो देवराजोऽरिमर्दनः॥ ८१

त्वां प्रसाद्य पुरास्माभिर्द्विषन्तो निहता युधि।
अग्निः सदार्णवाम्भस्त्वं पिबन्नपि न तृप्यसे॥ ८२

क्रोधाकारः प्रसन्नात्मा कामदः कामगः प्रियः।
ब्रह्मचारी चागाधश्च ब्रह्मण्यः शिष्टपूजितः॥ ८३

देवानामक्षयः कोशस्त्वया यज्ञः प्रकल्पितः।
हव्यं तवेदं वहति वेदोक्तं हव्यवाहनः।
प्रीते त्वयि महादेव वयं प्रीता भवामहे॥ ८४

भवानीशोऽनादिमांस्त्वं च सर्व-
लोकानां त्वं ब्रह्मकर्तादिसर्गः।
सांख्याः प्रकृतेः परमं त्वां विदित्वा
क्षीणध्यानास्त्वाममृत्युं विशन्ति॥ ८५

योगाच्च त्वां ध्यायिनो नित्यसिद्धं
ज्ञात्वा योगान् सन्त्यजन्ते पुनस्तान्।
ये चाप्यन्ये त्वां प्रसन्ना विशुद्धाः
स्वकर्मभिस्ते दिव्यभोगा भवन्ति॥ ८६

अप्रसङ्ख्येयतत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः।
कीर्तितं तव माहात्म्यमपारस्य महात्मनः॥ ८७

शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते।

सूत उवाच

य इदं कीर्तयेद्भक्त्या ब्रह्मनारायणस्तवम्॥ ८८

करनेवाले), छत्री (छत्र धारण करनेवाले), पिनाकी (धनुर्धर), ध्वजिनीपति (सेनापति), कवची (कवच धारण करनेवाले), पट्टिशी (एक प्रकारका तीक्ष्ण लौह-दण्डरूप शस्त्र धारण करनेवाले), खड्गी (तलवार धारण करनेवाले), धनुर्हस्त (हाथमें धनुष धारण करनेवाले), परश्वधी (परशु धारण करनेवाले), अघस्मर (सबके पापकर्मोंको स्मृतिमें रखनेवाले), निष्पाप, पराक्रमी, देवताओंके स्वामी तथा शत्रुओंका संहार करनेवाले सब कुछ आप ही हैं॥ ७६—८१॥

पूर्वकालमें आपको प्रसन्न करके हम देवताओंने अपने शत्रुओंका युद्धमें संहार किया था। अग्निरूप आप सदा महासागरका जल पीते हुए भी कभी तृप्त नहीं होते हैं॥ ८२॥

आप क्रोधमय भावाकृतिवाले, प्रसन्न आत्मावाले, मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले, अपनी इच्छासे विचरण करनेवाले, प्रिय, ब्रह्मचारी, दुस्तर, ब्रह्मण्य, शिष्टजनोंद्वारा पूजित तथा देवताओंकी अक्षय निधि हैं। आपने ही यज्ञोंका विधान किया है। अग्निदेव आपके ही वेदोक्त हव्यका वहन करते हैं। हे महादेव! आपके प्रसन्न होनेपर हम देवतालोग प्रसन्न हो जाते हैं॥ ८३-८४॥

आप भवानीके ईश हैं तथा आदिसे रहित हैं। सभी लोकोंके ब्रह्मरूप कर्ता आप ही हैं। आप ही आदि सृष्टि हैं। क्षीण ध्यानवाले सांख्यशास्त्री आपको प्रकृतिसे परे जानकर अमृत्युरूप आपको ही प्राप्त होते हैं॥ ८५॥

ध्यानपरायण योगी अपने योगबलसे नित्य-सिद्ध आपको जानकर पुनः उन योगोंका परित्याग कर देते हैं। और भी अन्य जो प्रसन्नचित्त तथा विशुद्ध मनवाले लोग हैं, वे अपने उत्तम कर्मोंके द्वारा आपको जानकर दिव्य भोगोंकी प्राप्ति करते हैं॥ ८६॥

गणनातीत तत्त्वोंवाले तथा सीमारहित आप महात्माका जैसा माहात्म्य हम जानते हैं, वैसा अपनी सामर्थ्यके अनुसार हमने कह दिया। आप हमारे लिये सर्वत्र कल्याणकारी हों। आप जो कुछ भी हैं, आपको नमस्कार है॥ ८७$^{१}/_{२}$॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] जो प्राणी एकाग्र

श्रावयेद्वा द्विजान् विद्वान् शृणुयाद्वा समाहितः।
अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं तदवाप्नुयात्॥ ८९

होकर भक्तिपूर्वक ब्रह्मा तथा विष्णुके द्वारा की गयी इस शिवस्तुतिको कहता है, सुनता है अथवा द्विजों तथा विद्वानोंको सुनाता है; वह दस हजार अश्वमेध यज्ञ करके जो फल मिलता है, उस फलको प्राप्त कर लेता है॥ ८८-८९॥

पापाचारोऽपि यो मर्त्यः शृणुयाच्छिवसन्निधौ।
जपेद्वापि विनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति॥ ९०

घोर पापकर्म करनेवाला जो कोई भी प्राणी शिवके समीप इस स्तुतिका पाठ करता है अथवा इसे सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकको जाता है॥ ९०॥

श्राद्धे वा दैविके कार्ये यज्ञे वावभृथान्तिके।
कीर्तयेद्वा सतां मध्ये स याति ब्रह्मणोऽन्तिकम्॥ ९१

जो सज्जनोंके बीचमें, श्राद्धकर्ममें, देवकर्ममें, यज्ञधर्मादि अनुष्ठानोंके बाद किये जानेवाले स्नानके अनन्तर इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है॥ ९१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मविष्णुस्तुतिर्नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ब्रह्मविष्णुस्तुति' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

महादेवजीद्वारा विष्णु और ब्रह्माको वरदान, सृष्टिके लिये ब्रह्माजीद्वारा तप करना तथा सर्पों एवं रुद्रोंकी सृष्टि

सूत उवाच

अत्यन्तावनतौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षणः।
प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवत्सत्यकीर्तनात्॥ १

उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशनः।
पिनाकी खण्डपरशुः सुप्रीतस्तु त्रिलोचनः॥ २

ततः स भगवान् देवः श्रुत्वा वागमृतं तयोः।
जानन्नपि महादेवः क्रीडापूर्वमथाब्रवीत्॥ ३

कौ भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ।
समेतावम्बुजाभाक्षावस्मिन् घोरे महाप्लवे॥ ४

तावूचतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम्।
भगवन् किं तु यत्तेऽद्य न विज्ञातं त्वया विभो॥ ५

विभो रुद्र महामाय इच्छया वां कृतौ त्वया।
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा अभिनन्द्याभिमान्य च॥ ६

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] उन ब्रह्मा तथा विष्णुको अत्यन्त विनीत भावसे सत्य स्तुति करते देखकर सुन्दर, लालिमायुक्त तथा विशाल नेत्रोंवाले उमापति, विरूपाक्ष, दक्षयज्ञके विध्वंसक, पिनाकी, खण्डपरशु धारण करनेवाले, त्रिनेत्र शिवजीका मुख प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो उठा और उनके मनमें उन दोनोंके प्रति अत्यधिक प्रीति उत्पन्न हुई॥ १-२॥

तत्पश्चात् उन दोनोंकी अमृतमयी वाणी सुनकर उन्हें जानते हुए भी भगवान् महादेवने क्रीड़ाके निमित्त उनसे पूछा—हे महात्माद्वय! एक-दूसरेका हित चाहनेवाले, कमलकी आभाके तुल्य नेत्रोंवाले आप दोनों लोग कौन हैं तथा इस घोर महासागरमें क्यों स्थित हैं?॥ ३-४॥

महादेवके ऐसा पूछनेपर एक-दूसरेकी ओर देखकर महात्मा ब्रह्मा तथा विष्णु बोले—हे भगवन्! हे विभो! हे रुद्र! हे महामाय! क्या आज आपको विदित नहीं है कि आपने ही अपनी इच्छासे हम दोनोंको उत्पन्न किया है?॥ ५ १/२॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

उवाच भगवान् देवो मधुरं श्लक्ष्णया गिरा।
भो भो हिरण्यगर्भ त्वां त्वां च कृष्ण ब्रवीम्यहम्॥ ७
प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया।
भवन्तौ हृदयस्यास्य मम हृद्यतरावुभौ॥ ८

युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमीप्सितम्।
अथोवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः॥ ९
सर्वं मम कृतं देव परितुष्टोऽसि मे यदि।
त्वयि मे सुप्रतिष्ठा तु भक्तिर्भवतु शङ्कर॥ १०
एवमुक्तस्तु विज्ञाय सम्भावयत केशवम्।
प्रददौ च महादेवो भक्तिं निजपदाम्बुजे॥ ११
भवान् सर्वस्य लोकस्य कर्ता त्वमधिदैवतम्।
तदेवं स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यम्बुजेक्षण॥ १२
एवमुक्त्वा तु भगवान् ब्रह्माणं चापि शङ्करः।
अनुगृह्यास्पृशद्देवो ब्रह्माणं परमेश्वरः॥ १३
कराभ्यां सुशुभाभ्यां च प्राह हृष्टतरः स्वयम्।
मत्समस्त्वं न सन्देहो वत्स भक्तश्च मे भवान्॥ १४
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि संज्ञा भवतु सुव्रत।
एवमुक्त्वा तु भगवांस्ततोऽन्तर्धानमीश्वरः॥ १५
गतवान् गणपो देवः सर्वदेवनमस्कृतः।
अवाप्य संज्ञां गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः॥ १६
प्रजाः स्रष्टुमनाश्चक्रे तप उग्रं पितामहः।
तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्तत॥ १७
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो ह्यजायत।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः॥ १८

उन दोनोंकी वह बात सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न होकर सम्मानपूर्वक कोमल वाणीमें धीरेसे बोले—हे हिरण्यगर्भ! हे कृष्ण! मैं आप दोनोंको बता रहा हूँ कि मैं आपकी इस शाश्वत तथा दृढ़ भक्तिसे प्रसन्न हूँ॥ ६-७$^{१}/_{२}$॥

आप दोनों लोगोंके प्रति मेरे हृदयमें अपार प्रेम है। मैं आज आपलोगोंको श्रेष्ठ तथा मनोवांछित कौन-सा वर प्रदान करूँ?॥ ८$^{१}/_{२}$॥

तदनन्तर महाभाग विष्णुने रुद्रसे यह वचन कहा—हे देव! मेरा यही सर्व अभीष्ट है कि यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो हे शंकर! मुझे अपने प्रति अचल भक्ति प्रदान कीजिये॥ ९-१०॥

विष्णुके ऐसा कहनेपर महादेवने विष्णुभगवान्को स्नेहपूर्वक अपने चरणकमलोंमें स्थिर भक्ति प्रदान की॥ ११॥

तत्पश्चात् भगवान् शंकरने ब्रह्माजीसे कहा—हे कमलनयन! आप समस्त लोकके कर्ता हैं तथा आप ही अधिष्ठातृ देवता हैं। अतः हे वत्स! आपका कल्याण हो। मैं तो अब प्रस्थान करूँगा। ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहकर भगवान् शंकरने अपने दोनों पवित्र हाथोंसे अनुग्रहपूर्वक ब्रह्माजीका स्पर्श किया। पुनः उन परमेश्वर शंकरने प्रसन्न मनसे ब्रह्मासे स्वयं कहा—आप भी मेरे ही तुल्य हैं; इसमें सन्देह नहीं है। हे वत्स! आप मेरे भक्त हैं। आपका कल्याण हो और आपको यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति हो। हे सुव्रत! अब मैं प्रस्थान कर रहा हूँ॥ १२—१४$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार कहकर समस्त देवताओंके वन्दनीय, गणोंके रक्षक, परमेश्वर भगवान् महादेव अन्तर्धान हो गये॥ १५$^{१}/_{२}$॥

भगवान् गोविन्दसे ज्ञान प्राप्त करके पितामह ब्रह्माने प्रजाओंकी सृष्टिकी कामनासे भीषण तप करना आरम्भ कर दिया॥ १६$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार दीर्घ कालतक तपस्या करते हुए उनका जब कुछ भी सिद्ध नहीं हुआ, तब उन्हें बहुत दुःख हुआ और उस दुःखसे वे बहुत क्रोधित हो उठे। कोपसे

ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः।
महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरप्यलङ्कृताः॥ १९

प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः।
सर्पांस्तानग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दयत्॥ २०

अहो धिक् तपसो मह्यं फलमीदृशकं यदि।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम॥ २१

तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा।
मूर्च्छाभिपरितापेन जहौ प्राणान् प्रजापतिः॥ २२

तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात्कारुण्यपूर्वकम्।
अथैकादश ते रुद्रा रुदन्तोऽभ्यक्रमंस्तथा॥ २३

रोदनात्खलु रुद्रत्वं तेषु वै समजायत।
ये रुद्रास्ते खलु प्राणाः ये प्राणास्ते तदात्मकाः॥ २४

प्राणाः प्राणवतां ज्ञेयाः सर्वभूतेष्ववस्थिताः।
अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुराचरितस्य च॥ २५

प्राणांस्तस्य ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहितः।
लब्ध्वासून् भगवान् ब्रह्मा देवदेवमुमापतिम्॥ २६

प्रणम्य संस्थितोऽपश्यद् गायत्र्या विश्वमीश्वरम्।
सर्वलोकमयं देवं दृष्ट्वा स्तुत्वा पितामहः॥ २७

ततो विस्मयमापन्नः प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः।
उवाच वचनं शर्वं सद्यादित्वं कथं विभो॥ २८

युक्त उन ब्रह्माके दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी बूँदें गिरने लगीं॥ १७-१८॥

तत्पश्चात् उन अश्रुबिन्दुओंसे वात-पित्त-कफयुक्त, महान् सत्त्वसे सम्पन्न, महाभाग्यशाली तथा महाविषधर सर्प उत्पन्न हुए। वे स्वस्तिक चिह्नसे विभूषित थे तथा उनके केश फैले हुए थे॥ १९ १/२॥

उन सर्पोंको पहले उत्पन्न हुआ देखकर ब्रह्माजीको बड़ी आत्मग्लानि हुई। वे अपनी भर्त्सना करते हुए कहने लगे—'अहो, मुझे धिक्कार है। मेरी तपस्याका मुझे यही फल प्राप्त हुआ कि आरम्भमें ही मेरी लोकविनाशक सर्परूप प्रजा उत्पन्न हुई'॥ २०-२१॥

अत्यधिक क्रोध तथा अधीरतासे युक्त होनेके कारण ब्रह्माजीको तीव्र मूर्च्छा उत्पन्न हुई और उस मूर्च्छासे आक्रान्त पितामहने अपने प्राण त्याग दिये॥ २२॥

इसके पश्चात् अप्रतिम वीर्यवाले उन ब्रह्माके देहसे दीनभावसे कारुण्यपूर्वक ग्यारह रुद्र रोते हुए निकले। रुदन करनेके कारण ही उनका नाम रुद्र पड़ा॥ २३ १/२॥

जो रुद्र हैं, वे ही प्राणरूप हैं तथा जो प्राण हैं, वे उन्हीं रुद्रके आत्मारूप हैं। सभी प्राणियोंमें स्थित उन रुद्रोंको ही जीवोंके प्राणरूपमें जानना चाहिये॥ २४ १/२॥

नीललोहित त्रिशूलधारी शिवजीने अत्यन्त उग्र स्वभाववाले, महिमाशाली तथा उत्तम आचरणवाले उन ब्रह्माको पुनः उनके प्राण प्रदान कर दिये॥ २५ १/२॥

तत्पश्चात् प्राण प्राप्तकर भगवान् ब्रह्माने खड़े होकर देवाधिदेव उमापतिको प्रणामकर गायत्रीके ध्यानसे विश्वरूप परमात्मा शिवको वहाँ देखा॥ २६ १/२॥

समस्त लोकोंमें व्याप्त रहनेवाले महादेवको देखकर ब्रह्माजीने उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होंने आश्चर्यचकित होकर शिवजीको बार-बार प्रणामकर उनसे पूछा—हे विभो! 'सद्योजात' आदि रूपमें आपका प्रादुर्भाव क्यों हुआ?॥ २७-२८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे रुद्रोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'रुद्रोत्पत्तिवर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

विभिन्न कल्पोंमें होनेवाले सद्योजातादि शिवावतारोंका वर्णन, विभिन्न लोकोंकी स्थिति तथा महारुद्रका विश्वरूपत्व

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणो भगवान् भवः।
ब्रह्मरूपी प्रबोधार्थं ब्रह्माणं प्राह सस्मितम्॥ १

श्वेतकल्पो यदा ह्यासीदहमेव तदाभवम्।
श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः सितः॥ २

श्वेतास्थिः श्वेतरोमा च श्वेतासृक् श्वेतलोहितः।
तेन नाम्ना च विख्यातः श्वेतकल्पस्तदा ह्यसौ॥ ३

मत्प्रसूता च देवेशी श्वेताङ्गा श्वेतलोहिता।
श्वेतवर्णा तदा ह्यासीद् गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता॥ ४

तस्मादहं च देवेश त्वया गुह्येन वै पुनः।
विज्ञातः स्वेन तपसा सद्योजातत्वमागतः॥ ५

सद्योजातेति ब्रह्मैतद् गुह्यं चैतत्प्रकीर्तितम्।
तस्माद् गुह्यत्वमापन्नं ये वेत्स्यन्ति द्विजातयः॥ ६

मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
यदा चैव पुनस्त्वासील्लोहितो नाम नामतः॥ ७

मत्कृतेन च वर्णेन कल्पो वै लोहितः स्मृतः।
तदा लोहितमांसास्थिलोहितक्षीरसम्भवा॥ ८

लोहिताक्षी स्तनवती गायत्री गौः प्रकीर्तिता।
ततोऽस्या लोहितत्वेन वर्णस्य च विपर्ययात्॥ ९

वामत्वाच्चैव देवस्य वामदेवत्वमागतः।
तत्रापि च महासत्त्व त्वयाहं नियतात्मना॥ १०

विज्ञातः स्वेन योगेन तस्मिन् वर्णान्तरे स्थितः।
ततश्च वामदेवेति ख्यातिं यातोऽस्मि भूतले॥ ११

सूतजी बोले—ब्रह्माजीका वह वचन सुनकर उनके प्रबोधनके लिये ब्रह्मरूप भगवान् शिवने मुसकराकर उनसे कहा—॥ १॥

जब श्वेतकल्प था, उस समय मैं श्वेत वर्णका था। मेरी श्वेत पगड़ी, श्वेत माला, श्वेत वस्त्र, श्वेत अस्थि, श्वेत रोम, श्वेत त्वचा तथा श्वेत ही मेरा रुधिर था। इसी कारणसे वह कल्प 'श्वेतकल्प' नाम से विख्यात हुआ॥ २-३॥

उस कल्पमें मुझसे उत्पन्न ब्रह्म नामसे जानी जानेवाली देवेश्वरी गायत्री भी श्वेत अंगोंवाली, श्वेत रक्तवाली तथा श्वेत वर्णवाली थीं॥ ४॥

तदनन्तर हे देवेश! आपने अपने उग्र तपसे सद्योजातत्वको प्राप्त मुझ शिवको जाना॥ ५॥

मेरा यह सद्योजातरूप गुह्य ब्रह्मके रूपमें जाना जाता है। अतएव गुह्यत्वको प्राप्त मुझ सद्योजात शिवको जो द्विजातिगण जानेंगे, वे मेरे सान्निध्यको प्राप्त होंगे, जहाँसे उनका पुनरागमन नहीं होता अर्थात् वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं॥ ६ १/२॥

पुनः जब मेरा नाम लोहित था, तब मेरे द्वारा धारित लोहित वर्णके कारण वह कल्प लोहितकल्प नामसे कहा गया॥ ७ १/२॥

उस कल्पमें रक्तवर्णके मांस तथा हड्डियोंवाली, रक्त-वर्णका दूध प्रदान करनेवाली, लाल आँखोंवाली तथा लाल स्तनवाली धेनुरूपमें गायत्री अधिष्ठित हुईं॥ ८ १/२॥

तदनन्तर उस धेनुके लोहितत्व, उस कल्पमें वर्णके बदल जाने तथा योगकी वामताके कारण मैं वामदेवत्वको प्राप्त हुआ अर्थात् मेरा नाम वामदेव पड़ गया॥ ९ १/२॥

हे महासत्त्व! उस कल्पमें भी नियत आत्मावाले आपने अपने योगबलसे लोहितवर्ण-स्थित मुझ परमेश्वरको जाना और तभीसे मैं पृथ्वीलोकमें वामदेव नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हो गया॥ १०-११॥

ये चापि वामदेवत्वं ज्ञास्यन्तीह द्विजातयः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ १२

जो भी द्विजातिगण मेरे वामदेवस्वरूपको जानेंगे, वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति प्राप्त करानेवाले मेरे रुद्रलोकमें निवास करेंगे॥ १२॥

यदाहं पुनरेवेह पीतवर्णो युगक्रमात्।
मत्कृतेन च नाम्ना वै पीतकल्पोऽभवत्तदा॥ १३

जब मैं युगक्रमसे पीतवर्णवाला हुआ, तब मेरे वर्णनामपर उस कल्पका नाम पीतकल्प हुआ॥ १३॥

मत्प्रसूता च देवेशी पीताङ्गी पीतलोहिता।
पीतवर्णा तदा ह्यासीद् गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता॥ १४

मेरे द्वारा उत्पन्न तथा ब्रह्म नामसे जानी जानेवाली देवेश्वरी गायत्रीका भी अंग पीला, रक्त पीला तथा वर्ण आदि सब पीला था॥ १४॥

तत्रापि च महासत्त्व योगयुक्तेन चेतसा।
यस्मादहं तैर्विज्ञातो योगतत्परमानसैः॥ १५

तत्र तत्पुरुषत्वेन विज्ञातोऽहं त्वया पुनः।
तस्मात्तत्पुरुषत्वं वै ममैतत्कनकाण्डज॥ १६

हे महासत्त्व! उस कल्पमें भी योगपरायण मनवाले उन द्विजातियोंने योगयुक्त चित्तसे मुझे जाना। हे कनकाण्डज! उस कल्पमें तुमने भी मुझे पुनः तत्पुरुषरूपमें जाना; उसी कारणसे मेरा यह तत्पुरुष नाम हुआ॥ १५-१६॥

ये मां रुद्रं च रुद्राणीं गायत्रीं वेदमातरम्।
वेत्स्यन्ति तपसा युक्ता विमला ब्रह्मसङ्गताः॥ १७

रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।

तपस्यासे युक्त, विशुद्ध मनवाले तथा ब्रह्मपरायण जो लोग मुझ रुद्र तथा वेदमाता रुद्राणी गायत्रीकी आराधना करेंगे, वे पुनर्जन्मसे मुक्ति दिलानेवाले रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ १७$^{१}/_{२}$॥

यदाहं पुनरेवासं कृष्णवर्णो भयानकः॥ १८

पुनः जब मैंने भयानक कृष्णवर्ण धारण किया, तब मेरे वर्णके नामसे वह कल्प कृष्णकल्प कहा गया॥ १८$^{१}/_{२}$॥

मत्कृतेन च वर्णेन सङ्कल्पः कृष्ण उच्यते।
तत्राहं कालसङ्काशः कालो लोकप्रकालकः॥ १९

हे ब्रह्मन्! उस कल्पमें भी तुमने कालसदृश, कालरूप, लोकोंके लिये महाकाल तथा घोर पराक्रमवाले मुझ घोरको जाना॥ १९$^{१}/_{२}$॥

विज्ञातोऽहं त्वया ब्रह्मन् घोरो घोरपराक्रमः।
मत्प्रसूता च गायत्री कृष्णाङ्गी कृष्णलोहिता॥ २०

कृष्णरूपा च देवेश तदासीद् ब्रह्मसंज्ञिता।

हे देवेश! उस कल्पमें मुझसे उत्पन्न ब्रह्मसंज्ञावाली गायत्री भी कृष्ण अंगोंवाली, कृष्ण रक्तवाली तथा कृष्ण रूपवाली थीं॥ २०$^{१}/_{२}$॥

तस्माद् घोरत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्ति भूतले॥ २१

अतएव इस भूतलपर जो लोग घोरत्वको प्राप्त मुझ शिवको जान लेंगे, शाश्वत रूपवाला मैं उनके लिये सौम्य तथा शान्त हो जाऊँगा॥ २१$^{१}/_{२}$॥

तेषामघोरः शान्तश्च भविष्याम्यहमव्ययः।
पुनश्च विश्वरूपत्वं यदा ब्रह्मन् ममाभवत्॥ २२

तदाप्यहं त्वया ज्ञातः परमेण समाधिना।
विश्वरूपा च संवृत्ता गायत्री लोकधारिणी॥ २३

हे ब्रह्मन्! पुनः जब मैं विश्वरूपत्वको प्राप्त हुआ, उस समय भी आपने परम समाधिसे मुझे जाना था। उस समय समस्त लोकोंको धारण करनेवाली गायत्री भी विश्वरूपा अर्थात् अनेक वर्णोंवाली थीं॥ २२-२३॥

तस्मिन् विश्वत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्ति भूतले।
तेषां शिवश्च सौम्यश्च भविष्यामि सदैव हि॥ २४

इस भूतलपर जो लोग विश्वत्वको प्राप्त मुझ परमात्माको जान लेंगे, उनके प्रति मैं सदाके लिये सौम्य तथा शान्त हो जाऊँगा॥ २४॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

यस्माच्च विश्वरूपो वै कल्पोऽयं समुदाहृतः।
विश्वरूपा तथा चेयं सावित्री समुदाहृता॥ २५

सर्वरूपा तथा चेमे संवृत्ता मम पुत्रकाः।
चत्वारस्ते मया ख्याताः पुत्रा वै लोकसम्मताः॥ २६

इसी कारण यह कल्प विश्वरूपकल्प नामसे जाना गया और ये गायत्री विश्वरूपा नामसे कही गयीं। वे सर्वरूपा थीं और ये सद्योजात आदि चार कुमार मेरे पुत्ररूपमें प्रकट हुए, जिनकी लोकमें विशेष प्रसिद्धि हुई॥ २५-२६॥

यस्माच्च सर्ववर्णत्वं प्रजानां च भविष्यति।
सर्वभक्षा च मेध्या च वर्णतश्च भविष्यति॥ २७

ये गायत्री शब्द और अर्थरूपसे मेध्या अर्थात् यज्ञयोग्या होंगी, सर्वभक्षा अर्थात् पातकादिविनाशिका होंगी। गायत्रीके [सावित्रीके] सर्ववर्णा (सर्वशब्दात्मिका) होनेसे ही चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था प्रजामें व्यवस्थित होगी॥ २७॥

मोक्षो धर्मस्तथार्थश्च कामश्चेति चतुष्टयम्।
यस्माद्वेदाश्च वेद्यं च चतुर्धा वै भविष्यति॥ २८

भूतग्रामाश्च चत्वार आश्रमाश्च तथैव च।
धर्मस्य पादाश्चत्वारश्चत्वारो मम पुत्रकाः॥ २९

इसीलिये धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चार प्रकारके ये पुरुषार्थ हैं और वेद भी चार हैं। जीव-समुदायोंके भी जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके रूप हैं तथा आश्रम भी चार हैं। दया, दान, तप, सत्य—ये धर्मके चार पाद हैं एवं मेरे पुत्र भी चार हैं॥ २८-२९॥

तस्माच्चतुर्युगावस्थं जगद्वै सचराचरम्।
चतुर्धावस्थितश्चैव चतुष्पादो भविष्यति॥ ३०

इसीलिये यह चराचर जगत् युगरूप चार अवस्थाओंवाला है और यह चतुष्पादात्मक लोक भी भेदानुसार चार रूपोंमें अवस्थित है॥ ३०॥

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च महस्तथा।
जनस्तपश्च सत्यं च विष्णुलोकस्ततः परम्॥ ३१

भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक—इन सबके परे विष्णुलोक स्थित है॥ ३१॥

अष्टाक्षरस्थितो लोकः स्थाने स्थाने तदक्षरम्।
भूर्भुवः स्वर्महश्चैव पादाश्चत्वार एव च॥ ३२

भूर्लोकः प्रथमः पादो भुवर्लोकस्ततः परम्।
स्वर्लोको वै तृतीयश्च चतुर्थस्तु महस्तथा॥ ३३

अष्टाक्षररूप लोक अपने-अपने स्थानपर अक्षरात्मकरूपमें विद्यमान हैं। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोक ही चार पादके रूपमें अवस्थित हैं। इनमें भूर्लोक पहला पाद है, भुवर्लोक दूसरा पाद है, स्वर्लोक तीसरा तथा महर्लोक चौथा पाद है॥ ३२-३३॥

पञ्चमस्तु जनस्तत्र षष्ठश्च तप उच्यते।
सत्यं तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्भवगामिनाम्॥ ३४

पाँचवाँ जनलोक, छठा तपलोक तथा पुनर्जन्मकी प्राप्ति न करनेवाले लोगोंका सत्यलोक सातवाँ लोक कहा गया है॥ ३४॥

विष्णुलोकः स्मृतं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
स्कान्दमौमं तथा स्थानं सर्वसिद्धिसमन्वितम्॥ ३५

विष्णुलोक वह पद है, जहाँ पहुँचकर जीवका पुनः आगमन नहीं होता है। उससे भी आगे स्कन्दलोक तथा उससे भी परे पार्वतीलोक है, जो सर्वविध सिद्धियोंसे युक्त माना गया है॥ ३५॥

रुद्रलोकः स्मृतस्तस्मात्पदं तद्योगिनां शुभम्।
निर्ममा निरहङ्काराः कामक्रोधविवर्जिताः॥ ३६

रुद्रलोक उससे परे विद्यमान है। वह पद योगियोंके लिये अत्यन्त शुभकर कहा गया है। ममतारहित, अहंकार-

द्रक्ष्यन्ति तद् द्विजा युक्ता ध्यानतत्परमानसाः।
यस्माच्चतुष्पदा ह्येषा त्वया दृष्टा सरस्वती॥ ३७

पादान्तं विष्णुलोकं वै कौमारं शान्तमुत्तमम्।
औमं माहेश्वरं चैव तस्माद् दृष्टा चतुष्पदा॥ ३८

शून्य, काम-क्रोधसे विवर्जित तथा ध्यानपरायण चित्तवाले योगीजन ही उस लोकका दर्शन करेंगे॥ ३६ १/२ ॥

और जो आपने चार पादोंवाली इस गायत्री (सरस्वती)-को देखा है, उसीके चार चरणोंके रूपमें चरम पदवाला विष्णुलोक, शान्त तथा उत्तम स्कन्दलोक, पार्वतीलोक एवं रुद्रलोक अवस्थित हैं। ऐसी माहात्म्ययुक्त सरस्वतीका आपने दर्शन किया है॥ ३७-३८ ॥

तस्मात्तु पशवः सर्वे भविष्यन्ति चतुष्पदाः।
ततश्चैषां भविष्यन्ति चत्वारस्ते पयोधराः॥ ३९

सोमश्च मन्त्रसंयुक्तो यस्मान्मम मुखाच्च्युतः।
जीवः प्राणभृतां ब्रह्मन् पुनः पीतस्तनाः स्मृताः॥ ४०

इससे सभी पशु भी चार पैरोंवाले होंगे और इसीसे इनके चार स्तन भी होंगे। हे ब्रह्मन्! मेरे मुखसे गिरा हुआ मन्त्रयुक्त सोमरूप अमृत प्राणधारियोंका जीवन बनकर उनके स्तनमें निवास करेगा। इसलिये वे स्तन 'पीतस्तन' कहे जायँगे॥ ३९-४० ॥

तस्मात्सोममयं चैव अमृतं जीवसंज्ञितम्।
चतुष्पादा भविष्यन्ति श्वेतत्वं चास्य तेन तत्॥ ४१

उसीके कारण सोममय अमृत जीवनसंज्ञावाला होगा और उनके दुग्धका श्वेतत्व उसी सोमरूपत्वके कारण होगा—ऐसे गुणोंवाले वे चतुष्पाद होंगे॥ ४१ ॥

यस्माच्चैव क्रिया भूत्वा द्विपदा च महेश्वरी।
दृष्टा पुनस्तथैवैषा सावित्री लोकभाविनी॥ ४२

आपके द्वारा देखी गयी यह लोकभाविनी सावित्री महेश्वरी पुनः दो पादोंवाली होकर क्रियारूप धारण करेगी; जिससे सभी शुभ नर-नारी दो पादों तथा दो स्तनोंवाले होंगे॥ ४२ १/२ ॥

तस्माच्च द्विपदाः सर्वे द्विस्तनाश्च नराः शुभाः।
तस्माच्चेयमजा भूत्वा सर्ववर्णा महेश्वरी॥ ४३

या वै दृष्टा महासत्त्वा सर्वभूतधरा त्वया।
तस्माच्च विश्वरूपत्वं प्रजानां वै भविष्यति॥ ४४

सभी प्राणियोंको धारण करनेवाली तथा महान् शक्तिसे सम्पन्न जिस देवीका आपने दर्शन किया है; वह महेश्वरी अजा होकर जब सर्ववर्णमय विश्वरूप धारण करेगी, तब उसीसे सभी प्रजाएँ भी अनेक वर्णोंवाली होंगी॥ ४३-४४ ॥

अजश्चैव महातेजा विश्वरूपो भविष्यति।
अमोघरेताः सर्वत्र मुखे चास्य हुताशनः॥ ४५

तस्मात्सर्वगतो मेध्यः पशुरूपी हुताशनः।
तपसा भावितात्मानो ये मां द्रक्ष्यन्ति वै द्विजाः॥ ४६

ईशित्वे च वशित्वे च सर्वगं सर्वतः स्थितम्।
रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्त्यक्त्वा मानुष्यकं वपुः॥ ४७

मत्समीपमुपेष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
इत्येवमुक्तो भगवान् ब्रह्मा रुद्रेण वै द्विजाः॥ ४८

तब महातेज तथा अमोघ वीर्यवाले अज विश्वरूप धारण करेंगे और इनके मुखमें सर्वत्र अग्नि विराजमान होगी; उसी कारण सर्वव्यापी पशुरूपी अग्नि पवित्र मानी जायगी॥ ४५ १/२ ॥

विशुद्ध आत्मावाले जो द्विजगण अपनी तपस्यासे ईशित्व (ईश्वरत्व) तथा वशित्व (योगसिद्धि)-में सभी जगह मुझे भी सर्वव्यापी रूपमें विराजमान देखेंगे; वे रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित होकर मानवशरीरका त्याग करके मेरा सान्निध्य प्राप्त करेंगे और उनका पुनर्जन्म नहीं होगा॥ ४६-४७ १/२ ॥

सूतजी कहते हैं कि हे द्विजो! शिवजीके इस

प्रणम्य प्रयतो भूत्वा पुनराह पितामहः।
य एवं भगवान् विद्वान् गायत्र्या वै महेश्वरम्॥ ४९

विश्वात्मानं हि सर्वं त्वां गायत्र्यास्तव चेश्वर।
तस्य देहि परं स्थानं तथास्त्विति च सोऽब्रवीत्॥ ५०

तस्माद्विद्वान् हि विश्वत्वमस्याश्चास्य महात्मनः।
स याति ब्रह्मसायुज्यं वचनाद् ब्रह्मणः प्रभोः॥ ५१

प्रकार कहनेपर भगवान् ब्रह्माने प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक रुद्रसे पुनः कहा—हे भगवन्! जो विद्वान् सर्वव्यापी विश्वात्मा आप महेश्वरको गायत्रीसहित सर्वत्र स्थित देखे तथा हे ईश्वर! आपकी एवं गायत्रीकी आराधना करे, उसे आप परमपद दें। इसपर उन शिवजीने कहा—वैसा ही होगा॥ ४८—५०॥

इसलिये प्रभु शिवद्वारा ब्रह्माजीके प्रति कहे गये वचनके अनुसार जो विद्वान् गायत्री तथा महात्मा रुद्रका विश्वरूपत्व जान लेता है, वह ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होता है अर्थात् ब्रह्मके साथ उसका तादात्म्य स्थापित हो जाता है॥ ५१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे 'विविधकल्पवर्णनं' नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'विविधकल्पवर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

श्वेतवाराहकल्पके अट्ठाईस द्वापरोंके अन्तमें प्रकट होनेवाले अट्ठाईस व्यासों, अट्ठाईस शिवावतारों तथा विविध शिवयोगियोंका वर्णन

सूत उवाच

श्रुत्वैवमखिलं ब्रह्मा रुद्रेण परिभाषितम्।
पुनः प्रणम्य देवेशं रुद्रमाह प्रजापतिः॥ १

भगवन् देवदेवेश विश्वरूप महेश्वर।
उमाधव महादेव नमो लोकाभिवन्दित॥ २

विश्वरूप महाभाग कस्मिन् काले महेश्वर।
या इमास्ते महादेव तनवो लोकवन्दिताः॥ ३

कस्यां वा युगसम्भूत्यां द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः।
केन वा तपसा देव ध्यानयोगेन केन वा॥ ४

नमस्ते वै महादेव शक्यो द्रष्टुं द्विजातिभिः।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शर्वः सम्प्रेक्ष्य तं पुरः॥ ५

स्मयन् प्राह महादेवो ऋग्यजुःसामसम्भवः।

श्रीभगवानुवाच

तपसा नैव वृत्तेन दानधर्मफलेन च॥ ६

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] शिवके द्वारा कथित सम्पूर्ण वचनोंको सुनकर प्रजापति ब्रह्माने उन देवाधिदेव शिवको प्रणाम करके पुनः उनसे कहा—॥ १॥

हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे विश्वरूप! हे महेश्वर! हे उमापते! हे महादेव! हे लोकवन्द्य! आपको नमस्कार है॥ २॥

हे विश्वरूप! हे महाभाग! हे महेश्वर! हे महादेव! आपके ये जो लोकवन्द्य अवतार हैं, वे किस कालमें तथा किस युगमें द्विजातियोंके द्वारा इस लोकमें देखे जा सकेंगे?॥ ३½॥

हे देव! हे महादेव! आपको नमस्कार है। द्विजातिगण किस तप या ध्यानयोगके द्वारा आपका दर्शन कर पानेमें समर्थ हो सकते हैं?॥ ४½॥

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदसे प्रादुर्भूत महादेव रुद्र अपने सम्मुख-स्थित उन पितामहको देखकर मुसकराते हुए उनसे बोले॥ ५½॥

भगवान् शिव बोले—मानव मुझे न तो केवल

न तीर्थफलयोगेन क्रतुभिर्वाप्तदक्षिणैः।
न वेदाध्ययनैर्वापि न वित्तेन न वेदनैः॥ ७
न शक्यं मानवैर्द्रष्टुमृते ध्यानादहं त्विह।
सप्तमे चैव वाराहे ततस्तस्मिन् पितामह॥ ८
कल्पेश्वरोऽथ भगवान् सर्वलोकप्रकाशनः।
मनुर्वैवस्वतश्चैव तव पौत्रो भविष्यति॥ ९
तदा चतुर्युगावस्थे तस्मिन् कल्पे युगान्तिके।
अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च॥ १०
उत्पत्स्यामि तदा ब्रह्मन् पुनरस्मिन् युगान्तिके।
युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिंश्च प्रथमे युगे॥ ११
द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन् यदा व्यासः स्वयं प्रभुः।
तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन् युगान्तिके॥ १२
भविष्यामि शिखायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः।
हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे॥ १३
तत्र शिष्याः शिखायुक्ता भविष्यन्ति तदा मम।
श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः॥ १४
चत्वारस्तु महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
ततस्ते ब्रह्मभूयिष्ठा दृष्ट्वा ब्रह्मगतिं पराम्॥ १५
मत्समीपं गमिष्यन्ति ध्यानयोगपरायणाः।
ततः पुनर्यदा ब्रह्मन् द्वितीये द्वापरे प्रभुः॥ १६
प्रजापतिर्यदा व्यासः सद्यो नाम भविष्यति।
तदा लोकहितार्थाय सुतारो नाम नामतः॥ १७
भविष्यामि कलौ तस्मिन् शिष्यानुग्रहकाम्यया।
तत्रापि मम ते शिष्या नामतः परिकीर्तिताः॥ १८
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तदा।
प्राप्य योगं तथा ध्यानं स्थाप्य ब्रह्म च भूतले॥ १९
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति सहचारित्वमेव च।
तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः॥ २०
तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु युगान्तिके।
तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः॥ २१

तपसे, न आचारसे, न दानसे, न धर्मफलसे, न तीर्थाटनसे, न योगसे, न पुष्कल दक्षिणावाले यज्ञोंसे, न वेदोंके अध्ययनसे, न धनसे तथा न तो शास्त्रोंके परिशीलनमात्रसे ही देख सकनेमें समर्थ हैं, मेरा दर्शन ध्यानरहित साधनाके द्वारा नहीं किया जा सकता है॥ ६-७½॥

हे पितामह! वाराहकल्पके सातवें मन्वन्तरमें सभी लोकोंको प्रकाशित करनेवाला और कल्पका स्वामी मेरा अवताररूप वैवस्वत मनु आपके पौत्रके रूपमें अवतरित होगा॥ ८-९॥

उसी कल्पके द्वापरयुगके अन्तमें लोकोंपर अनुग्रह तथा ब्राह्मणोंके हितके लिये मैं अवतार ग्रहण करूँगा। पुनः हे ब्रह्मन्! युगप्रवृत्तिके अनुसार इसी प्रथम द्वापरयुगके अन्तमें जब स्वयं प्रभु व्यास होंगे, उस समय ब्राह्मणोंके हितार्थ मेरा अवतार होगा। इसके अनन्तर उसी युगकी समाप्तिपर कलिमें मैं शिखाधारी 'श्वेत' नामक महामुनिके रूपमें अवतीर्ण होऊँगा और पर्वतोंमें उत्तम हिमालयके छागल नामवाले शिखरपर निवास करूँगा॥ १०—१३॥

वहाँपर उस समय श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य तथा श्वेतलोहित नामक शिखायुक्त मेरे चार शिष्य प्रकट होंगे। ये चारों महात्मा, ब्रह्मनिष्ठ और वेदोंके पारगामी विद्वान् होंगे। तदनन्तर ध्यानयोगमें पूर्ण तत्पर वे ब्रह्मभूयिष्ठ शिष्य ब्रह्मकी परम गतिको जानकर मेरा सान्निध्य प्राप्त करेंगे॥ १४-१५½॥

हे ब्रह्मन्! इसके बाद द्वितीय द्वापरके अन्तमें पुनः जब 'सद्य' नामक प्रजापतिरूप प्रभु व्यास होंगे, उसके अनन्तर कलिमें अपने शिष्योंके अनुग्रहकी कामनासे तथा लोकके कल्याणार्थ मैं सुतार नामसे अवतार ग्रहण करूँगा॥ १६-१७½॥

वहाँ भी दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक तथा केतुमान् नामसे प्रसिद्ध मेरे शिष्य प्रकट होंगे। वे योग तथा ध्यानको पूर्णतः प्राप्त होकर भूतलपर ब्रह्मज्ञान स्थापित करके शिवलोकको प्राप्त होंगे और सदा मेरे सान्निध्यमें रहेंगे॥ १८-१९½॥

पुनः तीसरे द्वापरके अन्तमें जब 'भार्गव' नामक व्यास होंगे, तब मैं दमन नामसे अवतीर्ण होऊँगा और

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

विकोशश्च विकेशश्च विपाशः शापनाशनः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन महौजसः॥ २२
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिराः स्मृतः॥ २३
तदाप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः।
तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारोऽपि तपोधनाः॥ २४
द्विजश्रेष्ठा भविष्यन्ति योगात्मानो दृढव्रताः।
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दरो दुरतिक्रमः॥ २५
प्राप्य योगगतिं सूक्ष्मां विमला दग्धकिल्बिषाः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण योगयुक्ता महौजसः॥ २६
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा॥ २७
तदा चापि भविष्यामि कङ्को नाम महातपाः।
अनुग्रहार्थं लोकानां योगात्मैककलागतिः॥ २८
चत्वारस्तु महाभागा विमलाः शुद्धयोनयः।
शिष्या मम भविष्यन्ति योगात्मानो दृढव्रताः॥ २९
सनकः सनन्दनश्चैव प्रभुर्यश्च सनातनः।
विभुः सनत्कुमारश्च निर्ममा निरहङ्कृताः॥ ३०
मत्समीपमुपेष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा विभुः॥ ३१
तदाप्यहं भविष्यामि लोगाक्षिर्नाम नामतः।
तत्रापि मम ते शिष्या योगात्मानो दृढव्रताः॥ ३२
भविष्यन्ति महाभागाश्चत्वारो लोकसम्मताः।
सुधामा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च॥ ३३
योगात्मानो महात्मानः सर्वे वै दग्धकिल्बिषाः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगसमन्विताः॥ ३४
मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
सप्तमे परिवर्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः॥ ३५
विभुनामा महातेजाः प्रथितः पूर्वजन्मनि।
तदाप्यहं भविष्यामि कलौ तस्मिन् युगान्तिके॥ ३६

उस समय भी विकोश, विकेश, विपाश तथा शापनाशन नामवाले मेरे चार शिष्य होंगे। उसी पूर्वोक्त ध्यान-योगके द्वारा वे महान् ओजस्वी शिष्य भी शिव-लोकको प्राप्त होंगे, जहाँसे जीवका पुनः आगमन नहीं होता है॥ २०—२२$^{१}/_{२}$॥

चौथे द्वापरके अन्तमें जब 'अंगिरा' नामक व्यास होंगे, तब मैं भी सुहोत्र नामसे अवतीर्ण होऊँगा और उस समय भी मेरे चार पुत्र प्रकट होंगे। सुमुख, दुर्मुख, दुर्दर तथा दुरतिक्रम नामवाले मेरे वे सभी पुत्र तपस्वी, द्विजश्रेष्ठ, योगात्मा एवं दृढ़ व्रतवाले होंगे॥ २३—२५॥

विशुद्ध मन तथा नष्टपापवाले, योगयुक्त और महान् ओजस्वी वे पुत्र भी उसी मार्गसे योगकी सूक्ष्म गतिको प्राप्त होकर रुद्रलोकको जायँगे, जहाँसे जीवका पुनर्जन्म नहीं होता है॥ २६$^{१}/_{२}$॥

पाँचवें द्वापरके अन्तमें जब 'सविता' नामक व्यास होंगे; उस समय भी लोकोंके अनुग्रहार्थ योगात्मा, एककलागतिवाला तथा महान् तपोव्रती मैं 'कंक' नामसे अवतार ग्रहण करूँगा॥ २७-२८॥

उस समय सनक, सनन्दन, प्रभु सनातन तथा विभु सनत्कुमार नामक मेरे चार शिष्य प्रकट होंगे। महाभाग्यशाली, विशुद्ध चित्तवाले, शुद्धयोनि, योगात्मा, दृढ़व्रती, ममतारहित तथा अहंकारशून्य वे शिष्य पुनर्जन्मसे मुक्ति प्राप्त करानेवाले मेरे सान्निध्यको प्राप्त होंगे॥ २९-३०$^{१}/_{२}$॥

पुनः छठे द्वापरके अन्तमें जब 'मृत्यु' नामक महान् ऐश्वर्यशाली व्यासका अवतार होगा, तब मैं लोगाक्षि नामसे आविर्भूत होऊँगा। उस समय भी सुधामा, विरजा, शंखपाद तथा रज नामक मेरे चार शिष्य होंगे। वे योगात्मा, दृढ़ व्रतवाले, महाभाग्यवान् एवं लोकविश्रुत होंगे॥ ३१—३३॥

योगात्मा, महान् आत्मावाले तथा ध्यानयोगसे सम्पन्न वे सभी शिष्य उसी मार्गका आश्रय लेकर मेरे समीप पहुँचेंगे, जहाँसे पुनर्जन्म नहीं होता है॥ ३४$^{१}/_{२}$॥

पूर्वजन्ममें विभु नामसे प्रख्यात महातेजस्वी शतक्रतु नामक व्यास जब सातवें द्वापरके अन्तमें होंगे, उस समय भी मैं उस द्वापरकी समाप्तिपर कलिमें सभी

जैगीषव्यो विभुः ख्यातः सर्वेषां योगिनां वरः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति युगे तथा॥ ३७
सारस्वतश्च मेघश्च मेघवाहः सुवाहनः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगपरायणाः॥ ३८
गमिष्यन्ति महात्मानो रुद्रलोकं निरामयम्।
वसिष्ठश्चाष्टमे व्यासः परिवर्ते भविष्यति॥ ३९
यदा तदा भविष्यामि नाम्नाहं दधिवाहनः।
तत्रापि मम ते पुत्रा योगात्मानो दृढव्रताः॥ ४०
भविष्यन्ति महायोगा येषां नास्ति समो भुवि।
कपिलश्चासुरिश्चैव तथा पञ्चशिखो मुनिः॥ ४१
बाष्कलश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं ज्ञानिनो दग्धकिल्बिषाः॥ ४२
मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
परिवर्ते तु नवमे व्यासः सारस्वतो यदा॥ ४३
तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नाम नामतः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः॥ ४४
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवाङ्गिरसौ तदा।
भविष्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः॥ ४५
ध्यानमार्गं समासाद्य गमिष्यन्ति तथैव ते।
सर्वे तपोबलोत्कृष्टाः शापानुग्रहकोविदाः॥ ४६
तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन तपस्विनः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ ४७
दशमे द्वापरे व्यासः त्रिपाद्वै नाम नामतः।
यदा भविष्यते विप्रस्तदाहं भविता मुनिः॥ ४८
हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुङ्गे नगोत्तमे।
नाम्ना भृगोस्तु शिखरं प्रथितं देवपूजितम्॥ ४९
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति दृढव्रताः।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः॥ ५०
योगात्मानो महात्मानस्तपोयोगसमन्विताः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति तपसा दग्धकिल्बिषाः॥ ५१
एकादशे द्वापरे तु व्यासस्तु त्रिव्रतो यदा।
तदाप्यहं भविष्यामि गङ्गाद्वारे कलौ तथा॥ ५२

योगियोंमें श्रेष्ठ विभु जैगीषव्य नामसे प्रसिद्ध होऊँगा। उस युगमें भी सारस्वत, मेघ, मेघवाह तथा सुवाहन नामक मेरे चार पुत्र होंगे। ध्यानयोगमें परायण वे महात्मा उसी योगमार्गपर चलकर निर्विकार शिवलोकको प्राप्त होंगे॥ ३५—३८ १/२॥

पुनः आठवें द्वापरके अन्तमें जब 'वसिष्ठ' नामक व्यास होंगे, तब दधिवाहन नामसे मैं अवतरित होऊँगा। उस समय भी कपिल, आसुरि, पंचशिखमुनि तथा महायोगी बाष्कल—ये मेरे परम योगात्मा एवं दृढ़व्रती चार पुत्र होंगे, जिनके सदृश महान् योगी भूतलपर कोई नहीं होगा। वे धर्मात्मा तथा महान् ओजस्वी पुत्र भी माहेश्वर योगमें सिद्ध होकर ज्ञानसम्पन्न और पापमुक्त हो मेरे सान्निध्यको प्राप्त होंगे, जहाँसे जीवका पुनः आगमन (जन्म) नहीं होता है॥ ३९—४२ १/२॥

नौवें द्वापरके अन्तमें जब 'सारस्वत' नामके व्यास होंगे, तब मैं भी ऋषभनामसे अवतीर्ण होऊँगा। उस समय भी पराशर, गर्ग, भार्गव तथा अंगिरा नामवाले मेरे चार पुत्र होंगे, जो महान् ओजस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, वेदोंके पारगामी विद्वान् एवं महान् आत्मावाले होंगे। वे भी उसी प्रकार ध्यानमार्गको प्राप्त होकर इस लोकसे प्रस्थान करेंगे। तपोबलमें उत्कृष्ट, शाप-अनुग्रहके पूर्ण विद्वान् एवं तपोव्रती वे सभी पुत्र भी पूर्वोक्त उसी योगमार्गका आश्रय लेकर रुद्रलोकको प्राप्त होंगे, जहाँसे पुनः आगमन नहीं होता है॥ ४३—४७॥

दसवें द्वापरके अन्तमें जब त्रिपाद् नामक विप्ररूप व्यास होंगे, तब मैं भृगुमुनिके रूपमें पर्वतोंमें उत्तम हिमालयके रमणीक भृगुतुंग नामक श्रेष्ठ पर्वत-शिखरपर अवतीर्ण होऊँगा। वह शिखर मेरे ही नामपर 'भृगुतुंग' नामसे प्रसिद्ध होगा तथा देवताओंद्वारा पूजित होगा॥ ४८-४९॥

उस समय भी बलबन्धु, निरामित्र, केतुशृंग तथा तपोधन—ये मेरे चार पुत्र होंगे, जो दृढ़व्रती, योगात्मा, महात्मा एवं तपोयोगसे युक्त होंगे। वे अपनी तपस्यासे पापोंको दग्ध करके रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ ५०-५१॥

ग्यारहवें द्वापरके अन्तमें जब 'त्रिव्रत' नामक व्यास होंगे, उस समय भी मैं कलिमें गंगाद्वारक्षेत्रमें

उग्रो नाम महातेजाः सर्वलोकेषु विश्रुतः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः॥ ५३
लम्बोदरश्च लम्बाक्षो लम्बकेशः प्रलम्बकः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते॥ ५४
द्वादशे परिवर्ते तु शततेजा यदा मुनिः।
भविष्यति महातेजा व्यासस्तु कविसत्तमः॥ ५५
तदाप्यहं भविष्यामि कलाविह युगान्तिके।
हैतुकं वनमासाद्य अत्रिर्नाम्ना परिश्रुतः॥ ५६
तत्रापि मम ते पुत्रा भस्मस्नानानुलेपनाः।
भविष्यन्ति महायोगा रुद्रलोकपरायणाः॥ ५७
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सर्वस्तथैव च।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते॥ ५८
त्रयोदशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु।
धर्मो नारायणो नाम व्यासस्तु भविता यदा॥ ५९
तदाप्यहं भविष्यामि बालिर्नाम महामुनिः।
बालखिल्याश्रमे पुण्ये पर्वते गन्धमादने॥ ६०
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः।
सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजास्तथा॥ ६१
महायोगबलोपेता विमला ऊर्ध्वरेतसः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते॥ ६२
यदा व्यासस्तरक्षुस्तु पर्याये तु चतुर्दशे।
तत्रापि पुनरेवाहं भविष्यामि युगान्तिके॥ ६३
वंशे त्वङ्गिरसां श्रेष्ठे गौतमो नाम नामतः।
भविष्यति महापुण्यं गौतमं नाम तद्वनम्॥ ६४
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ तदा।
अत्रिर्देवसदश्चैव श्रवणोऽथ श्रविष्ठकः॥ ६५
योगात्मानो महात्मानः सर्वे योगसमन्विताः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः॥ ६६
ततः पञ्चदशे प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते।
त्रैय्यारुणिर्यदा व्यासो द्वापरे समपद्यत॥ ६७
तदाप्यहं भविष्यामि नाम्ना वेदशिरा द्विजः।
तत्र वेदशिरो नाम अस्त्रं तत्पारमेश्वरम्॥ ६८

अवतीर्ण होऊँगा तथा महातेजस्वी मैं उग्र नामसे सभी लोकोंमें विख्यात होऊँगा। उस समय भी लम्बोदर, लम्बाक्ष, लम्बकेश एवं प्रलम्बक नामवाले मेरे चार महातेजस्वी पुत्र होंगे। वे माहेश्वरयोगको प्राप्त होकर रुद्रलोक जायँगे॥ ५२—५४॥

बारहवें द्वापरयुगके अन्तमें जब मुनि 'शततेजा' नामक महातेजस्वी तथा कविश्रेष्ठ व्यास होंगे, उस समय भी युगान्तमें इस लोकमें कलिमें मैं हैतुकवनमें अवतीर्ण होऊँगा और 'अत्रि' नामसे विख्यात होऊँगा॥ ५५-५६॥

उस समय भी सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य तथा सर्व नामक मेरे चार पुत्र होंगे, जो रुद्रलोककी प्राप्तिके लिये तत्पर, महान् योगी तथा सदा भस्मसे अनुलिप्त शरीरवाले होंगे। वे भी माहेश्वरयोगको प्राप्त होकर शिवलोकको प्रस्थान करेंगे॥ ५७-५८॥

पुनः क्रमसे तेरहवें द्वापरयुगका अन्त आनेपर जब धर्मरूप 'नारायण' नामक व्यास होंगे, उस समय भी मैं गन्धमादन पर्वतपर पवित्र बालखिल्य आश्रममें महामुनि 'बालि' नामसे अवतरित होऊँगा॥ ५९-६०॥

उस समय भी सुधामा, काश्यप, वासिष्ठ तथा विरजा नामक मेरे चार पुत्र होंगे। वे महान् तपस्वी, महायोगसे सम्पन्न, विशुद्धात्मा एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी होंगे और माहेश्वरयोगको प्राप्त होकर रुद्रलोक जायँगे॥ ६१-६२॥

चौदहवें द्वापरके अन्तमें जब 'तरक्षु' नामक व्यास होंगे, उस समय भी मैं अंगिरामुनिके उत्तम वंशमें गौतम नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और वह स्थान परम पवित्र 'गौतमवन' नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ६३-६४॥

उस कलिमें भी अत्रि, देवसद, श्रवण तथा श्रविष्ठक नामक मेरे चार पुत्र होंगे। वे सभी योगात्मा, महान् आत्मावाले और योगयुक्त पुत्र माहेश्वरयोगमें सिद्ध होकर रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ ६५-६६॥

पुनः क्रमसे पन्द्रहवें द्वापरका अन्त होनेपर जब 'त्रैय्यारुणि' नामक व्यास होंगे, उस समय भी द्विजरूप 'वेदशिरा' नामसे मैं अवतार ग्रहण करूँगा।

भविष्यति महावीर्यं वेदशीर्षश्च पर्वतः।
हिमवत्पृष्ठमासाद्य सरस्वत्यां नगोत्तमे॥ ६९

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः।
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः॥ ७०

योगात्मानो महात्मानः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः॥ ७१

व्यासो युगे षोडशे तु यदा देवो भविष्यति।
तत्र योगप्रदानाय भक्तानां च यतात्मनाम्॥ ७२

तदाप्यहं भविष्यामि गोकर्णो नाम नामतः।
भविष्यति सुपुण्यं च गोकर्णं नाम तद्वनम्॥ ७३

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति च योगिनः।
काश्यपो ह्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः॥ ७४

तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगसमन्विताः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं गन्तारो रुद्रमेव हि॥ ७५

ततः सप्तदशे चैव परिवर्ते क्रमागते।
यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना देवकृतञ्जयः॥ ७६

तदाप्यहं भविष्यामि गुहावासीति नामतः।
हिमवच्छिखरे रम्ये महोत्तुङ्गे महालये॥ ७७

सिद्धक्षेत्रं महापुण्यं भविष्यति महालयम्।
तत्रापि मम ते पुत्रा योगज्ञा ब्रह्मवादिनः॥ ७८

भविष्यन्ति महात्मानो निर्ममा निरहङ्कृताः।
उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः॥ ७९

तेषां शतसहस्रं तु शिष्याणां ध्यानयोगिनाम्।
भविष्यन्ति तदा काले सर्वे ते ध्यानयुञ्जकाः॥ ८०

योगाभ्यासरताश्चैव हृदि कृत्वा महेश्वरम्।
महालये पदं न्यस्तं दृष्ट्वा यान्ति शिवं पदम्॥ ८१

ये चान्येऽपि महात्मानः कलौ तस्मिन् युगान्तिके।
ध्याने मनः समाधाय विमलाः शुद्धबुद्धयः॥ ८२

मम प्रसादाद्यास्यन्ति रुद्रलोकं गतज्वराः।
गत्वा महालयं पुण्यं दृष्ट्वा माहेश्वरं पदम्॥ ८३

वहाँ मैं 'वेदशिरा' नामक अति दिव्य पारमेश्वर अस्त्र प्रकट करूँगा और पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमालयके पृष्ठदेशमें सरस्वतीके तटपर वेदशीर्ष नामक पर्वत मेरा आश्रयस्थल होगा॥ ६७—६९॥

उस समय भी कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर तथा कुनेत्रक नामवाले मेरे तपस्वी पुत्र प्रकट होंगे। योगात्मा, महात्मा एवं नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले वे सभी पुत्र माहेश्वरयोगकी सिद्धि करके शिवलोकको प्राप्त होंगे॥ ७०-७१॥

सोलहवें द्वापरके अन्तमें जब देव नामक व्यास होंगे, तब भक्तों तथा संयत आत्मावाले जनोंको योग प्रदान करनेके निमित्त मैं गोकर्ण नामसे अवतार लूँगा और वह स्थान परम पवित्र गोकर्णवनके नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ७२-७३॥

उस समय भी काश्यप, उशना, च्यवन तथा बृहस्पति नामक मेरे चार महायोगी पुत्र होंगे। वे भी उसी मार्गसे ध्यानयोगसे युक्त होकर माहेश्वरयोग प्राप्त करके रुद्रलोक जायँगे॥ ७४-७५॥

पुनः क्रमसे सत्रहवें द्वापरके अन्तमें जब देवकृतंजय नामक व्यास होंगे, तब भी मैं हिमालयके अति उच्च महालय नामक रमणीक शिखरपर गुहावासी नामसे अवतीर्ण होऊँगा। वह महालयस्थल परम पवित्र तथा सिद्धक्षेत्र माना जायगा। वहाँपर भी उतथ्य, वामदेव, महायोग एवं महाबल नामवाले मेरे चार पुत्र होंगे। वे योगवेत्ता, ब्रह्मवादी, महात्मा, मोहरहित तथा अहंकारशून्य होंगे॥ ७६—७९॥

कलियुगमें उन पुत्रोंके ध्यानयोग करनेवाले हजारों शिष्य होंगे। ध्यान करनेवाले तथा योगाभ्यासपरायण वे सभी शिष्य महेश्वरको हृदयमें धारण करके महालय-क्षेत्रमें मेरे चरणोंका दर्शन करके शिवपदको प्राप्त होंगे॥ ८०-८१॥

इनके अतिरिक्त अन्य जो भी महात्मा उस द्वापरके अन्तमें कलिमें अपना मन ध्यानमें लगाकर निर्मल आत्मा तथा शुद्ध बुद्धिवाले हो जायँगे, वे शोकरहित होकर मेरे अनुग्रहसे रुद्रलोकको प्राप्त होंगे। पुण्यप्रद

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

तीर्णस्तारयते जन्तुर्दश पूर्वान् दशोत्तरान्।
आत्मानमेकविंशं तु तारयित्वा महालये॥ ८४

मम प्रसादाद्यास्यन्ति रुद्रलोकं गतज्वराः।
ततोऽष्टादशमे चैव परिवर्ते यदा विभो॥ ८५

तदा ऋतञ्जयो नाम व्यासस्तु भविता मुनिः।
तदाप्यहं भविष्यामि शिखण्डी नाम नामतः॥ ८६

सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये देवदानवपूजिते।
हिमवच्छिखरे रम्ये शिखण्डी नाम पर्वतः॥ ८७

शिखण्डिनो वनं चापि यत्र सिद्धनिषेवितम्।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः॥ ८८

वाचश्रवा ऋचीकश्च श्यावाश्वश्च यतीश्वरः।
योगात्मानो महात्मानः सर्वे ते वेदपारगाः॥ ८९

प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय संवृताः।
अथ एकोनविंशे तु परिवर्ते क्रमागते॥ ९०

व्यासस्तु भविता नाम्ना भरद्वाजो महामुनिः।
तदाप्यहं भविष्यामि जटामाली च नामतः॥ ९१

हिमवच्छिखरे रम्ये जटायुर्यत्र पर्वतः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः॥ ९२

हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षी कुथुमिस्तथा।
ईश्वरा योगधर्माणः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः॥ ९३

प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय संस्थिताः।
ततो विंशतिमश्चैव परिवर्तो यदा तदा॥ ९४

गौतमस्तु तदा व्यासो भविष्यति महामुनिः।
तदाप्यहं भविष्यामि अट्टहासस्तु नामतः॥ ९५

अट्टहासप्रियाश्चैव भविष्यन्ति तदा नराः।
तत्रैव हिमवत्पृष्ठे अट्टहासो महागिरिः॥ ९६

देवदानवयक्षेन्द्रसिद्धचारणसेवितः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः॥ ९७

योगात्मानो महात्मानो ध्यायिनो नियतव्रताः।
सुमन्तुर्बर्बरी विद्वान् कबन्धः कुशिकन्धरः॥ ९८

महालयक्षेत्रमें जाकर माहेश्वरपदका दर्शन करके प्राणी अपनी दस पूर्वकी तथा दस बादकी और अपनी स्वयं—इस प्रकार इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। इस प्रकार महालयक्षेत्रमें पहुँचकर लोग अपने वंशका उद्धार करके मेरी कृपासे कष्टसे रहित होकर रुद्रलोकको प्राप्त करेंगे॥ ८२—८४½॥

हे विभो! पुनः अठारहवें द्वापरके अन्तमें जब ऋतंजयमुनि नामक व्यास होंगे, तब मैं सिद्धिप्रदायक, पुण्यप्रद तथा देव-दानवोंसे पूजित रमणीक हिमालय-शिखरपर शिखण्डी नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और वह शिखर मेरे नामसे शिखण्डी पर्वत तथा वह क्षेत्र शिखण्डीका वन कहा जायगा, जहाँ सिद्ध महात्मा निवास करेंगे॥ ८५—८७½॥

वहाँपर भी वाचश्रवा, ऋचीक, श्यावाश्व तथा यतीश्वर नामक मेरे पुत्र होंगे। वे सब परम तपस्वी, योगात्मा, महात्मा तथा वेदोंके पारगामी विद्वान् होंगे, जो माहेश्वर योगमें सिद्ध होकर रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ ८८-८९½॥

तदनन्तर क्रमसे उन्नीसवें द्वापरके अन्तमें महामुनि भरद्वाज तो व्यास होंगे और उस समय मैं हिमालयके शिखरपर विराजमान रमणीक जटायु पर्वतपर जटामाली नामसे अवतीर्ण होऊँगा। उस समय भी हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाक्षी तथा कुथुमि नामक मेरे चार पुत्र होंगे। वे महाप्रतापी, ऐश्वर्ययुक्त, योग-ध्यानपरायण और नैष्ठिक ब्रह्मचारी होंगे। वे सब माहेश्वरयोगको प्राप्त होकर रुद्रलोकको प्रस्थान करेंगे॥ ९०—९३½॥

पुनः जब बीसवें द्वापरका अन्त होगा, तब उस समय महामुनि गौतम तो व्यास होंगे और मैं भी उसी समय हिमालय-क्षेत्रमें अट्टहास नामसे अवतरित होऊँगा। तभीसे लोगोंकी अट्टहासके प्रति महान् प्रीति हो जायगी। वह क्षेत्र महागिरि अट्टहासके नामसे विख्यात होगा और देवता, दानव, यक्ष, इन्द्र, सिद्ध-महात्मा तथा चारण वहाँ सदा निवास करेंगे॥ ९४—९६½॥

वहींपर सुमन्तु, बर्बरी, विद्वान् कबन्ध तथा कुशिकन्धर—ये मेरे चार पुत्र होंगे। वे महान् ओजस्वी,

प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः।
एकविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥ ९९
वाचश्रवाः स्मृतो व्यासो यदा स ऋषिसत्तमः।
तदाप्यहं भविष्यामि दारुको नाम नामतः॥ १००
तस्माद्भविष्यते पुण्यं देवदारुवनं शुभम्।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः॥ १०१
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा।
योगात्मानो महात्मानो नियता ऊर्ध्वरेतसः॥ १०२
नैष्ठिकं व्रतमास्थाय रुद्रलोकाय ते गताः।
द्वाविंशे परिवर्ते तु व्यासः शुष्मायणो यदा॥ १०३
तदाप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः।
नाम्ना वै लाङ्गली भीमो यत्र देवाः सवासवाः॥ १०४
द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन् भवं चैव हलायुधम्।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः॥ १०५
भल्लवी मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुः कुशस्तथा।
प्राप्य माहेश्वरं योगं तेऽपि ध्यानपरायणाः॥ १०६
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा रुद्रलोकाय संस्थिताः।
परिवर्ते त्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनिः॥ १०७
व्यासो हि भविता ब्रह्मंस्तदाहं भविता पुनः।
श्वेतो नाम महाकायो मुनिपुत्रस्तु धार्मिकः॥ १०८
तत्र कालं जरिष्यामि तदा गिरिवरोत्तमे।
तेन कालञ्जरो नाम भविष्यति स पर्वतः॥ १०९
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः।
उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च॥ ११०
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः।
परिवर्ते चतुर्विंशे व्यासो ऋक्षो यदा विभो॥ १११
तदाप्यहं भविष्यामि कलौ तस्मिन् युगान्तिके।
शूली नाम महायोगी नैमिषे देववन्दिते॥ ११२
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपोधनाः।
शालिहोत्रोऽग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः॥ ११३
तेऽपि तेनैव मार्गेण रुद्रलोकाय संस्थिताः।
पञ्चविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥ ११४

योगात्मा, महात्मा, ध्यानपरायण एवं दृढ़व्रती होंगे, जो माहेश्वरयोगमें सिद्ध होकर रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ ९७-९८$^{१}/_{२}$॥

पुनः क्रमसे इक्कीसवें द्वापरके अन्तमें जब ऋषिप्रवर वाचश्रवा व्यास होंगे, तब मैं भी दारुक नामसे आविर्भूत होऊँगा; इसलिये वह स्थान कल्याणप्रद तथा पुण्यकर होगा और मेरे नामपर वह देवदारुवनके नामसे प्रसिद्ध होगा। वहाँपर भी प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान् तथा गौतम नामवाले मेरे चार पुत्र होंगे; जो महाप्रतापी, योगात्मा, महात्मा, संयत आत्मावाले एवं ब्रह्मचारी होंगे। वे सब निष्ठापूर्वक योगव्रतका पालन करके रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ ९९—१०२$^{१}/_{२}$॥

बाईसवें द्वापरके अन्तमें जब शुष्मायण नामक व्यास होंगे, उस समय मैं महामुनि 'भीम' नामसे हल धारण किये काशीमें अवतार ग्रहण करूँगा, जहाँपर उस कलिमें इन्द्रसहित सभी देवतागण अस्त्ररूपमें हल धारण करनेवाले हलायुध मुझ शिवका दर्शन प्राप्त करेंगे॥ १०३-१०४$^{१}/_{२}$॥

वहाँपर भी भल्लवी, मधुपिंग, श्वेतकेतु तथा कुश नामक मेरे चार पुत्र होंगे। अतिशय धर्मनिष्ठ, ध्यानपरायण, विशुद्धात्मा एवं ब्रह्मभावको प्राप्त वे पुत्र भी माहेश्वरयोगमें सिद्ध होकर शिवलोकको प्राप्त होंगे॥ १०५-१०६$^{१}/_{२}$॥

हे ब्रह्मन्! पुनः तेईसवें द्वापरके अन्तमें जब मुनि तृणबिन्दु नामक व्यास होंगे, उस समय मैं धर्मनिष्ठ तथा महाकाय मुनिपुत्रके रूपमें 'श्वेत' नामसे अवतीर्ण होऊँगा। वहाँ उत्तम पर्वतपर मैं कालको जीर्ण (व्यतीत) करूँगा, अतः वह पर्वत 'कालंजर' नामसे विख्यात होगा। वहाँपर भी उशिक, बृहदश्व, देवल तथा कवि नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे। वे माहेश्वर योगको प्राप्त होकर रुद्रलोक जायँगे॥ १०७—११०$^{१}/_{२}$॥

हे विभो! चौबीसवें द्वापरके अन्तमें जब ऋक्षमुनि व्यास होंगे, तब मैं उस युगान्त तथा कलिके प्रारम्भमें देववन्द्य नैमिषारण्यमें महान् योगीके रूपमें 'शूली' नामसे अवतार लूँगा। वहाँ भी शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व एवं शरद्वसु नामक मेरे चार तपोधन शिष्य होंगे। वे भी उसी योगमार्गसे रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ १११—११३$^{१}/_{२}$॥

वासिष्ठस्तु यदा व्यासः शक्तिर्नाम्ना भविष्यति।
तदाप्यहं भविष्यामि दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः॥ ११५
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः।
छगलः कुण्डकर्णश्च कुभाण्डश्च प्रवाहकः॥ ११६
प्राप्य माहेश्वरं योगममृतत्वाय ते गताः।
षड्विंशे परिवर्ते तु यदा व्यासः पराशरः॥ ११७
तदाप्यहं भविष्यामि सहिष्णुर्नाम नामतः।
पुरं भद्रवटं प्राप्य कलौ तस्मिन् युगान्तिके॥ ११८
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः।
उलूको विद्युतश्चैव शम्बूको ह्याश्वलायनः॥ ११९
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः।
सप्तविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥ १२०
जातूकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधनः।
तदाप्यहं भविष्यामि सोमशर्मा द्विजोत्तमः॥ १२१
प्रभासतीर्थमासाद्य योगात्मा योगविश्रुतः।
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपोधनाः॥ १२२
अक्षपादः कुमारश्च उलूको वत्स एव च।
योगात्मानो महात्मानो विमलाः शुद्धबुद्धयः॥ १२३
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं ततो गताः।
अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥ १२४
पराशरसुतः श्रीमान् विष्णुर्लोकपितामहः।
यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः॥ १२५
तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः।
वसुदेवाद्यदुश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति॥ १२६
तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया।
लोकविस्मयनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः॥ १२७
श्मशाने मृतमुत्सृष्टं दृष्ट्वा कायमनाथकम्।
ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया॥ १२८
दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्धं च विष्णुना।
भविष्यामि तदा ब्रह्मन् लकुली नाम नामतः॥ १२९
कायावतार इत्येवं सिद्धक्षेत्रं च वै तदा।
भविष्यति सुविख्यातं यावद्भूमिर्धरिष्यति॥ १३०

पुनः क्रमिक रूपसे पचीसवें द्वापरके अन्तमें जब वसिष्ठजीके पुत्र शक्तिमुनि व्यास होंगे, उस समय जगत्प्रभु मैं दण्ड धारण किये हुए मुण्डीश्वर नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी छगल, कुण्डकर्ण, कुभाण्ड तथा प्रवाहक नामक मेरे चार तपोव्रती पुत्र होंगे। माहेश्वरयोगमें सिद्ध होकर वे अमरत्वको प्राप्त होंगे॥ ११४—११६ १/२॥

छब्बीसवें द्वापरके अन्तमें जब पराशर नामक व्यास होंगे, उस समय भी उस युगान्तमें मैं कलिके प्रारम्भमें भद्र-वटक्षेत्रमें सहिष्णु नामसे अवतीर्ण होऊँगा। वहाँ भी उलूक, विद्युत, शम्बूक तथा आश्वलायन नामक अत्यन्त धर्मपरायण मेरे चार पुत्र होंगे। वे माहेश्वरयोगको प्राप्त होकर रुद्रलोकको प्रस्थान करेंगे॥ ११७—११९ १/२॥

पुनः क्रमिक रूपसे सत्ताईसवें द्वापरके अन्तमें जब तपस्वी जातूकर्ण्य व्यास होंगे, तब मैं योगविश्रुत तथा योगात्मा द्विजश्रेष्ठ सोमशर्माके रूपमें प्रभासक्षेत्रमें अवतरित होऊँगा। वहाँपर भी अक्षपाद, कुमार, उलूक एवं वत्स नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे। योगात्मा, महात्मा, निर्विकारहृदय तथा शुद्ध बुद्धिवाले वे शिष्य माहेश्वरयोग प्राप्त करके अन्तमें रुद्रलोक जायँगे॥ १२०—१२३ १/२॥

पुनः क्रमसे अट्ठाईसवें द्वापरके आनेपर जब श्रीमान् लोकपितामह विष्णु अपने छठे अंशसे पराशरपुत्र 'कृष्णद्वैपायन' नामक व्यास होंगे, तब यदुश्रेष्ठ पुरुषोत्तम वासुदेव कृष्ण वसुदेवसे उत्पन्न होंगे। उस समय योगात्मा मैं लोकोंको विस्मित करनेके उद्देश्यसे योगमायासे एक ब्रह्मचारीका शरीर धारणकर प्रकट होऊँगा और योगमायाके प्रभावसे ब्राह्मणोंके कल्याणार्थ श्मशानमें मृत पड़े एक अनाथ ब्राह्मणका शरीर देखकर उसमें प्रवेश करूँगा। दिव्य तथा पुण्य प्रदान करनेवाली मेरुगुहामें आपके एवं विष्णुके साथ मैं निवास करूँगा। हे ब्रह्मन्! उस समय मैं लकुली नामसे विख्यात होऊँगा और मेरा अवतार-स्थल जबतक भूमिकी सत्ता रहेगी, तबतक एक सिद्धक्षेत्रके रूपमें कायावतार—इस नामसे विख्यात रहेगा॥ १२४—१३०॥

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः।
कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रः कौरुष्य एव च॥ १३१

योगात्मानो महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं विमला ह्यूर्ध्वरेतसः॥ १३२

रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
एते पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः॥ १३३

लिङ्गार्चनरता नित्यं बाह्याभ्यन्तरतः स्थिताः।
भक्त्या मयि च योगेन ध्याननिष्ठा जितेन्द्रियाः॥ १३४

संसारबन्धच्छेदार्थं ज्ञानमार्गप्रकाशकम्।
स्वरूपज्ञानसिद्ध्यर्थं योगं पाशुपतं महत्॥ १३५

योगमार्गा अनेकाश्च ज्ञानमार्गास्त्वनेकशः।
न निवृत्तिमुपायान्ति विना पञ्चाक्षरीं क्वचित्॥ १३६

यदाचरेत्तपश्चायं सर्वद्वन्द्वविवर्जितम्।
तदा स मुक्तो मन्तव्यः पक्वं फलमिव स्थितः॥ १३७

एकाहं यः पुमान् सम्यक् चरेत्पाशुपतव्रतम्।
न सांख्ये पञ्चरात्रे वा न प्राप्नोति गतिं कदा॥ १३८

इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम्।
मन्वादिकृष्णपर्यन्तमष्टाविंशद्युगक्रमात्॥ १३९

तत्र श्रुतिसमूहानां विभागो धर्मलक्षणः।
भविष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा॥ १४०

सूत उवाच

निशम्यैवं महातेजा महादेवेन कीर्तितम्।
रुद्रावतारं भगवान् प्रणिपत्य महेश्वरम्॥ १४१

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः पुनः प्राह च शङ्करम्।

पितामह उवाच

सर्वे विष्णुमया देवाः सर्वे विष्णुमया गणाः॥ १४२

न हि विष्णुसमा काचिद् गतिरन्या विधीयते।
इत्येवं सततं वेदा गायन्ति नात्र संशयः॥ १४३

स देवदेवो भगवांस्तव लिङ्गार्चने रतः।
तव प्रणामपरमः कथं देवो ह्यभूत्प्रभुः॥ १४४

वहाँपर भी कुशिक, गर्ग, मित्र तथा कौरुष्य नामक मेरे चार तपस्वी, योगात्मा, ब्रह्मज्ञानी और वेदोंके पारगामी विद्वान् पुत्र होंगे। विशुद्ध आत्मावाले तथा नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेवाले वे पुत्र माहेश्वरयोगमें सिद्ध होकर पुनरागमनसे मुक्ति दिलानेवाले रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ १३१-१३२½॥

ये पाशुपतयोगमें सिद्ध, भस्मसे विभूषित शरीरवाले, नित्य शिवलिङ्गके अर्चनमें तत्पर रहनेवाले, बाहर एवं भीतरसे भक्तिपूर्वक योगके द्वारा मुझमें स्थित रहनेवाले, ध्यानपरायण तथा जितेन्द्रिय होंगे॥ १३३-१३४॥

ज्ञानमार्गका प्रकाशक यह पाशुपतयोग सांसारिक बन्धनसे मुक्ति प्राप्त करने तथा आत्मज्ञान सिद्ध करनेके लिये एक महान् उपाय है॥ १३५॥

इस जगत्में अनेक योगमार्ग हैं तथा अनेक ज्ञानमार्ग हैं; किंतु पंचाक्षरी विद्या (**नमः शिवाय**)-के बिना प्राणी सांसारिक बन्धनसे मुक्त नहीं हो सकते॥ १३६॥

जो मनुष्य सभी द्वन्द्वोंसे रहित होकर तप करता है, वह पके फलकी भाँति मुक्तिके लिये उपस्थित रहता है॥ १३७॥

जो पुरुष मात्र एक दिन भलीभाँति पाशुपतव्रत धारण करता है, वह उस गतिको प्राप्त कर लेता है, जो उसे सांख्य तथा पञ्चरात्रसे कभी नहीं मिलती॥ १३८॥

इस प्रकार मैंने युगक्रमसे मनुसे लेकर कृष्णद्वैपायन पर्यन्त अट्ठाईस अवतारोंका वर्णन आपसे कर दिया। उस कल्पमें जब धर्मस्वरूप श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास होंगे, तब वे ही वेदसमूहोंका विभाग करेंगे॥ १३९-१४०॥

सूतजी बोले—इस प्रकार महादेवके द्वारा कही गयी रुद्रावतारकी बातें सुनकर महातेजस्वी भगवान् ब्रह्माने प्रणामपूर्वक प्रिय वाणीसे महेश्वर शिवकी स्तुति की और पुनः उनसे कहा॥ १४१½॥

पितामह बोले—सभी देवता तथा सभी गण विष्णुसे ही व्याप्त हैं। विष्णुके समान कोई अन्य गति हो ही नहीं सकती। ऐसा वेद निरन्तर गाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है॥ १४२-१४३॥

वे देवाधिदेव भगवान् विष्णु आपके लिङ्गार्चनमें

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

सूत उवाच

निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
प्रपिबन्निव चक्षुर्भ्यां प्रीतस्तत्प्रश्नगौरवात्॥ १४५

पूजाप्रकरणं तस्मै तमालोक्याह शङ्करः।
भवान्नारायणश्चैव शक्रः साक्षात्सुरोत्तमः॥ १४६

मुनयश्च सदा लिङ्गं सम्पूज्य विधिपूर्वकम्।
स्वं स्वं पदं विभो प्राप्तास्तस्मात्सम्पूजयन्ति ते॥ १४७

लिङ्गार्चनं विना निष्ठा नास्ति तस्माज्जनार्दनः।
आत्मनो यजते नित्यं श्रद्धया भगवान् प्रभुः॥ १४८

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः।
पुनः सम्प्रेक्ष्य देवेशं तत्रैवान्तरधीयत॥ १४९

तमुद्दिश्य तदा ब्रह्मा नमस्कृत्य कृताञ्जलिः।
स्रष्टुं त्वशेषं भगवान् लब्धसंज्ञस्तु शङ्करात्॥ १५०

निरन्तर रत क्यों रहते हैं तथा जगत्पति होकर भी सदा आपको प्रणाम क्यों करते हैं?॥ १४४॥

सूतजी बोले—परमेष्ठी ब्रह्माजीका वचन सुनकर हर्षातिरेकसे युक्त नेत्रोंवाले भगवान् शंकर उनके इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नसे अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्हें लिङ्गपूजा-प्रकरणके विषयमें बताया। भगवान् विष्णु, साक्षात् सुरश्रेष्ठ इन्द्र तथा मुनियोंने विधिविधानसे लिङ्गकी पूजा करके ही अपने-अपने पद प्राप्त किये हैं। हे विभो! इसीलिये वे लिङ्गपूजनमें तत्पर रहते हैं॥ १४५—१४७॥

लिङ्गके अर्चनके बिना निष्ठाकी प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये जगत्पति भगवान् विष्णु श्रद्धापूर्वक मेरे लिङ्गका पूजन करते हैं॥ १४८॥

देवेश ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर तथा पुनः उनके ऊपर कृपादृष्टि डालकर महेश्वर वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ १४९॥

तत्पश्चात् उन शिवको हाथ जोड़कर प्रणाम करके और उनसे आज्ञा प्राप्त करके वे भगवान् ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करनेमें प्रवृत्त हो गये॥ १५०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विविधव्यासावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'विविधव्यासावतारवर्णन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

लिङ्गार्चनविधिके अन्तर्गत शरीर एवं मनकी शुद्धिके लिये अन्तः एवं बाह्य स्नानकी प्रक्रिया और विविध मन्त्रोंसे आत्माभिषेचन

ऋषय ऊचुः

कथं पूज्यो महादेवो लिङ्गमूर्तिर्महेश्वरः।
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण साम्प्रतम्॥ १

सूत उवाच

देव्या पृष्टो महादेवः कैलासे तां नगात्मजाम्।
अङ्कस्थामाह देवेशो लिङ्गार्चनविधिं क्रमात्॥ २

तदा पार्श्वे स्थितो नन्दी शालङ्कायनकात्मजः।
श्रुत्वाखिलं पुरा प्राह ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः॥ ३

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! लिङ्गस्वरूप महेश्वर महादेवकी पूजा किस प्रकार की जानी चाहिये? अब आप हमलोगोंको यह बतानेकी कृपा करें॥ १॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इसी विषयमें कैलास पर्वतपर देवी पार्वतीके द्वारा पूछे जानेपर देवाधिदेव महादेवने अपने अंकमें विराजमान गिरिराजकिशोरी पार्वतीसे लिङ्गार्चन विधिका क्रमसे वर्णन किया था॥ २॥

हे सुव्रतो! उस समय समीपमें ही स्थित शालंकायनके पुत्र नन्दीने उस विधिका श्रवण करके पहले ब्रह्मापुत्र

सनत्कुमाराय शुभं लिङ्गार्चनविधिं परम्।
तस्माद् व्यासो महातेजाः श्रुतवाञ्छ्रुतिसम्मितम्॥ ४

सनत्कुमारको वह परम पवित्र लिङ्गार्चनविधि बतायी और उनसे महातेजस्वी व्यासजीने वह श्रुतिप्रतिपादित विधि सुनी॥ ३-४॥

स्नानयोगोपचारं च यथा शैलादिनो मुखात्।
श्रुतवान् तत्प्रवक्ष्यामि स्नानाद्यं चार्चनाविधिम्॥ ५

शैलादि (नन्दी)-के मुखसे स्नान तथा लिङ्ग-पूजानुष्ठानकी जो विधि कही गयी है एवं जो मैंने भी सुनी है, उस स्नान तथा अर्चनविधिका आपलोगोंसे वर्णन करूँगा॥ ५॥

शैलादिरुवाच

अथ स्नानविधिं वक्ष्ये ब्राह्मणानां हिताय च।
सर्वपापहरं साक्षाच्छिवेन कथितं पुरा॥ ६

शैलादि (नन्दिकेश्वर) बोले—ब्राह्मणोंके कल्याणके निमित्त अब मैं स्नान-विधिके विषयमें कहूँगा। यह [विधिपूर्वक किया गया स्नान] सभी पापोंको दूर करनेवाला है। पूर्वकालमें स्वयं भगवान् शंकरने इसके महत्त्वका वर्णन किया है॥ ६॥

अनेन विधिना स्नात्वा सकृत्पूज्य च शङ्करम्।
ब्रह्मकूर्चं च पीत्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७

इस विधिसे स्नान करनेके बाद भक्तिपूर्वक एक बार शंकरजीकी पूजा करके विधिपूर्वक निर्मित ब्रह्मकूर्च (पंचगव्य)-का पानकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७॥

त्रिविधं स्नानमाख्यातं देवदेवेन शम्भुना।
हिताय ब्राह्मणाद्यानां चतुर्मुखसुतोत्तम॥ ८

हे ब्रह्माजीके उत्तम पुत्र! ब्राह्मण आदिके हितके लिये देवाधिदेव शंकरने तीन प्रकारके स्नानोंका वर्णन किया है॥ ८॥

वारुणं पुरतः कृत्वा ततश्चाग्नेयमुत्तमम्।
मन्त्रस्नानं ततः कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरम्॥ ९

सर्वप्रथम जलस्नान करनेके बाद श्रेष्ठ अग्निस्नान (भस्मस्नान)-और फिर मार्जनरूप मन्त्रस्नान करके परमेश्वरकी पूजा करनी चाहिये॥ ९॥

भावदुष्टोऽम्भसि स्नात्वा भस्मना च न शुध्यति।
भावशुद्धश्चरेच्छौचमन्यथा न समाचरेत्॥ १०

भावदुष्ट अर्थात् श्रद्धारहित प्राणी जलमें स्नान करके तथा भस्म लगा लेनेसे शुद्ध नहीं हो जाता है। भावनासे शुद्ध होकर ही मनुष्यको शुद्धि करनी चाहिये, अन्यथा नहीं॥ १०॥

सरित्सरस्तडागेषु सर्वेष्वाप्रलयं नरः।
स्नात्वापि भावदुष्टश्चेन्न शुध्यति न संशयः॥ ११

प्रलयपर्यन्त सभी नदियों, सरोवरों तथा तड़ागोंमें स्नान करके भी भावनासे दूषित मनवाला व्यक्ति शुद्ध नहीं हो सकता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ११॥

नृणां हि चित्तकमलं प्रबुद्धमभवद्यदा।
प्रसुप्तं तमसा ज्ञानभानोर्भासा तदा शुचिः॥ १२

तमोगुणके प्रभावसे मनुष्यका प्रसुप्त चित्तकमल जब ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे चेतनायुक्त हो जाता है, तभी शुद्धि हो पाती है॥ १२॥

मृच्छकृत्तिलपुष्पं च स्नानार्थं भसितं तथा।
आदाय तीरे निःक्षिप्य स्नानतीर्थे कुशानि च॥ १३

प्रक्षाल्याचम्य पादौ च मलं देहाद्विशोध्य च।
द्रव्यैस्तु तीरदेशस्थैस्ततः स्नानं समाचरेत्॥ १४

मिट्टी, गोमय, तिल, पुष्प तथा भस्म आदि लेकर स्नानके लिये स्नानतीर्थ जाकर वहाँ तटपर कुश बिछा लेना चाहिये। तदनन्तर दोनों पैर धोकर पुनः आचमन

उद्धृतासीति मन्त्रेण पुनर्देहं विशोधयेत्।
मृदादाय ततश्चान्यद्वस्त्रं स्नात्वा ह्यनुल्बणम्॥ १५

गन्धद्वारां दुराधर्षामिति मन्त्रेण मन्त्रवित्।
कपिलागोमयेनैव खस्थेनैव तु लेपयेत्॥ १६

पुनः स्नात्वा परित्यज्य तद्वस्त्रं मलिनं ततः।
शुक्लवस्त्रपरीधानो भूत्वा स्नानं समाचरेत्॥ १७

सर्वपापविशुद्ध्यर्थमावाह्य वरुणं तथा।
सम्पूज्य मनसा देवं ध्यानयज्ञेन वै भवम्॥ १८

आचम्य त्रिस्तदा तीर्थे ह्यवगाह्य भवं स्मरन्।
पुनराचम्य विधिवदभिमन्त्र्य महाजलम्॥ १९

अवगाह्य पुनस्तस्मिन् जपेद्वै चाघमर्षणम्।
तत्तोये भानुसोमाग्निमण्डलं च स्मरेद्वशी॥ २०

आचम्य च पुनस्तस्माज्जलादुत्तीर्य मन्त्रवित्।
प्रविश्य तीर्थमध्ये तु पुनः पुण्यविवृद्धये॥ २१

शृङ्गेण पर्णपुटकैः पालाशैः क्षालितैस्तथा।
सकुशेन सपुष्पेण जलेनैवाभिषेचयेत्॥ २२

रुद्रेण पवमानेन त्वरिताख्येन मन्त्रवित्।
तरत्समन्दीवर्गाद्यैस्तथा शान्तिद्वयेन च॥ २३

शान्तिधर्मेण चैकेन पञ्चब्रह्मपवित्रकैः।
तत्तन्मन्त्राधिदेवानां स्वरूपं च ऋषीन् स्मरन्॥ २४

करके तीरदेशमें स्थित द्रव्योंसे शरीरके मलका शोधन करनेके उपरान्त स्नान करना चाहिये॥ १३-१४॥

तत्पश्चात् '**उद्धृतासि वराहेण**'[1] यह मन्त्र पढ़कर मिट्टी लेकर उससे शरीरकी शुद्धि करनी चाहिये। इसके अनन्तर स्नान करके दूसरा पवित्र वस्त्र धारण करना चाहिये॥ १५॥

पुनः मन्त्रवित् पुरुषको चाहिये कि वह '**गन्धद्वारां दुराधर्षाम्**'[2] इस मन्त्रको पढ़कर कपिला गायके भूस्पर्शरहित गोमयका शरीरपर लेपन करे। इसके बाद स्नान करके उस मलिन वस्त्रको छोड़कर पुनः श्वेत वस्त्र धारण करके स्नान करना चाहिये॥ १६-१७॥

समस्त पापोंसे विमुक्तिके लिये वरुणदेवका आवाहन करके तथा मानसिक उपचारोंसे भगवान् शंकरकी विधिवत् पूजा करके तीन बार आचमनकर जलको अभिमन्त्रित करके शिवका स्मरण करते हुए तीर्थजलमें प्रवेश करे। इसके बाद गोता लगाकर '**ऋतञ्च सत्यञ्च**'[3] इस अघमर्षण मन्त्रका जप करते हुए उस जलमें सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि—इन तीनोंके मण्डलोंका उस संयमी व्यक्तिको ध्यान करना चाहिये॥ १८—२०॥

फिर आचमन करके उस जलसे निकलकर पुण्यकी वृद्धिहेतु उस मन्त्रवित्को पुनः जलमध्यमें प्रवेश करना चाहिये॥ २१॥

मन्त्रवेत्ता गोशृंगके द्वारा अथवा प्रक्षालित पलाश-पत्ररचित पुटकद्वारा अथवा कुशा और पुष्प आदिद्वारा गृहीत जलसे रुद्र-सूक्त (शु०यजुर्वेद अ० १९ के **नमस्ते रुद्र०** इत्यादि ६६ मन्त्र), पवमानसूक्त (ऋग्वेदकी पावमानी ऋचाएँ), **यो रुद्र०** इत्यादि त्वरितसंज्ञक मन्त्र, तरत्समन्दी इत्यादि आद्याक्षरवाले मन्त्रों (ऋग्वेद ९।५८), **शं नो मित्र०** आदि दो मन्त्रों (यजु० ३६।९-१०), शान्तिधर्मक **शं नो देवी०** (शु०यजु० ३६।१२) एक मन्त्र, पंचब्रह्मपवित्रक सद्योजातादि मन्त्र-पंचकका[4] पाठ करते

१. उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। मृत्तिके त्वां च गृह्णामि प्रजया च धनेन च॥
२. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥
३. ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः। (ऋग्वेद १०।१९०।१)
४. (क) सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥ (ख) वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय

एवं हि चाभिषिच्याथ स्वमूर्ध्नि पयसा द्विजाः।
ध्यायेच्च त्र्यम्बकं देवं हृदि पञ्चास्यमीश्वरम्॥ २५

आचम्याचमनं कुर्यात्स्वसूत्रोक्तं समीक्ष्य च।
पवित्रहस्तः स्वासीनः शुचौ देशे यथाविधि॥ २६

अभ्युक्ष्य सकुशं चापि दक्षिणेन करेण तु।
पिबेत्प्रक्षिप्य त्रिस्तोयं चक्री भूत्वा ह्यतन्द्रितः॥ २७

प्रदक्षिणं ततः कुर्याद्धिंसापापप्रशान्तये।
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तं स्नानाचमनमुत्तमम्॥ २८

सर्वेषां ब्राह्मणानां तु हितार्थे द्विजसत्तमाः॥ २९

हुए इन मन्त्रोंके अधिदेवताओंके स्वरूप एवं ऋषियोंका स्मरण करते हुए आत्माभिषेचन करे॥ २२—२४॥

हे द्विजो! इस प्रकार जलसे अपने मस्तकपर अभिषेक करके त्रिनेत्र तथा पंचमुख परमेश्वर महादेवका हृदयमें ध्यान करना चाहिये और अपने गृह्यसूत्रकी रीतिके अनुसार आचमन करना चाहिये। तदनन्तर पवित्र स्थानमें सुन्दर आसनपर बैठकर हाथमें पवित्रक लेकर उस कुशके द्वारा दाहिने हाथसे अपने ऊपर जल छिड़के। पुनः जल लेकर तीन बार आचमन करके सभी हिंसा तथा पापोंके शमनके लिये आलस्यरहित होकर अपने स्थानपर घूमते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये। हे श्रेष्ठ द्विजो! इस प्रकार मैंने सभी ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये संक्षेपमें स्नान तथा आचमनके अत्युत्तम विधानका वर्णन कर दिया॥ २५—२९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे स्नानविधिर्नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'स्नानविधि' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

भगवती गायत्रीका आवाहन तथा जप, सूर्यकी प्रार्थना, सूर्यसूक्तोंका पाठ, देव-ऋषि-पितृतर्पण, पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान, भस्मस्नान एवं मन्त्रस्नान

नन्द्युवाच

आवाहयेत्ततो देवीं गायत्रीं वेदमातरम्।
आयातु वरदा देवीत्यनेनैव महेश्वरीम्॥ १

पाद्यमाचमनीयं च तस्याश्चार्घ्यं प्रदापयेत्।
प्राणायामत्रयं कृत्वा समासीनः स्थितोऽपि वा॥ २

सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा।
गायत्रीं प्रणवेनैव त्रिविधेष्वेकमाचरेत्॥ ३

अर्घ्यं दत्त्वा समभ्यर्च्य प्रणम्य शिरसा स्वयम्।
उत्तमे शिखरे देवीत्युक्त्वोद्वास्य च मातरम्॥ ४

नन्दिकेश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इस विधिसे स्नान करनेके पश्चात् **'आयातु वरदा देवी'** इस मन्त्रसे महेश्वरी वेदमाता गायत्रीका आवाहन करना चाहिये और पुनः पाद्य, आचमन, अर्घ्य आदि अर्पित करना चाहिये। पुनः तीन बार प्राणायाम करके बैठे-बैठे अथवा खड़े होकर एक हजार अथवा पाँच सौ अथवा एक सौ आठ बार गायत्रीजप प्रणवके साथ नियमपूर्वक करना चाहिये। इन तीनोंमें किसी एक विधिसे ही जप करना चाहिये॥ १—३॥

सूर्यको अर्घ्य देकर उनका पूजनकर सिर झुकाकर

नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥ (ग) अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥ (घ) तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ (ङ) ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

प्राच्यालोक्याभिवन्द्येशां गायत्रीं वेदमातरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेद्भास्करं तथा॥ ५

उदुत्यं च तथा चित्रं जातवेदसमेव च।
अभिवन्द्य पुनः सूर्यं ब्रह्माणं च विधानतः॥ ६

तथा सौराणि सूक्तानि ऋग्यजुःसामजानि च।
जप्त्वा प्रदक्षिणं पश्चात्त्रिः कृत्वा च विभावसोः॥ ७

आत्मानं चान्तरात्मानं परमात्मानमेव च।
अभिवन्द्य पुनः सूर्यं ब्रह्माणं च विभावसुम्॥ ८

मुनीन् पितॄन् यथान्यायं स्वनाम्नावाहयेत्ततः।
सर्वानावाहयामीति देवानावाह्य सर्वतः॥ ९

तर्पयेद्विधिना पश्चात्प्राङ्मुखो वा ह्युदङ्मुखः।
ध्यात्वा स्वरूपं तत्तत्त्वमभिवन्द्य यथाक्रमम्॥ १०

देवानां पुष्पतोयेन ऋषीणां तु कुशाम्भसा।
पितॄणां तिलतोयेन गन्धयुक्तेन सर्वतः॥ ११

यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणम्।
प्राचीनावीती विप्रेन्द्र पितॄणां तर्पयेत् क्रमात्॥ १२

प्रणाम करके '**उत्तमे शिखरे देवी**'[1] ऐसा कहकर माताका विसर्जन करके पूर्व दिशामें देखते हुए वेदमाता महेश्वरी गायत्रीका अभिवन्दन करके दोनों हाथ जोड़कर सूर्यकी प्रार्थना करनी चाहिये। '**उदुत्यं जातवेदसम्**'[2] तथा '**चित्रं देवानाम्**'[3]—इन मन्त्रोंसे सूर्य तथा ब्रह्माको नमस्कार करके ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके सूर्यसम्बन्धी सूक्तोंका विधानपूर्वक पाठ करके तीन बार सूर्यदेवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये॥ ४—७॥

इसके बाद आत्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्माका ध्यान करके सूर्य, ब्रह्मा एवं अग्निको प्रणाम करना चाहिये। पुनः मुनियों, पितरों तथा देवताओं—सभीका उनका अपने नामसे आवाहन करे। सबको आवाहित करके पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर उनके तत्त्वों तथा स्वरूपोंका ध्यान करके विधिपूर्वक क्रमसे तीर्थके जलसे तर्पण करना चाहिये और अन्तमें प्रणाम करना चाहिये॥ ८—१०॥

पुष्पयुक्त जलसे देवताओंका, कुशयुक्त जलसे ऋषियोंका तथा तिल और गन्धयुक्त जलसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये॥ ११॥

हे विप्रेन्द्र! यज्ञोपवीती अर्थात् सव्य होकर देवतर्पण, निवीती अर्थात् कण्ठमें यज्ञोपवीत धारण करके ऋषितर्पण

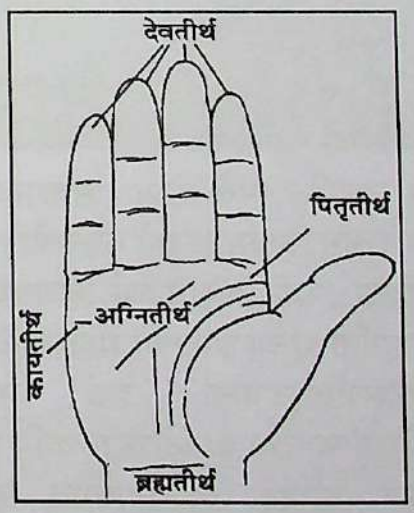

तथा प्राचीनावीती अर्थात् अपसव्य होकर पितृतर्पण क्रमानुसार करना चाहिये॥ १२॥

---

१. ॐ उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि। ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥
२. ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः॥ दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (यजु० ७।४१)
३. ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ (यजु० ७।४२)

अङ्गुल्यग्रेण वै धीमांस्तर्पयेद्देवतर्पणम्।
ऋषीन् कनिष्ठाङ्गुलिना श्रोत्रियः सर्वसिद्धये॥ १३
पितॄंस्तु तर्पयेद्विद्वान् दक्षिणाङ्गुष्ठकेन तु।
तथैवं मुनिशार्दूल ब्रह्मयज्ञं यजेद् द्विजः॥ १४
देवयज्ञं च मानुष्यं भूतयज्ञं तथैव च।
पितृयज्ञं च पूतात्मा यज्ञकर्मपरायणः॥ १५
स्वशाखाध्ययनं विप्रा ब्रह्मयज्ञ इति स्मृतः।
अग्नौ जुहोति यच्चान्नं देवयज्ञ इति स्मृतः॥ १६
सर्वेषामेव भूतानां बलिदानं विधानतः।
भूतयज्ञ इति प्रोक्तो भूतिदः सर्वदेहिनाम्॥ १७
सदारान् सर्वतत्त्वज्ञान् ब्राह्मणान् वेदपारगान्।
प्रणम्य तेभ्यो यद्दत्तमन्नं मानुष उच्यते॥ १८
पितॄनुद्दिश्य यद्दत्तं पितृयज्ञः स उच्यते।
एवं पञ्च महायज्ञान् कुर्यात्सर्वार्थसिद्धये॥ १९
सर्वेषां शृणु यज्ञानां ब्रह्मयज्ञः परः स्मृतः।
ब्रह्मयज्ञरतो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते॥ २०

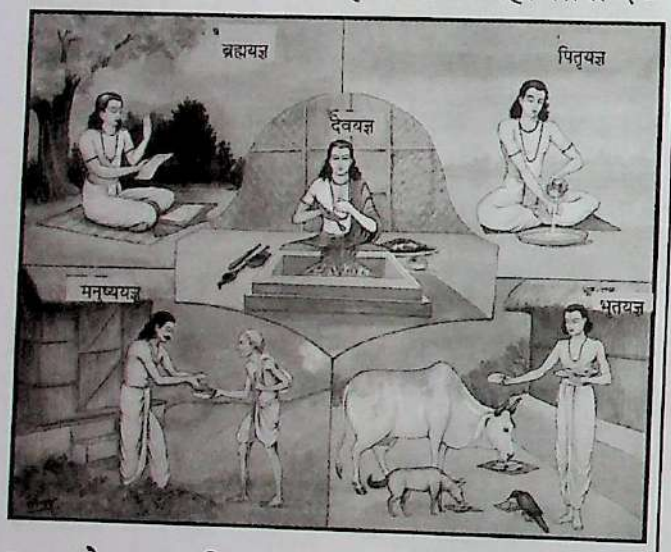

ब्रह्मयज्ञेन तुष्यन्ति सर्वे देवाः सवासवाः।
ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः शङ्करो नीललोहितः॥ २१
वेदाश्च पितरः सर्वे नात्र कार्या विचारणा।
ग्रामाद् बहिर्गतो भूत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मयज्ञवित्॥ २२
यावत्त्वदृष्टमभवदुटजानां छदं नरः।
प्राच्यामुदीच्यां च तथा प्रागुदीच्यामथापि वा॥ २३
पुण्यमाचमनं कुर्याद् ब्रह्मयज्ञार्थमेव तत्।
प्रीत्यर्थं च ऋचां विप्राः त्रिः पीत्वा प्लाव्य प्लाव्य च॥ २४
यजुषां परिमृज्यैवं द्विः प्रक्षाल्य च वारिणा।
प्रीत्यर्थं सामवेदानामुपस्पृश्य च मूर्धनि॥ २५
स्पृशेदथर्ववेदानां नेत्रे चाङ्गिरसां तथा।
नासिके ब्राह्मणोऽङ्गानां क्षाल्य क्षाल्य च वारिणा॥ २६

सभी सिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये बुद्धिमान् तथा विद्वान् वेदज्ञ ब्राह्मणको चाहिये कि वह अंगुलिके अग्रभागसे देवतर्पण, कनिष्ठ अँगुलिसे ऋषितर्पण एवं दाहिने अँगूठेसे पितृतर्पण सम्पन्न करे॥ १३½॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसी प्रकार यज्ञकर्मपरायण तथा पवित्रात्मा द्विजको ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ एवं पितृयज्ञ करना चाहिये॥ १४-१५॥

हे विप्रो! अपनी शाखाका अध्ययन करना ब्रह्मयज्ञ कहा गया है तथा अग्निमें अन्न आदिका हवन देवयज्ञ कहा गया है। उसी प्रकार सभी भूतोंके लिये विधिपूर्वक बलि देना भूतयज्ञ कहा जाता है; यह भूतयज्ञ प्राणियोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला है। वेदवेत्ता एवं तत्त्वज्ञ ब्राह्मणोंको उनकी भार्यासहित सभीको प्रणाम करके उन्हें अन्नका दान करना मनुष्ययज्ञ कहा जाता है। पितरोंके निमित्त जो श्राद्ध आदि सम्पन्न किया जाता है, उसे पितृयज्ञ कहते हैं। इस प्रकार सभी मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इन पाँच महायज्ञोंको करना चाहिये॥ १६—१९॥

सुनिये, ब्रह्मयज्ञ सभी यज्ञोंसे श्रेष्ठ यज्ञ कहा गया है। ब्रह्मयज्ञ करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकमें वास करते हुए आनन्दित होता है। ब्रह्मयज्ञसे इन्द्रसमेत सभी देवता, ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, नीललोहित शंकरजी, सभी वेद तथा पितृगण संतुष्ट हो जाते हैं; इसमें किसी प्रकारकी शंका नहीं करनी चाहिये॥ २०-२१½॥

ब्रह्मयज्ञ करनेके लिये ब्रह्मयज्ञवेत्ता ब्राह्मणको गाँवसे उतनी दूर बाहर चले जाना चाहिये, जहाँसे झोपड़ियोंकी छततक दिखायी न दे। वहाँ बैठकर पूर्व, उत्तर अथवा ईशान दिशाकी ओर मुख करके शुद्धिके लिये आचमन करना चाहिये॥ २२-२३½॥

हे ब्राह्मणो! ऋग्वेदाधिष्ठातृ देवताकी प्रीतिके लिये तीन बार चुलुकभर जल पीकर, यजुर्वेदाधिष्ठातृ देवताकी प्रीतिके लिये जलद्वारा दो बार प्रक्षालन एवं परिमार्जन करके, सामवेदाधिष्ठातृ देवताकी प्रीतिके लिये आचमन करके मूर्धाका स्पर्श करे। आंगिरससम्बन्धी अथर्ववेदके अधिष्ठातृ देवताकी प्रीतिके लिये नेत्रोंका स्पर्श करे। ब्राह्मणग्रन्थों, शिक्षा-कल्प आदि वेदांगोंकी प्रीतिके लिये

अष्टादशपुराणानां ब्रह्माद्यानां तथैव च।
तथा चोपपुराणानां सौरादीनां यथाक्रमम्॥ २७

पुण्यानामितिहासानां शैवादीनां तथैव च।
श्रोत्रे स्पृशेद्धि तुष्ट्यर्थं हृद्देश्यं तु ततः स्पृशेत्॥ २८

कल्पादीनां तु सर्वेषां कल्पवित्कल्पवित्तमाः।
एवमाचम्य चास्तीर्य दर्भपिञ्जूलमात्मनः॥ २९

कृत्वा पाणितले धीमानात्मनो दक्षिणोत्तरम्।
हेमाङ्गुलीयसंयुक्तो ब्रह्मबन्धयुतोऽपि वा॥ ३०

विधिवद् ब्रह्मयज्ञं च कुर्यात्सूत्री समाहितः।
अकृत्वा च मुनिः पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तमः॥ ३१

भुक्त्वा च सूकराणां तु योनौ वै जायते नरः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्याः शुभमिच्छता॥ ३२

ब्रह्मयज्ञादथ स्नानं कृत्वादौ सर्वथात्मनः।
तीर्थं सङ्गृह्य विधिवत्प्रविशेच्छिविरं वशी॥ ३३

बहिरेव गृहात्पादौ हस्तौ प्रक्षाल्य वारिणा।
भस्मस्नानं ततः कुर्याद्विधिवद्देहशुद्धये॥ ३४

शोध्य भस्म यथान्यायं प्रणवेनाग्निहोत्रजम्।
ज्योतिः सूर्य इति प्रातर्जुहुयादुदिते यतः॥ ३५

ज्योतिरग्निस्तथा सायं सम्यक् चानुदिते मृषा।
तस्मादुदितहोमस्थं भसितं पावनं शुभम्॥ ३६

नास्ति सत्यसमं यस्मादसत्यं पातकं च यत्।
ईशानेन शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण च॥ ३७

उरोदेशमघोरेण गुह्यं वामेन सुव्रताः।
सद्येन पादौ सर्वाङ्गं प्रणवेनाभिषेचयेत्॥ ३८

ततः प्रक्षालयेत्पादं हस्तं ब्रह्मविदां वरः।
व्यपोह्य भस्म चादाय देवदेवमनुस्मरन्॥ ३९

नासिकाको जलसे पवित्रकर स्पर्श करे। क्रमशः ब्रह्म आदि अठारह पुराणों, सौर आदि उपपुराणों, पवित्र इतिहासग्रन्थों तथा शैवादि आगमग्रन्थोंकी तुष्टिके लिये कानका स्पर्श करे। तदनन्तर हृदयदेशका स्पर्श करे। हे श्रेष्ठ कल्पवेत्ताओ! सभी कल्पग्रन्थोंके लिये भी पूर्वोक्त क्रिया करनी चाहिये॥ २४—२८$^{१}/_{२}$॥

बुद्धिमान् एवं संयमी श्रोत्रियको समाहितचित्त होकर इस प्रकार आचमन करके अपने दक्षिणसे उत्तरकी ओर कुश बिछाकर उसपर हाथ रखकर अपने हाथकी अँगुलीमें कुशाकी पवित्री अथवा सोनेकी अँगूठी धारणकर विधिपूर्वक ब्रह्मयज्ञ करना चाहिये। मुनि तथा द्विज होकर जो मनुष्य इन पाँच महायज्ञोंको किये बिना भोजन करता है, वह सूकरकी योनिमें जन्म लेता है। अतः अपने कल्याणके इच्छुक व्यक्तिको विशेष प्रयत्नके साथ इन्हें सम्पन्न करना चाहिये॥ २९—३२॥

ब्रह्मयज्ञके पश्चात् डुबकी लगाकर स्नान करके इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले उस पुरुषको चाहिये कि तीर्थका जल लेकर विधिवत् शिविरमें प्रवेश करे। घरके बाहर जलसे हाथ-पैर धोकर पुनः देहकी शुद्धिके लिये विधिपूर्वक भस्मस्नान करना चाहिये। इसके लिये अग्निहोत्रका भस्म लेकर नियमानुसार प्रणवसे उसका शोधन कर लेना चाहिये। सूर्यके ज्योतिस्वरूप होनेसे सूर्योदयके पश्चात् प्रातःकाल **'ज्योतिः सूर्य०'** इस मन्त्रसे और सायंकालमें **'ज्योतिरग्नि०'** इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये। सूर्योदय हुए बिना किया गया अग्निहोत्र व्यर्थ होता है। इसलिये सूर्योदयके बाद किये गये हवनकी भस्म पवित्र तथा कल्याणप्रद होती है॥ ३३—३६॥

सत्यके समान कुछ भी नहीं है और असत्यसे बड़ा कोई पाप नहीं होता है। हे सुव्रतो! ईशानमन्त्रसे सिर, तत्पुरुषसे मुख, अघोरसे वक्षःस्थल, वामदेवसे गुह्यस्थान, सद्योजातसे दोनों पैर तथा प्रणवसे सभी अंगोंका भस्माभिषेचन करना चाहिये॥ ३७-३८॥

ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुरुषको इस भाँति भस्म-स्नान करके हाथ-पैर धोकर हाथमें कुश लेकर देवदेव

मन्त्रस्नानं ततः कुर्यादापो हि ष्ठादिभिः क्रमात्।
पुण्यैश्चैव तथामन्त्रैर्ऋग्यजुःसामसम्भवैः॥ ४०

शिवका स्मरण करते हुए '**आपो हि ष्ठा**'* आदि मन्त्रों तथा ऋक्, यजुः एवं सामके पवित्र मन्त्रोंसे मन्त्रस्नान करना चाहिये॥ ३९-४०॥

द्विजानां तु हितायैवं कथितं स्नानमद्य ते।
सङ्क्षिप्य यः सकृत्कुर्यात्स याति परमं पदम्॥ ४१

ब्राह्मणोंके हितके लिये ही मैंने इस स्नानविधिका आज आपसे संक्षेपमें वर्णन किया है। जो मनुष्य एक बार भी इस विधिसे स्नान करेगा, वह परम गतिको प्राप्त होगा॥ ४१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पञ्चयज्ञविधानं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'पंचयज्ञविधान' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

लिङ्गार्चनविधिके अन्तर्गत महेश्वरस्वरूप होकर विविध उपचारोंद्वारा लिङ्गपूजाका विधान, लिङ्गाभिषेककी महिमा तथा अभिषेकके मन्त्र

शैलादिरुवाच

वक्ष्यामि शृणु सङ्क्षेपाल्लिङ्गार्चनविधिक्रमम्।
वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण यत्॥ १

शैलादि बोले—[हे सनत्कुमार!] सुनिये, अब मैं संक्षेपमें ही क्रमसे लिङ्गार्चन-विधिका वर्णन करूँगा; क्योंकि विस्तारके साथ इसका वर्णन तो सौ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है॥ १॥

एवं स्नात्वा यथान्यायं पूजास्थानं प्रविश्य च।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेद्देवं त्रियम्बकम्॥ २

पञ्चवक्त्रं दशभुजं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
सर्वाभरणसंयुक्तं चित्राम्बरविभूषितम्॥ ३

इस विधिसे नियमपूर्वक (त्रिविध जल, भस्म एवं मन्त्रसे) स्नानकर पूजाके स्थानपर प्रवेश करके तीन प्राणायामकर त्रिनेत्र, पंचमुख, दश भुजाओंवाले, शुद्ध स्फटिकतुल्य वर्णवाले, सभी आभूषणोंसे अलंकृत तथा विचित्र वस्त्रसे विभूषित शिवका ध्यान करना चाहिये॥ २-३॥

तस्य रूपं समाश्रित्य दाहनप्लावनादिभिः।
शैवीं तनुं समास्थाय पूजयेत्परमेश्वरम्॥ ४

उनके इस रूपका ध्यानकर दाहन तथा प्लावन आदि भूतशुद्धिकी क्रियासे युक्त शैवी देहको हृदयमें स्थापित करके परमेश्वर शिवका पूजन करना चाहिये॥ ४॥

देहशुद्धिं च कृत्वैव मूलमन्त्रं न्यसेत्क्रमात्।
सर्वत्र प्रणवेनैव ब्रह्माणि च यथाक्रमम्॥ ५

इस प्रकार देहशुद्धि करके क्रमशः मूलमन्त्र, प्रणवयुक्त [अघोरादि पंच] ब्रह्ममन्त्रोंसे देहके सभी अंगोंमें न्यास करे॥ ५॥

सूत्रे नमः शिवायेति छन्दांसि परमे शुभे।
मन्त्राणि सूक्ष्मरूपेण संस्थितानि यतस्ततः॥ ६

परम कल्याणप्रद इस '**नमः शिवाय**' सूत्रमें समस्त वेद तथा मन्त्र सूक्ष्मरूपमें विद्यमान रहते हैं।

* ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः। ॐ ता न ऊर्जे दधातन। ॐ महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः। ॐ तस्य भाजयतेह नः। ॐ उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरं गमाम वः। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ। ॐ आपो जनयथा च नः।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

न्यग्रोधबीजे न्यग्रोधस्तथा सूत्रे तु शोभने।
महत्यपि महद् ब्रह्म संस्थितं सूक्ष्मवत्स्वयम्॥ ७

सेचयेदर्चनस्थानं गन्धचन्दनवारिणा।
द्रव्याणि शोधयेत्पश्चात्क्षालनप्रोक्षणादिभिः॥ ८

क्षालनं प्रोक्षणं चैव प्रणवेन विधीयते।
प्रोक्षणी चार्घ्यपात्रं च पाद्यपात्रमनुक्रमात्॥ ९

तथा ह्याचमनीयार्थं कल्पितं पात्रमेव च।
स्थापयेद्विधिना धीमानवगुण्ठ्य यथाविधि॥ १०

दर्भैराच्छादयेच्चैव प्रोक्षयेच्छुद्धवारिणा।
तेषु तेष्वथ सर्वेषु क्षिपेत्तोयं सुशीतलम्॥ ११

प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्य बुद्धिमान्।
उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत्॥ १२

जातिकङ्कोलकर्पूरबहुमूलतमालकम्।
चूर्णयित्वा यथान्यायं क्षिपेदाचमनीयके॥ १३

एवं सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चन्दनं तथा।
कर्पूरं च यथान्यायं पुष्पाणि विविधानि च॥ १४

कुशाग्रमक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानि च।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं चार्घ्यपात्रके॥ १५

कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकम्।
दापयेत्प्रोक्षणीपात्रे भसितं प्रणवेन च॥ १६

न्यसेत्पञ्चाक्षरं चैव गायत्रीं रुद्रदेवताम्।
केवलं प्रणवं वापि वेदसारमनुत्तमम्॥ १७

अथ सम्प्रोक्षयेत्पश्चाद् द्रव्याणि प्रणवेन तु।
प्रोक्षणीपात्रसंस्थेन ईशानाद्यैश्च पञ्चभिः॥ १८

पार्श्वतो देवदेवस्य नन्दिनं मां समर्चयेत्।
दीप्तानलायुतप्रख्यं त्रिनेत्रं त्रिदशेश्वरम्॥ १९

बालेन्दुमुकुटं चैव हरिवक्त्रं चतुर्भुजम्।
पुष्पमालाधरं सौम्यं सर्वाभरणभूषितम्॥ २०

जिस प्रकार वटके बीजमें विशाल वटवृक्षका भाव उपस्थित रहता है, उसी प्रकार इस पवित्र एवं महत्युक्त सूत्रमें महान् ब्रह्म सूक्ष्मरूपसे साक्षात् विराजमान है॥ ६-७॥

पूजाके स्थानको गन्ध तथा चन्दनसे युक्त जलके द्वारा सेचित करना चाहिये; पुनः सभी पूजनद्रव्योंको क्षालन, प्रोक्षण आदिसे शोधित कर लेना चाहिये। क्षालन तथा प्रोक्षण प्रणवसे ही किया जाता है॥ ८½॥

विवेकी पुरुषको चाहिये कि वह प्रोक्षणीपात्र, अर्घ्यपात्र, पाद्यपात्र तथा आचमनपात्रको भलीभाँति अनुक्रमसे स्थापित करे और फिर विधिपूर्वक अवगुंठन करे। पुनः उन सभी पात्रोंमें शुद्ध एवं शीतल जल डालकर उन्हें कुशोंसे ढककर उनपर शुद्ध जलका प्रोक्षण करना चाहिये॥ ९—११॥

तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुषको उन पात्रोंमें भलीभाँति देखकर विभिन्न द्रव्य प्रणवपूर्वक डालने चाहिये। पाद्यपात्रमें उशीर तथा चन्दन डाले और जाति, कंकोल, कंपूर, शतावरी एवं तमालका चूर्ण बनाकर इन्हें उचित मात्रामें आचमनीय पात्रमें डाले। चंदन, कपूर तथा विविध प्रकारके पुष्प सभी पात्रोंमें डालने चाहिये॥ १२—१४॥

कुशका अग्रभाग, अक्षत, यव, धान, तिल, घी, सफेद सरसों, पुष्प तथा भस्म—इन्हें अर्घ्यपात्रमें डालना चाहिये। कुश, पुष्प, यव, धान, शतावरी, तमाल एवं भस्म—इन द्रव्योंको प्रणवसे प्रोक्षणीपात्रमें डालना चाहिये॥ १५-१६॥

तत्पश्चात् पञ्चाक्षर मन्त्र, रुद्रगायत्री अथवा केवल वेदसाररूप सर्वोत्तम प्रणवसे इन पात्रोंको अभिमन्त्रित करना चाहिये॥ १७॥

इसके अनन्तर प्रणवयुक्त ईशान (**ॐ ईशानः सर्वविद्यानाम्०**) आदि पाँच याजुष मन्त्रोंसे प्रोक्षणीपात्रमें स्थित जलके द्वारा सभी पूजनद्रव्योंका प्रोक्षण करे॥ १८॥

पुनः देवदेव शिवजीके दाहिनी ओर स्थित हजारों देदीप्यमान अग्निके सदृश वर्णवाले, बालचन्द्रमाको मुकुटरूपमें सिरपर धारण करनेवाले, वानरके तुल्य

उत्तरे चात्मनः पुण्यां भार्यां च मरुतां शुभाम्।
सुयशां सुव्रतां चाम्बापादमण्डनतत्पराम्॥ २१

मुखवाले, चार भुजाओंवाले, पुष्पकी माला धारण करनेवाले,सौम्य स्वरूपवाले तथा सभी अलंकारोंसे सुशोभित मुझ त्रिनेत्र नन्दीका विधिवत् पूजन करना चाहिये। पुनः उत्तरभागमें विराजमान पुण्यमयी, स्वर्ण-सदृश आभावाली, सुन्दर, कीर्तिशालिनी, पतिव्रता एवं माता पार्वतीके चरणोंके मण्डनमें सतत तत्पर रहनेवाली देवीरूपिणी मेरी भार्याकी पूजा करनी चाहिये॥ १९—२१॥

एवं पूज्य प्रविश्यान्तर्भवनं परमेष्ठिनः।
दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं भक्त्या पञ्चमूर्धसु पञ्चभिः॥ २२

गन्धपुष्पैस्तथा धूपैर्विविधैः पूज्य शङ्करम्।
स्कन्दं विनायकं देवीं लिङ्गशुद्धिं च कारयेत्॥ २३

इस प्रकार हम दोनोंकी पूजा करके परमेष्ठी शिवके मन्दिरमें प्रवेशकर शिवजीके पाँचों मस्तकोंपर सद्योजात आदि पाँच मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिये। पुनः गन्ध, पुष्प, धूप तथा विविध उपचारोंसे शंकर, कार्तिकेय, गणेशजी एवं पार्वतीकी पूजा करके शिवलिङ्गका निर्माल्य (अर्पित चढ़ावेका अवशेष) दूरकर लिङ्गकी शुद्धि करनी चाहिये॥ २२-२३॥

जप्त्वा सर्वाणि मन्त्राणि प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
कल्पयेदासनं पश्चात्पद्माख्यं प्रणवेन तत्॥ २४

पुनः सभी मन्त्रोंके आदिमें प्रणव (ॐ) तथा अन्तमें 'नमः' लगाकर जप करनेके पश्चात् परमेश्वरको प्रणवमन्त्रके द्वारा अष्टदल-कमलरूप आसन निवेदित करना चाहिये॥ २४॥

तस्य पूर्वदलं साक्षादणिमामयमक्षरम्।
लघिमा दक्षिणं चैव महिमा पश्चिमं तथा॥ २५

प्राप्तिस्तथोत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य तु।
ईशित्वं नैर्ऋतं पत्रं वशित्वं वायुगोचरे॥ २६

सर्वज्ञत्वं तथैशान्यं कर्णिका सोम उच्यते।
सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याधः पावकः स्वयम्॥ २७

उस आसनका पूर्वदल अविनाशी तथा साक्षात् अणिमासिद्धिस्वरूप है। उसका दक्षिणदल लघिमा, पश्चिमदल महिमा, उत्तरदल प्राप्ति, अग्निकोणका दल प्राकाम्य, नैर्ऋत्यकोणका दल ईशित्व, वायव्यकोणका दल वशित्व एवं ईशानकोणका दल सर्वज्ञत्वसिद्धिरूप है। उस पद्मासनकी कर्णिका (मध्यभाग) सोममण्डल कही जाती है। सोममण्डलके नीचे सूर्यमण्डल तथा उसके भी नीचे साक्षात् अग्निमण्डल है॥ २५—२७॥

धर्मादयो विदिक्ष्वेते त्वनन्तं कल्पयेत्क्रमात्।
अव्यक्तादिचतुर्दिक्षु सोमस्यान्ते गुणत्रयम्॥ २८

आत्मत्रयं ततश्चोर्ध्वं तस्यान्ते शिवपीठिका।
सद्योजातं प्रपद्यामीत्यावाह्य परमेश्वरम्॥ २९

चारों उपदिशाओं (आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य तथा ईशान)-में धर्म आदि (धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य), पूर्वादि चारों दिशाओं (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर)-में अव्यक्तादि (अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार एवं चित्त), सोममण्डलके ऊपर तीन गुण (सत्त्व, रज, तम), इनके ऊपर तीन आत्माएँ (विश्व, तैजस तथा प्राज्ञ) और उसके ऊपर शिवपीठिका विराजमान है; ऐसे अनन्त-

वामदेवेन मन्त्रेण स्थापयेदासनोपरि।
सान्निध्यं रुद्रगायत्र्या अघोरेण निरुद्ध्य च॥ ३०

ईशानः सर्वविद्यानामिति मन्त्रेण पूजयेत्।
पाद्यमाचमनीयं च विभोश्चार्घ्यं प्रदापयेत्॥ ३१

स्नापयेद्विधिना रुद्रं गन्धचन्दनवारिणा।
पञ्चगव्यं विधानेन गृह्य पात्रेऽभिमन्त्र्य च॥ ३२

प्रणवेनैव गव्यैस्तु स्नापयेच्च यथाविधि।
आज्येन मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन च॥ ३३

पुण्यैर्द्रव्यैर्महादेवं प्रणवेनाभिषेचयेत्।
जलभाण्डैः पवित्रैस्तु मन्त्रैस्तोयं क्षिपेत्ततः॥ ३४

शुद्धिं कृत्वा यथान्यायं सितवस्त्रेण साधकः।
कुशापामार्गकर्पूरजातिपुष्पकचम्पकैः ॥ ३५

करवीरैः सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलैः।
आपूर्य पुष्पैः सुशुभैः चन्दनाद्यैश्च तज्जलम्॥ ३६

न्यसेन्मन्त्राणि तत्तोये सद्योजातादिकानि तु।
सुवर्णकलशेनाथ तथा वै राजतेन वा॥ ३७

ताम्रेण पद्मपत्रेण पालाशेन दलेन वा।
शङ्खेन मृन्मयेनाथ शोधितेन शुभेन वा॥ ३८

सकूर्चेन सपुष्पेण स्नापयेन्मन्त्रपूर्वकम्।
मन्त्राणि ते प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वार्थसिद्धये॥ ३९

यैर्लिङ्गं सकृदप्येवं स्नाप्य मुच्येत मानवः।
पवमानेन मन्त्रज्ञाः तथा वामीयकेन च॥ ४०

रुद्रेण नीलरुद्रेण श्रीसूक्तेन शुभेन च।
रजनीसूक्तकेनैव चमकेन शुभेन च॥ ४१

स्वरूप आसनकी कल्पना करनी चाहिये॥ २८½॥

पुनः '**सद्योजातं प्रपद्यामि०**' इस मन्त्रसे परमेश्वर शिवका आवाहन करके वामदेवमन्त्रसे आसनके ऊपर उन्हें स्थापित करे। फिर रुद्रगायत्री मन्त्रसे सान्निध्य, अघोर मन्त्रसे निरोधन तथा '**ईशानः सर्वविद्यानाम्०**' इस मन्त्रसे शिवकी पूजा करे। पाद्य, अर्घ्य एवं आचमन परमेश्वरको अर्पित करे। पुनः गन्ध तथा चन्दनयुक्त जलसे उन्हें विधिपूर्वक स्नान कराये॥ २९—३१½॥

इसके बाद पात्रमें विधिविधानसे पंचगव्य बनाकर उसे प्रणवसे अभिमन्त्रित करके पुनः प्रणवमन्त्रसे उस पंचगव्यसे शिवको विधिवत् स्नान कराये। इसके अनन्तर प्रणव तथा वेदमन्त्रोंका पाठ करते हुए गोघृतसे, मधुसे, इक्षुरससे एवं अन्य पवित्र द्रव्योंसे महादेवका अभिषेक करना चाहिये। इसके बाद पवित्र जलपात्रोंसे जल छोड़कर साधकको भलीभाँति शिवलिङ्गका प्रक्षालन (शुद्ध स्नान) कर लेना चाहिये॥ ३२—३४॥

इसके बाद साधकको श्वेत वस्त्रोंसे यथाविधि जलका शोधन करके स्वर्ण, चाँदी या ताम्रपात्र अथवा कमलपत्र, पलाशपत्र, शंख अथवा शोधित सुन्दर मृत्तिकापात्र लेकर उसे पूर्वोक्त शुद्ध जलसे पूर्ण कर लेना चाहिये। पुनः उसमें कुश, अपामार्ग, कर्पूर, जातिपुष्प, चम्पा, श्वेत करवीर, मल्लिका, कमल, उत्पल आदि सुन्दर पुष्प, चन्दन आदि डालकर उस जलको सद्योजात आदि मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके मन्त्रोच्चारके साथ उस जलकुम्भसे शिवजीका अभिषेक करना चाहिये॥ ३५—३८½॥

[नन्दीश्वर कहते हैं—हे सनत्कुमारजी!] अब मैं सभी मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाले उन मन्त्रोंको आपको बताऊँगा; जिनका पाठ करके एक बार भी शिवलिङ्गका अभिषेक करनेसे मनुष्य भवबन्धनसे छूट जाता है॥ ३९½॥

[सूतजी बोले—] हे मन्त्रवेत्ता ऋषिगण! पवमान (ऋग्वेदीय पावमानी ऋचाएँ), वामसूक्त (ऋक्० १।१६४), रुद्राध्याय (शुक्लयजुर्वेद अ० १६), अथर्ववेदीय नीलरुद्र (११।२), पवित्र श्रीसूक्त (ऋग्वेद), रात्रिसूक्त (ऋग्वेद), कल्याणप्रद चमक (यजुर्वेद अ०

होतारेणाथ शिरसा अथर्वेण शुभेन च।
शान्त्या चाथ पुनः शान्त्या भारुण्डेनारुणेन च॥ ४२

वारुणेन च ज्येष्ठेन तथा वेदव्रतेन च।
तथान्तरेण पुण्येन सूक्तेन पुरुषेण च॥ ४३

त्वरितेनैव रुद्रेण कपिना च कपर्दिना।
आवोराजेति साम्ना तु बृहच्चन्द्रेण विष्णुना॥ ४४

विरूपाक्षेण स्कन्देन शतऋग्भिः शिवैस्तथा।
पञ्चब्रह्मैश्च सूत्रेण केवलप्रणवेन च॥ ४५

स्नापयेद्देवदेवेशं सर्वपापप्रशान्तये।
वस्त्रं शिवोपवीतं च तथा ह्याचमनीयकम्॥ ४६

गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमन्नं क्रमेण तु।
तोयं सुगन्धितं चैव पुनराचमनीयकम्॥ ४७

मुकुटं च शुभं छत्रं तथा वै भूषणानि च।
दापयेत्प्रणवेनैव मुखवासादिकानि च॥ ४८

ततः स्फटिकसङ्काशं देवं निष्कलमक्षरम्।
कारणं सर्वदेवानां सर्वलोकमयं परम्॥ ४९

ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैर्ऋषिदेवैरगोचरम्।
वेदविद्भिर्हि वेदान्तैस्त्वगोचरमिति श्रुतिः॥ ५०

आदिमध्यान्तरहितं भेषजं भवरोगिणाम्।
शिवतत्त्वमिति ख्यातं शिवलिङ्गे व्यवस्थितम्॥ ५१

प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयेल्लिङ्गमूर्धनि।
स्तोत्रं जपेच्च विधिना नमस्कारं प्रदक्षिणम्॥ ५२

अर्घ्यं दत्त्वाथ पुष्पाणि पादयोस्तु विकीर्य च।
प्रणिपत्य च देवेशमात्मन्यारोपयेच्छिवम्॥ ५३

एवं सङ्क्षिप्य कथितं लिङ्गार्चनमनुत्तमम्।
आभ्यन्तरं प्रवक्ष्यामि लिङ्गार्चनमिहाद्य ते॥ ५४

१८), होतार, मंगलमय अथर्वशिर, शान्ति, भारुण्ड, अरुण, वारुण, ज्येष्ठ, वेदव्रत, आन्तर, पुण्यप्रद पुरुषसूक्त (यजुर्वेद), त्वरितरुद्र, कपि, कपर्दी, सामवेदीय **आ वो राज०** (मन्त्र-संख्या ६९), बृहच्चन्द्र, विष्णु, विरूपाक्ष, स्कन्द, शिवकी सौ ऋचा, पंचब्रह्म (सद्योजातादि पाँच मन्त्र), **नमः शिवाय** तथा केवल प्रणवमन्त्रसे ही सभी पापोंके शमनहेतु देवदेवेश शिवका अभिषेक करना चाहिये॥ ४०—४५ १/२॥

तत्पश्चात् भगवान् शंकरको वस्त्र, यज्ञोपवीत, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, सुगन्धित जल, पुनः आचमन, [रत्नजटित] मुकुट, सुन्दर छत्र, आभूषण तथा मुखवास (ताम्बूल) आदि उपचार प्रणव-मन्त्रक्रमसे अर्पित करना चाहिये॥ ४६—४८॥

इसके बाद स्फटिकके सदृश वर्णवाले, कलारहित, अविनाशी, समस्त देवताओंके भी कारण, सभी लोकोंमें व्याप्त, परात्पर, ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-रुद्र आदि देवताओं तथा देवर्षियोंसे अगम्य, श्रुतियोंके अनुसार वेदों एवं उपनिषदोंके ज्ञाताओंसे भी अगोचर, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, भवरोगसे संतप्त प्राणियोंके लिये औषधरूप प्रसिद्ध शिवतत्त्व शिवलिङ्गमें प्रतिष्ठित है—इस प्रकारसे शिवलिङ्गमें महादेवका ध्यान करना चाहिये॥ ४९—५१॥

पुनः लिङ्गके शीर्षपर प्रणव मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये और विधिपूर्वक स्तोत्रपाठ करके नमस्कार तथा प्रदक्षिणा करनी चाहिये। इसके बाद अर्घ्य प्रदान करके महादेवके चरणोंमें पुष्प अर्पितकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करे एवं देवाधिदेव शिव मुझमें समाहित हैं—ऐसी भावना करे॥ ५२-५३॥

[हे सनत्कुमारजी!] इस प्रकार मैंने शिवलिङ्गके उत्तम पूजन-विधानका वर्णन संक्षेपमें कर दिया और अब आपको आभ्यन्तर लिङ्गार्चनविधि बताऊँगा॥ ५४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे लिङ्गार्चनविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'लिङ्गार्चनविधि' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinashrshashi 1985_Lingamahapurana_Section6_1_Back

अट्ठाईसवाँ अध्याय

भगवान् महेश्वरके आभ्यन्तरपूजनका स्वरूप, सकल तथा निष्कल तत्त्वकी व्याख्या, छब्बीस तत्त्वोंका परिगणन एवं सम्पूर्ण चराचर जगत्की शिवरूपता

शैलादिरुवाच

आग्नेयं सौरममृतं बिम्बं भाव्यं ततोपरि।
गुणत्रयं च हृदये तथा चात्मत्रयं क्रमात्॥ १

तस्योपरि महादेवं निष्कलं सकलाकृतिम्।
कान्तार्धारूढदेहं च पूजयेद् ध्यानविद्यया॥ २

ततो बहुविधं प्रोक्तं चिन्त्यं तत्रास्ति चेद्यतः।
चिन्तकस्य ततश्चिन्ता अन्यथा नोपपद्यते॥ ३

तस्माद्ध्येयं तथा ध्यानं यजमानः प्रयोजनम्।
स्मरेत्तन्नान्यथा जातु बुध्यते पुरुषस्य ह॥ ४

पुरे शेते पुरं देहं तस्मात्पुरुष उच्यते।
याज्यं यज्ञेन यजते यजमानस्तु स स्मृतः॥ ५

ध्येयो महेश्वरो ध्यानं चिन्तनं निर्वृतिः फलम्।
प्रधानपुरुषेशानं याथातथ्यं प्रपद्यते॥ ६

इह षड्विंशको ध्येयो ध्याता वै पञ्चविंशकः।
चतुर्विंशकमव्यक्तं महदाद्यास्तु सप्त च॥ ७

महांस्तथा त्वहङ्कारं तन्मात्रं पञ्चकं पुनः।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा बुद्धीन्द्रियाणि च॥ ८

मनश्च पञ्चभूतानि शिवः षड्विंशकस्ततः।
स एव भर्ता कर्ता च विधेरपि महेश्वरः॥ ९

हिरण्यगर्भं रुद्रोऽसौ जनयामास शङ्करः।
विश्वाधिकश्च विश्वात्मा विश्वरूप इति स्मृतः॥ १०

शैलादि बोले—अपने हृदयमें अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डलका ध्यान करे। पुनः क्रमसे उसके ऊपर तीन गुण, तीन आत्मा एवं उसके ऊपर कलायुक्त स्वरूपवाले, कलारहित अर्धनारीश्वर महादेवकी भावना करके ध्यानयोगके द्वारा उनका पूजन करना चाहिये॥ १-२॥

यदि चिन्तकके ध्यानावस्थित चित्तमें चिन्त्य तत्त्व [बहुविध कहे जानेके कारण] अनेक रूपोंमें प्राप्त भी हो, तब भी अभेद बुद्धिके कारण चिन्ता करना उचित नहीं है॥ ३॥

इसीलिये यजमानको चाहिये कि अपने परम प्रयोजन जो ध्येयरूप सदाशिव हैं, उनका ही ध्यान-स्मरण और ज्ञान प्राप्त करे, अन्यथा पुरुष इस शरीरमें ब्रह्म (सदाशिव)-को कभी नहीं प्राप्त कर सकेगा॥ ४॥

देह ही पुर है। उस पुरमें शयन करनेके कारण ही जीव पुरुष कहा जाता है। जो यज्ञसे याज्यका यजन करता है, वह यजमान कहा जाता है॥ ५॥

महेश्वर ध्येय हैं, उनका चिन्तन ही ध्यान है, मोक्ष ही जीवनका प्रयोजन है—इन तथ्योंको भलीभाँति जाननेवाला ही वास्तविक रूपसे प्रधान पुरुष शिवको प्राप्त कर सकता है॥ ६॥

यहाँ कुल छब्बीस तत्त्व हैं। इनमें छब्बीसवाँ ध्येय है, पच्चीसवाँ ध्याता (जीव) है तथा चौबीसवाँ तत्त्व अव्यक्त अर्थात् प्रकृति है। महत् आदि अर्थात् महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच तन्मात्राएँ—ये सात, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत तथा मन—ये ही छब्बीस तत्त्व हैं। इनमें छब्बीसवाँ तत्त्व शिव है। वही ब्रह्माका तथा संसारका रचयिता और भरणकर्ता है॥ ७—९॥

उसी रुद्रने हिरण्यगर्भको उत्पन्न किया। भगवान् शंकर विश्वाधिक अर्थात् जगत्के परम कारण, विश्वात्मा तथा विश्वरूप कहे गये हैं॥ १०॥

विना यथा हि पितरं मातरं तनयास्त्विह।
न जायन्ते तथा सोमं विना नास्ति जगत्त्रयम्॥ ११

जिस प्रकार माता-पिताके बिना पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकते; उसी प्रकार उमासहित शिवके बिना तीनों जगत्की उत्पत्ति सम्भव नहीं है॥ ११॥

सनत्कुमार उवाच

कर्ता यदि महादेवः परमात्मा महेश्वरः।
तथा कारयिता चैव कुर्वतोऽल्पात्मनस्तथा॥ १२

नित्यो विशुद्धो बुद्धश्च निष्कलः परमेश्वरः।
त्वयोक्तो मुक्तिदः किं वा निष्कलश्चेत्करोति किम्॥ १३

सनत्कुमार बोले—यदि परमात्मा महेश्वर शिव ही सब कुछ करने तथा करानेवाले हैं, साथ ही आपने यह भी कहा है कि वे परमेश्वर शिव नित्य, विशुद्ध, चैतन्य, निष्कल तथा मुक्तिदाता हैं; तो फिर वे अल्पात्मा जीवोंको बन्ध-मोक्ष क्यों देते हैं? और फिर निष्कल अर्थात् निष्क्रिय होते हुए वे ऐसा कैसे कर सकते हैं?॥ १२-१३॥

शैलादिरुवाच

कालः करोति सकलं कालं कलयते सदा।
निष्कलं च मनः सर्वं मन्यते सोऽपि निष्कलः॥ १४

शैलादि बोले—काल सम्पूर्ण जगत्का सृजन करता है और परमेश्वर कुछ भी करनेके लिये कालको सदा प्रेरणा प्रदान करता है अर्थात् कालके माध्यमसे परमेश्वर जीवोंको बन्ध-मोक्ष देता है। निष्क्रिय मन शिवका ध्यान करता है, इसलिये वे भी निष्क्रिय स्वरूपवाले हैं॥ १४॥

कर्मणा तस्य चैवेह जगत्सर्वं प्रतिष्ठितम्।
किमत्र देवदेवस्य मूर्त्यष्टकमिदं जगत्॥ १५

विनाकाशं जगन्नैव विना क्ष्मां वायुना विना।
तेजसा वारिणा चैव यजमानं तथा विना॥ १६

भानुना शशिना लोकस्तस्यैतास्तनवः प्रभोः।
विचारतस्तु रुद्रस्य स्थूलमेतच्चराचरम्॥ १७

उसी परमेश्वरके कर्मसे यह समग्र जगत् प्रतिष्ठित है; क्योंकि यह जगत् उस देवदेव महेश्वरकी अष्टमूर्ति है। आकाश, पृथ्वी, वायु, तेज, जल, यजमान, सूर्य तथा चन्द्रमा—इन आठ मूर्तियोंके बिना यह जगत् नहीं हो सकता है। ये सब उसी प्रभुके स्वरूप हैं। अतएव विचार करनेसे यही ज्ञात होता है कि यह चराचर जगत् उसी परमेश्वरके स्थूल रूपमें व्यक्त हो रहा है॥ १५—१७॥

सूक्ष्मं वदन्ति ऋषयो यन्न वाच्यं द्विजोत्तमाः।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह॥ १८

हे श्रेष्ठ द्विजो! ऋषिगण कहते हैं कि परमेश्वरका जो सूक्ष्म रूप है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता; क्योंकि वाणी उनके सूक्ष्म रूपका वर्णन करनेमें असमर्थ होकर मनसहित वापस लौट आती है अर्थात् वह मन तथा वाणीसे सर्वथा अगम्य है॥ १८॥

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन।
न भेतव्यं तथा तस्माज्ज्ञात्वानन्दं पिनाकिनः॥ १९

ब्रह्म अर्थात् रुद्रका ही वाचक आनन्द है—ऐसा जाननेवाला विद्वान् कहीं भी भयभीत नहीं होता। अतएव पिनाकी शिवका आनन्दमय स्वरूप जानकर भयभीत नहीं होना चाहिये॥ १९॥

विभूतयश्च रुद्रस्य मत्वा सर्वत्र भावतः।
सर्वं रुद्र इति प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥ २०

सर्वत्र रुद्रकी ही विभूतियाँ व्याप्त हैं—ऐसा विश्वासपूर्वक जानकर तत्त्वदर्शी मुनियोंने कहा है कि

नमस्कारेण सततं गौरवात्परमेष्ठिनः।
सर्वं तु खल्विदं ब्रह्म सर्वो वै रुद्र ईश्वरः॥ २१

पुरुषो वै महादेवो महेशानः परः शिवः।
एवं विभुर्विनिर्दिष्टो ध्यानं तत्रैव चिन्तनम्॥ २२

सब कुछ रुद्र ही है॥ २०॥

परमेष्ठी शिवकी महिमाको समझकर उन्हें सतत नमस्कार करते हुए इस सम्पूर्ण जगत्को ब्रह्म अर्थात् शिवसे व्याप्त मानना चाहिये। उन्हीं शर्व, रुद्र, ईश्वर, पुरुष, महादेव, महेशान, परात्पर, शिव तथा विभुको सर्वत्र विराजमान समझकर उन्हींका ध्यान एवं चिन्तन करना चाहिये॥ २१-२२॥

चतुर्व्यूहेण मार्गेण विचार्यालोक्य सुव्रत।
संसारहेतुः संसारो मोक्षहेतुश्च निर्वृतिः॥ २३

हे सुव्रत! चतुर्व्यूहमार्गसे अर्थात् ध्येय, ध्यान, यजमान और प्रयोजनरूपसे विचार करके तथा देख करके जो परमेश्वरको जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है। संसारका हेतु ममत्व तथा मोक्षका हेतु विराग है। चिन्तक योगीके लिये चतुर्व्यूहमार्ग मुक्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन कहा गया है॥ २३$^{१}/_{२}$॥

चतुर्व्यूहः समाख्यातः चिन्तकस्येह योगिनः।
चिन्ता बहुविधा ख्याता सैकत्र परमेष्ठिना॥ २४

ब्रह्माजीने बुद्धिके लिये बहुत प्रकारकी चिन्ताएँ रचीं; किंतु रुद्रका चिन्तन सभी चिन्ताओंसे श्रेष्ठ कहा गया है; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ २४$^{१}/_{२}$॥

सुनिष्ठेत्यत्र कथिता रुद्रं रौद्री न संशयः।
ऐन्द्री चैन्द्रे तथा सौम्या सोमे नारायणे तथा॥ २५

सूर्ये वह्नौ च सर्वेषां सर्वत्रैवं विचारतः।
सैवाहं सोऽहमित्येवं द्विधा संस्थाप्य भावतः॥ २६

इन्द्रकी ऐन्द्री चिन्ता, सोमकी सौम्या नामक चिन्ता, नारायणकी चिन्ता, सूर्यकी चिन्ता तथा अग्निकी चिन्ता—इन सबकी चिन्ता वास्तवमें रुद्रकी ही चिन्ता है। इस प्रकार विचार करके वह चिन्ता मैं ही हूँ तथा वह परमेश्वर भी मैं ही हूँ—जो भक्त इन दोनों बातोंको श्रद्धापूर्वक अपने मनमें स्थापित किये रहता है, वह परमेश्वरसे भिन्न नहीं है। अतः इस प्रकारकी चिन्ता (चिन्तन) ब्राह्मी चिन्ता कही गयी है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २५-२६$^{१}/_{२}$॥

भक्तोऽसौ नास्ति यस्तस्माच्चिन्ता ब्राह्मी न संशयः।
एवं ब्रह्ममयं ध्यायेत्पूर्वं विप्र चराचरम्॥ २७

चराचरविभागं च त्यजेदभिमतं स्मरन्।
त्याज्यं ग्राह्यमलभ्यं च कृत्यं चाकृत्यमेव च॥ २८

हे विप्र! इस प्रकार पहले यह ध्यान करना चाहिये कि यह स्थावर-जंगमरूप जगत् ब्रह्ममय है; पुनः ब्रह्मात्मक शिवका स्मरण करते हुए चर-अचरका विभाग भी छोड़ देना चाहिये अर्थात् चराचरमें भिन्नताका भाव नहीं रखना चाहिये॥ २७$^{१}/_{२}$॥

यस्य नास्ति सुतृप्तस्य तस्य ब्राह्मी न चान्यथा।
आभ्यन्तरं समाख्यातमेवमभ्यर्चनं क्रमात्॥ २९

जिस पुरुषके लिये कुछ भी त्याज्य (त्यागनेयोग्य), ग्राह्य (लेनेयोग्य), अलभ्य (प्राप्त न होनेयोग्य), कृत्य (करनेयोग्य) तथा अकृत्य (न करनेयोग्य) नहीं रह जाता; उस परम संतुष्ट पुरुषकी चिन्ता ब्राह्मी चिन्ता है; इसमें संदेह नहीं है॥ २८$^{१}/_{२}$॥

आभ्यन्तरार्चकाः पूज्या नमस्कारादिभिस्तथा।
विरूपा विकृताश्चापि न निन्द्या ब्रह्मवादिनः॥ ३०

आभ्यन्तरार्चकाः सर्वे न परीक्ष्या विजानता।
निन्दका एव दुःखार्ता भविष्यन्त्यल्पचेतसः॥ ३१

यथा दारुवने रुद्रं विनिन्द्य मुनयः पुरा।
तस्मात्सेव्या नमस्कार्याः सदा ब्रह्मविदस्तथा॥ ३२

वर्णाश्रमविनिर्मुक्ता वर्णाश्रमपरायणैः॥ ३३

इस प्रकार मैंने क्रमसे आभ्यन्तर पूजनका वर्णन कर दिया। आभ्यन्तर अर्चन करनेवाले पुरुष नमस्कार आदिके द्वारा सदा पूजनीय हैं। ऐसे ब्रह्मवादी पूजक विरूप तथा विकृत हों; तो भी उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये॥ २९-३०॥

विद्वान् पुरुषको जान-बूझकर किन्हीं भी आभ्यन्तर पूजककी परीक्षा नहीं लेनी चाहिये। अल्प बुद्धिवाले ऐसे निन्दक उसी प्रकार दुःखसे पीड़ित होंगे, जैसे प्राचीन कालमें दारुवनमें रुद्रकी निन्दा करके मुनियोंने कष्ट प्राप्त किया था। अतएव वर्णाश्रममें रहनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि वे वर्णाश्रमसे अतीत ब्रह्मवेत्ताओंकी सदा सेवा करें तथा उन्हें नमस्कार करें॥ ३१—३३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवार्चनतत्त्वसंख्यादिवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवार्चनतत्त्वसंख्यादिवर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

देवदारुवनका वृत्तान्त, अतिथिमाहात्म्यमें सुदर्शनमुनिका आख्यान तथा संन्यासधर्मका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

इदानीं श्रोतुमिच्छामि पुरा दारुवने विभो।
प्रवृत्तं तद्वनस्थानां तपसा भावितात्मनाम्॥ १

कथं दारुवनं प्राप्तो भगवान्नीललोहितः।
विकृतं रूपमास्थाय चोर्ध्वरेता दिगम्बरः॥ २

किं प्रवृत्तं वने तस्मिन् रुद्रस्य परमात्मनः।
वक्तुमर्हसि तत्त्वेन देवदेवस्य चेष्टितम्॥ ३

सनत्कुमारजी बोले—हे विभो! प्राचीनकालमें दारुवनमें तपस्यासे भावित आत्मावाले उन वनवासी मुनियोंके साथ जो भी घटित हुआ, उसे मैं इस समय सुनना चाहता हूँ॥ १॥

ऊर्ध्वरेता दिगम्बर भगवान् शिव विकृत रूप धारण करके दारुवनमें क्यों गये? उस वनमें परमात्मा रुद्रके साथ क्या हुआ? उन देवाधिदेव शिवके क्रिया-कलापोंका भी यथार्थ रूपसे वर्णन करनेकी कृपा कीजिये॥ २-३॥

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा श्रुतिसारविदां वरः।
शिलादसूनुर्भगवान् प्राह किञ्चिद्भवं हसन्॥ ४

सूतजी बोले—[हे ऋषिगण!] उन सनत्कुमारका यह वचन सुनकर श्रुतिसारविदोंमें वरिष्ठ शिलादपुत्र भगवान् नन्दिकेश्वर कुछ-कुछ हँसते हुए उनसे कहने लगे॥ ४॥

शैलादिरुवाच

मुनयो दारुगहने तपस्तेपुः सुदारुणम्।
तुष्ट्यर्थं देवदेवस्य सदारतनयाग्नयः॥ ५

शैलादि बोले—एक बार घने देवदारुवनमें देवाधिदेव रुद्रकी प्रसन्नताके लिये अपने स्त्री-पुत्रादिसहित पंचाग्निका सेवन करते हुए मुनिगण कठोर तप कर रहे थे॥ ५॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

तुष्टो रुद्रो जगन्नाथश्चेकितानो वृषध्वजः।
धूर्जटिः परमेशानो भगवान्नीललोहितः॥ ६

प्रवृत्तिलक्षणं ज्ञानं ज्ञातुं दारुवनौकसाम्।
परीक्षार्थं जगन्नाथः श्रद्धया क्रीडया च सः॥ ७

निवृत्तिलक्षणज्ञानप्रतिष्ठार्थं च शङ्करः।
देवदारुवनस्थानां प्रवृत्तिज्ञानचेतसाम्॥ ८

विकृतं रूपमास्थाय दिग्वासा विषमेक्षणः।
मुग्धो द्विहस्तः कृष्णाङ्गो दिव्यं दारुवनं ययौ॥ ९

उनके तपसे प्रसन्न जगन्नाथ, चेकितान, वृषध्वज, धूर्जटि, परमेशान, नीललोहित भगवान् रुद्र दारुवनमें निवास करनेवाले उन मुनियोंके प्रवृत्ति-लक्षण तथा ज्ञानकी जानकारी करनेके लिये एवं उनमें श्रद्धाभावकी परीक्षा करनेके लिये और साथ ही प्रवृत्तिज्ञानसे युक्त चित्तवाले उन देवदारुवनवासी मुनियोंमें निवृत्ति-लक्षण तथा ज्ञान स्थापित करनेके निमित्त लीलापूर्वक विकृत रूप धारण करके अलौकिक दारुवनमें पहुँचे। उस समय शंकरजी कृष्ण वर्णवाले, दो भुजाओंवाले, तीन आँखोंवाले, दिगम्बर तथा मोहक स्वरूपवाले थे॥ ६—९॥

मन्दस्मितं च भगवान् स्त्रीणां मनसिजोद्भवम्।
भ्रूविलासं च गानं च चकारातीव सुन्दरः॥ १०

अत्यन्त सुन्दर रूपवाले भगवान् शिव मन्द मुसकान तथा भ्रूविलास करते हुए गीत गाकर स्त्रियोंमें कामभावना उत्पन्न कर रहे थे॥ १०॥

सम्प्रेक्ष्य नारीवृन्दं वै मुहुर्मुहुरनङ्गहा।
अनङ्गवृद्धिमकरोदतीव मधुराकृतिः॥ ११

कामदेवका संहार करनेवाले तथा अत्यन्त मोहक आकृतिवाले भगवान् शिव वहाँ नारीसमूहको बार-बार देखकर उनके भीतर कामभावनाको बढ़ा रहे थे॥ ११॥

वने तं पुरुषं दृष्ट्वा विकृतं नीललोहितम्।
स्त्रियः पतिव्रताश्चापि तमेवान्वयुरादरात्॥ १२

वनमें उस विकृत तथा नीललोहित वर्णवाले पुरुषको देखकर पतिव्रता स्त्रियाँ भी प्रेमपूर्वक उनके पीछे-पीछे चलने लगीं॥ १२॥

वनोटजद्वारगताश्च नार्यो
विस्रस्तवस्त्राभरणा विचेष्टाः।
लब्ध्वा स्मितं तस्य मुखारविन्दाद्
द्रुमालयस्थास्तमथान्वयुस्ताः॥ १३

आरण्यक कुटीरोंके द्वारतक आयी हुई स्त्रियोंके वस्त्र एवं अलंकार शिथिल हो गये। वे मूर्च्छित-सी हो गयीं, उन लीलामय शिवके मुखारविन्दकी मोहक मुसकानको पाकर वृक्षोंके आश्रयमें रहनेवाली वे नारियाँ उनके पीछे-पीछे चल दीं॥ १३॥

दृष्ट्वा काश्चिद्भवं नार्यो मदघूर्णितलोचनाः।
विलासबाह्यास्ताश्चापि भ्रूविलासं प्रचक्रिरे॥ १४

शिवजीको देखकर प्रौढ़ावस्थावाली होनेपर भी कुछ स्त्रियाँ मदमत्त होकर आँखें घुमाने लगीं तथा भौंहोंका संचालन करने लगीं॥ १४॥

अथ दृष्ट्वा परा नार्यः किञ्चित्प्रहसिताननाः।
किञ्चिद्विस्रस्तवसनाः स्रस्तकाञ्चीगुणा जगुः॥ १५

तदनन्तर शिवको देखकर दूसरी स्त्रियाँ मुसकानयुक्त मुखवाली हो गयीं, उनके वस्त्र कुछ शिथिल-से हो गये, कांचीबन्धन भी ढीले हो गये; वे मिलकर गाने लगीं॥ १५॥

काश्चित्तदा तं विपिने तु दृष्ट्वा
विप्राङ्गनाः स्रस्तनवांशुकं वा।
स्वान् स्वान् विचित्रान् वलयान् प्रविध्य
मदान्विता बन्धुजनांश्च जग्मुः॥ १६

उस समय शिवको विपिनमें देखकर कुछ ऋषिपत्नियाँ तो शिथिल नूतन वस्त्रों तथा अपने-अपने विचित्र वलयोंको फेंककर मदान्वित हो स्वजनोंके पास पहुँचीं॥ १६॥

काचित्तदा तं न विवेद दृष्ट्वा
विवासना स्रस्तमहांशुका च।

उस समय शिथिल वस्त्रवाली कोई तो शिवको

शाखाविचित्रान् विटपान् प्रसिद्धान्
मदान्विता बन्धुजनांस्तथान्याः ॥ १७

काश्चिज्जगुस्तं ननृतुर्निपेतुश्च धरातले।
निषेदुर्गजवच्चान्या प्रोवाच द्विजपुङ्गवाः ॥ १८

अन्योन्यं सस्मितं प्रेक्ष्य चालिलिङ्गुः समन्ततः।
निरुध्य मार्गं रुद्रस्य नैपुणानि प्रचक्रिरे ॥ १९

को भवानिति चाहुस्तं आस्यतामिति चापराः।
कुत्रेत्यथ प्रसीदेति जजल्पुः प्रीतमानसाः ॥ २०

विपरीता निपेतुर्वै विस्रस्तांशुकमूर्धजाः।
पतिव्रताः पतीनां तु सन्निधौ भवमायया ॥ २१

दृष्ट्वा श्रुत्वा भवस्तासां चेष्टावाक्यानि चाव्ययः।
शुभं वाप्यशुभं वापि नोक्तवान् परमेश्वरः ॥ २२

दृष्ट्वा नारीकुलं विप्रास्तथाभूतं च शङ्करम्।
अतीव परुषं वाक्यं जजल्पुस्ते मुनीश्वराः ॥ २३

तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यन्त शङ्करे।
यथादित्यप्रकाशेन तारका नभसि स्थिताः ॥ २४

श्रूयते ऋषिशापेन ब्रह्मणस्तु महात्मनः।
समृद्धश्रेयसां योनिर्यज्ञो वै नाशमाप्तवान् ॥ २५

भृगोरपि च शापेन विष्णुः परमवीर्यवान्।
प्रादुर्भावान् दश प्राप्तो दुःखितश्च सदा कृतः ॥ २६

इन्द्रस्यापि च धर्मज्ञ छिन्नं सवृषणं पुरा।
ऋषिणा गौतमेनोर्व्यां क्रुद्धेन विनिपातितम् ॥ २७

देखकर विशिष्ट वासनायुक्त हो गयी तथा अन्य स्त्रियाँ मतवाली-सी होकर विचित्र शाखावाले प्रसिद्ध वृक्षोंको एवं घनिष्ठ बन्धुजनोंतकको नहीं पहचानती थीं ॥ १७ ॥

हे द्विजश्रेष्ठो! कुछ स्त्रियाँ उनके पास जाकर नाचने लगीं और जमीनपर गिर पड़ीं। कुछ स्त्रियाँ हाथीकी भाँति बैठ गयीं। कोई दूसरी स्त्री कुछ बोलने लगी ॥ १८ ॥

मुसकराते हुए एक-दूसरेको देखकर वे परस्पर आलिंगन करने लगीं। वे सभी ओरसे शिवजीका मार्ग रोककर अनेक प्रकारके हाव-भाव दर्शाने लगीं ॥ १९ ॥

कुछ स्त्रियाँ उनसे कहने लगीं कि 'आप कौन हैं? बैठिये। अन्य स्त्रियाँ भी प्रसन्नचित्त होकर कहने लगीं—आप कहाँ जा रहे हैं? आप हम सबपर प्रसन्न होइये' ॥ २० ॥

भगवान् शंकरकी मायाके प्रभावसे अपने पतियोंके सम्मुख ही पतिव्रता स्त्रियोंके वस्त्रपरिधान, केश आदि अस्त-व्यस्त हो गये और वे कामुक स्त्रियोंकी भाँति स्वेच्छाचारितापूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करने लगीं ॥ २१ ॥

उन स्त्रियोंके हाव-भाव देखकर तथा उनके वचन सुनकर निर्विकार परमेश्वर शिव शुभ अथवा अशुभ कुछ भी नहीं बोले ॥ २२ ॥

उस प्रकारकी चेष्टावाली नारियोंके समूहको देखकर वे विप्र मुनीश्वर दिगम्बरवेशधारी शिवको उस अवस्थामें देखकर [शंकरजीके प्रति] अत्यन्त कठोर वचन कहने लगे। किंतु उनकी सभी तपस्याएँ शंकरजीके सम्मुख उसी प्रकार निष्फल सिद्ध हुईं, जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे आकाश-मण्डलमें स्थित तारागण निस्तेज हो जाते हैं ॥ २३-२४ ॥

ऐसा सुना जाता है कि महात्मा ब्रह्माका सभी समृद्धियों तथा कल्याणोंका उत्पत्तिस्थलस्वरूप यज्ञ ऋषिके शापसे विनष्ट हो गया था ॥ २५ ॥

भृगुमुनिके शापसे परम ऐश्वर्यशाली विष्णुको भी दस अवतार लेने पड़े तथा अनेक दुःख सहने पड़े ॥ २६ ॥

हे धर्मज्ञ सनत्कुमार! क्रुद्ध ऋषि गौतमने शापसे इन्द्रका अण्डकोषसहित गुह्यांग काटकर पृथ्वीपर गिरा

गर्भवासो वसूनां च शापेन विहितस्तथा।
ऋषीणां चैव शापेन नहुषः सर्पतां गतः॥ २८
क्षीरोदश्च समुद्रोऽसौ निवासः सर्वदा हरेः।
द्वितीयश्चामृताधारो ह्यपेयो ब्राह्मणैः कृतः॥ २९
अविमुक्तेश्वरं प्राप्य वाराणस्यां जनार्दनः।
क्षीरेण चाभिषिच्येशं देवदेवं त्रियम्बकम्॥ ३०
श्रद्धया परया युक्तो देहाश्लेषामृतेन वै।
निषिक्तेन स्वयं देवः क्षीरेण मधुसूदनः॥ ३१
सेचयित्वाथ भगवान् ब्रह्मणा मुनिभिः समम्।
क्षीरोदं पूर्ववच्चक्रे निवासं चात्मनः प्रभुः॥ ३२
धर्मश्चैव तथा शप्तो माण्डव्येन महात्मना।
वृष्णयश्चैव कृष्णेन दुर्वासाद्यैर्महात्मभिः॥ ३३
राघवः सानुजश्चापि दुर्वासेन महात्मना।
श्रीवत्सश्च मुनेः पादपतनात्तस्य धीमतः॥ ३४
एते चान्ये च बहवो विप्राणां वशमागताः।
वर्जयित्वा विरूपाक्षं देवदेवमुमापतिम्॥ ३५
एवं हि मोहितास्तेन नावबुध्यन्त शङ्करम्।
अत्युग्रवचनं प्रोचुश्चोग्रोऽप्यन्तरधीयत॥ ३६
तेऽपि दारुवनात्तस्मात्प्रातः संविग्नमानसाः।
पितामहं महात्मानमासीनं परमासने॥ ३७

गत्वा विज्ञापयामासुः प्रवृत्तमखिलं विभोः।
शुभे दारुवने तस्मिन् मुनयः क्षीणचेतसः॥ ३८

दिया था॥ २७॥

मुनि वसिष्ठके शापसे वसुओंको गर्भमें वास करना पड़ा, अगस्त्य आदि ऋषियोंके शापसे राजा नहुषको सर्प होना पड़ा था॥ २८॥

भगवान् विष्णुका निवासस्थान तथा अमृतका आधारस्वरूप वह क्षीरसागर ब्राह्मणोंके द्वारा सदाके लिये दूसरे अपेय जलवाले समुद्रके रूपमें कर दिया गया था॥ २९॥

जनार्दन भगवान् विष्णुने वाराणसीपुरीमें पहुँचकर अविमुक्तेश्वर देवाधिदेव त्र्यम्बकेश्वरका दूधसे अभिषेक करके परम श्रद्धासे युक्त होकर देहसंस्पर्शजन्य अमृतस्वरूप क्षीरद्वारा स्वयं उन मधुसूदनने ब्रह्माजी एवं मुनियोंके साथ भगवान् शिवको अभिषिक्त करके पूर्ववत् क्षीरसागरको अपना निवासस्थान बनाया॥ ३०—३२॥

महात्मा माण्डव्यने धर्मको शापित किया तथा श्रीकृष्णकी प्रेरणासे दुर्वासा आदि महात्माओंके द्वारा वृष्णिवंशी शापित हुए थे॥ ३३॥

महान् आत्मावाले दुर्वासामुनिने लक्ष्मणसहित श्रीरामको शाप दे दिया और श्रीवत्स (श्रीयुक्त वक्षःस्थलवाले) विष्णुको भृगुमुनिका चरण-प्रहार सहना पड़ा॥ ३४॥

देवाधिदेव विरूपाक्ष उमापति शिवको छोड़कर ये तथा अन्य बहुत-से लोग भी विप्रों (ब्राह्मणों)-के वशवर्ती हुए हैं॥ ३५॥

उन्हीं शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण वे मुनिगण शंकरको नहीं जान पाये और अत्यन्त कठोर वचन बोलने लगे, फिर भगवान् शिव भी अन्तर्धान हो गये॥ ३६॥

तत्पश्चात् व्याकुल चित्तवाले वे मुनिगण प्रातःकाल होते ही उस दारुवनसे ब्रह्माजीके पास पहुँचे। वहाँ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान महात्मा ब्रह्मासे उस सुन्दर दारुवनमें रहनेवाले क्षीण चेतनावाले मुनियोंने शंकरका सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥ ३७-३८॥

सोऽपि सञ्चिन्त्य मनसा क्षणादेव पितामहः।
तेषां प्रवृत्तमखिलं पुण्ये दारुवने पुरा॥ ३९

उत्थाय प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रणिपत्य भवाय च।
उवाच सत्वरं ब्रह्मा मुनीन् दारुवनालयान्॥ ४०

धिग्युष्मान् प्राप्तनिधनान् महानिधिमनुत्तमम्।
वृथाकृतं यतो विप्रा युष्माभिर्भाग्यवर्जितैः॥ ४१

यस्तु दारुवने तस्मिंल्लिङ्गी दृष्टोऽप्यलिङ्गिभिः।
युष्माभिर्विकृताकारः स एव परमेश्वरः॥ ४२

गृहस्थैश्च न निन्द्यास्तु सदा ह्यतिथयो द्विजाः।
विरूपाश्च सुरूपाश्च मलिनाश्चाप्यपण्डिताः॥ ४३

सुदर्शनेन मुनिना कालमृत्युरपि स्वयम्।
पुरा भूमौ द्विजाग्र्येण जितो ह्यतिथिपूजया॥ ४४

अन्यथा नास्ति सन्तर्तुं गृहस्थैश्च द्विजोत्तमैः।
त्यक्त्वा चातिथिपूजां तामात्मनो भुवि शोधनम्॥ ४५

गृहस्थोऽपि पुरा जेतुं सुदर्शन इति श्रुतः।
प्रतिज्ञामकरोज्जायां भार्यामाह पतिव्रताम्॥ ४६

सुव्रते सुभ्रु सुभगे शृणु सर्वं प्रयत्नतः।
त्वया वै नावमन्तव्या गृहे ह्यतिथयः सदा॥ ४७

सर्व एव स्वयं साक्षादतिथिर्यत्पिनाकधृक्।
तस्मादतिथये दत्त्वा आत्मानमपि पूजय॥ ४८

एवमुक्त्वाथ सन्तप्ता विवशा सा पतिव्रता।
पतिमाह रुदन्ती च किमुक्तं भवता प्रभो॥ ४९

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह सुदर्शनः।
देयं सर्वं शिवायार्ये शिव एवातिथिः स्वयम्॥ ५०

तस्मात्सर्वे पूजनीयाः सर्वेऽप्यतिथयः सदा।
एवमुक्ता तदा भर्त्रा भार्या तस्य पतिव्रता॥ ५१

शेषामिवाज्ञामादाय मूर्ध्ना सा प्राचरत्तदा।
परीक्षितुं तथा श्रद्धां तयोः साक्षाद् द्विजोत्तमाः॥ ५२

उन ब्रह्माजीने भी क्षणभरमें ही मनमें सोचकर पवित्र दारुवनमें उनका पूर्वघटित सम्पूर्ण वृत्तान्त जान लिया॥ ३९॥

अपने आसनसे तत्काल उठकर और दोनों हाथ जोड़कर ब्रह्माजीने मन-ही-मन शिवजीको प्रणाम करके दारुवनमें रहनेवाले उन मुनियोंसे कहा—हे विप्रो! विनाशको प्राप्त तुम सभीको धिक्कार है; क्योंकि सर्वोत्तम निधि प्राप्त करके भी तुम अभागोंने उसे गँवा दिया॥ ४०-४१॥

तुम अलिंगियोंने उस दारुवनमें जिस विकृत आकारवाले पुरुषको देखा था; वे साक्षात् परमेश्वर शिव ही थे॥ ४२॥

हे विप्रो! गृहस्थोंको अतिथियोंकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये; वे अतिथि विकृत रूपवाले, सुन्दर रूपवाले, मलिन तथा मूर्ख—चाहे जैसे भी हों॥ ४३॥

पूर्वकालमें पृथ्वीपर द्विजोंमें अग्रणी सुदर्शनमुनिने अतिथिपूजाके प्रभावसे साक्षात् कालमृत्युको भी जीत लिया था॥ ४४॥

भवसागरसे पार होने तथा आत्मशुद्धिके लिये अतिथिपूजाको छोड़कर गृहस्थों एवं श्रेष्ठ द्विजोंके लिये लोकमें अन्य कोई भी उपाय नहीं है॥ ४५॥

पूर्वकालमें सुदर्शन नामसे विख्यात गृहस्थ मुनिने मृत्युपर विजय प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा की और अपनी संतानयुक्त पतिव्रता पत्नीसे कहा—हे सुव्रते! हे सुन्दर भौहोंवाली! हे सौभाग्यवति! सुनो, तुम पूर्ण प्रयत्नके साथ अतिथियोंका सदा सत्कार करना और कभी भी उनका निरादर न करना॥ ४६-४७॥

अतिथि साक्षात् पिनाकधारी शिवका ही स्वरूप होता है, अतएव सब कुछ अर्पित करके भी अतिथिकी पूजा करो। सुदर्शनने पुनः कहा—हे आर्ये! अतिथि साक्षात् शिव होता है; शिवस्वरूप अतिथिको सब कुछ प्रदान करना चाहिये। अतः सभी अतिथियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये॥ ४८—५०½॥

पतिके ऐसा कहनेपर वह पातिव्रतपरायण मुनिभार्या पतिकी आज्ञाको देवप्रतिमाके समक्ष अर्पित किये गये

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

धर्मो द्विजोत्तमो भूत्वा जगामाथ मुनेर्गृहम्।
तं दृष्ट्वा चार्चयामास सार्घाद्यैरनघा द्विजम्॥ ५३

सम्पूजितस्तया तां तु प्राह धर्मो द्विजः स्वयम्।
भद्रे कुतः पतिर्धीमांस्तव भर्ता सुदर्शनः॥ ५४

अन्नाद्यैरलमद्यार्ये स्वं दातुमिह चार्हसि।
सा च लज्जावृता नारी स्मरन्ती कथितं पुरा॥ ५५

भर्त्रा न्यमीलयन्नेत्रे चचाल च पतिव्रता।
किं चैत्याह पुनस्तं वै धर्मे चक्रे च सा मतिम्॥ ५६

निवेदितुं किलात्मानं तस्मै पत्युरिहाज्ञया।
एतस्मिन्नन्तरे भर्ता तस्या नार्याः सुदर्शनः॥ ५७

गृहद्वारं गतो धीमांस्तामुवाच महामुनिः।
एह्येहि क्व गता भद्रे तमुवाचातिथिः स्वयम्॥ ५८

भार्यया त्वनया सार्धं मैथुनस्थोऽहमद्य वै।
सुदर्शन महाभाग किंकर्तव्यमिहोच्यताम्॥ ५९

सुरतान्तस्तु विप्रेन्द्र सन्तुष्टोऽहं द्विजोत्तम।
सुदर्शनस्ततः प्राह सुप्रहृष्टो द्विजोत्तमः॥ ६०

भुङ्क्ष्व चैनां यथाकामं गमिष्येऽहं द्विजोत्तम।
हृष्टोऽथ दर्शयामास स्वात्मानं धर्मराट् स्वयम्॥ ६१

प्रददौ चेप्सितं सर्वं तमाह च महाद्युतिः।
एषा न भुक्ता विप्रेन्द्र मनसापि सुशोभना॥ ६२

मया चैषा न सन्देहः श्रद्धां ज्ञातुमिहागतः।
जितो वै यस्त्वया मृत्युर्धर्मेणैकेन सुव्रत॥ ६३

अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा प्रययौ च सः।
तस्मात्तथा पूजनीयाः सर्वे ह्यतिथयः सदा॥ ६४

बहुनात्र किमुक्तेन भाग्यहीना द्विजोत्तमाः।
तमेव शरणं तूर्णं गन्तुमर्हथ शङ्करम्॥ ६५

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणो ब्राह्मणर्षभाः।
ब्रह्माणमभिवन्द्यार्ताः प्रोचुराकुलितेक्षणाः॥ ६६

ब्राह्मणा ऊचुः

नापेक्षितं महाभाग जीवितं विकृताः स्त्रियः।
दृष्टोऽस्माभिर्महादेवो निन्दितो यस्त्वनिन्दितः॥ ६७

पुष्प आदिकी भाँति शिरोधार्य करके अतिथि-सत्कारमें प्रवृत्त हो गयी॥ ५१ १/२॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! उन दोनोंकी श्रद्धाकी परीक्षा करनेके लिये एक सुन्दर ब्राह्मणका रूप धारण करके साक्षात् धर्म मुनिके घर पधारे। उस ब्राह्मणको देखकर विशुद्ध हृदयवाली उस मुनिभार्याने अर्घ्य आदिसे उस ब्राह्मणका पूजन किया॥ ५२-५३॥

उस स्त्रीके द्वारा भलीभाँति पूजित होकर ब्राह्मण-वेषधारी साक्षात् धर्मने उससे कहा—हे कल्याणि! तुम्हारे बुद्धिसम्पन्न पति सुदर्शन कहाँ हैं? तत्पश्चात् अपने पतिद्वारा कही गयी बातका स्मरण करती हुई उस स्त्रीने पतिकी आज्ञाको ध्यानमें रखकर धर्मरूप उस ब्राह्मणके लिये आतिथ्य-सेवा करनेका मनमें निश्चय किया॥ ५४—५६ १/२॥

इसी बीच उस स्त्रीके पति प्रज्ञासम्पन्न सुदर्शन घरके द्वारपर आ गये। मुनिवर सुदर्शनने अपनी भार्याको आवाज दी—हे भद्रे! तुम कहाँ चली गयी हो? तब साक्षात् धर्मरूप अतिथि उनसे बोले—हे महाभाग सुदर्शन! मैं इस समय तुम्हारी इस भार्याके आतिथ्यसे परम सन्तुष्ट हूँ॥ ५७—६० १/२॥

तदनन्तर धर्मराजने अपना वास्तविक रूप उन्हें दिखाया और मनोवांछित वर देकर महान् कान्तिवाले धर्मने उनसे कहा—हे विप्रेन्द्र! मैं यहाँ केवल तुम्हारी श्रद्धाकी परीक्षा करनेके निमित्त आया हूँ। हे सुव्रत! तुमने अपने एकमात्र अतिथिपूजारूप धर्मसे मृत्युतकको जीत लिया है॥ ६१—६३॥

'अहो, इस तपस्वीका ऐसा ओज'—इस प्रकार कहकर धर्म वहाँसे चले गये। [हे मुनियो!] इसलिये सभी अतिथियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। हे अभागे मुनीश्वरो! अब अधिक कहनेसे क्या लाभ? तुम लोग शीघ्र ही उन्हीं महादेवकी शरणमें जाओ॥ ६४-६५॥

उन ब्रह्माजीका वह वचन सुनकर व्याकुल नेत्रोंवाले वे द्विजश्रेष्ठ दुःखित होकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना करते हुए कहने लगे॥ ६६॥

विप्रगण बोले—हे महाभाग! स्त्रियाँ तो विकार-युक्त होती ही हैं, जिनके लिये हमलोगोंने अपना जीवन

शप्तश्च सर्वगः शूली पिनाकी नीललोहितः।
अज्ञानाच्छापजा शक्तिः कुण्ठितास्य निरीक्षणात्॥ ६८

वक्तुमर्हसि देवेश संन्यासं वै क्रमेण तु।
द्रष्टुं वै देवदेवेशमुग्रं भीमं कपर्दिनम्॥ ६९

पितामह उवाच

आदौ वेदानधीत्यैव श्रद्धया च गुरोः सदा।
विचार्यार्थं मुनेर्धर्मान् प्रतिज्ञाय द्विजोत्तमाः॥ ७०

ग्रहणान्तं हि वा विद्वानथ द्वादशवार्षिकम्।
स्नात्वाहृत्य च दारान् वै पुत्रानुत्पाद्य सुव्रतान्॥ ७१

वृत्तिभिश्चानुरूपाभिस्तान् विभज्य सुतान् मुनिः।
अग्निष्टोमादिभिश्चेष्ट्वा यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विभुम्॥ ७२

पूजयेत्परमात्मानं प्राप्यारण्यं विभावसौ।
मुनिर्द्वादशवर्षं वा वर्षमात्रमथापि वा॥ ७३

पक्षद्वादशकं वापि दिनद्वादशकं तु वा।
क्षीरभुक् संयतः शान्तः सर्वान् सम्पूजयेत्सुरान्॥ ७४

इष्ट्वैवं जुहुयादग्नौ यज्ञपात्राणि मन्त्रतः।
अप्सु वै पार्थिवं न्यस्य गुरवे तैजसानि तु॥ ७५

स्वधनं सकलं चैव ब्राह्मणेभ्यो विशङ्कया।
प्रणिपत्य गुरुं भूमौ विरक्तः संन्यसेद्यतिः॥ ७६

निकृत्य केशान् सशिखानुपवीतं विसृज्य च।
पञ्चभिर्जुहुयादप्सु भूः स्वाहेति विचक्षणः॥ ७७

नष्ट कर डाला। जिन अनिन्द्य महादेवने कृपा करके हमलोगोंको दर्शन दिया था, उन्हींका हमलोगोंने अनादर किया॥ ६७॥

हमने उन सर्वव्यापी, शूलधारी, पिनाकी तथा नीललोहित वर्णवाले शिवजीको अज्ञानतासे शाप दे दिया; किंतु उनके देखनेमात्रसे हमारे शापकी शक्ति कुण्ठित हो गयी॥ ६८॥

हे देवेश! अब आप कृपा करके हमें संन्यास-धर्मके विषयमें क्रमसे बताइये; जिससे हमलोग उन देवाधिदेव, उग्र, भीम तथा कपर्दी शिवका दर्शन करनेमें समर्थ हो सकें॥ ६९॥

पितामह बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! सर्वप्रथम श्रद्धापूर्वक गुरुसे निरन्तर वेदका अध्ययन करे, उसका अर्थ समझे और धर्मोंका ज्ञान करे॥ ७०॥

इस प्रकार विद्वान्‌को चाहिये कि बारह वर्षोंतक वेदाध्ययन करनेके अनन्तर वेदव्रत नामक स्नानसे संस्कारित होकर विवाह करके पुनः सदाचारी पुत्र उत्पन्न करके उन पुत्रोंके अनुकूल वृत्तिका उपाय करके उनमें धनादिका विभाजन कर दे। तत्पश्चात् अग्निष्टोम आदि यज्ञोंसे यज्ञेश्वर विभुका यजन करके मुनिको वनमें आकर अग्निमें परमेश्वरकी पूजा करनी चाहिये॥ ७१-७२ १/२॥

वनमें रहते हुए मुनिको बारह वर्षतक या एक वर्ष (बारह माह)-तक या बारह पक्ष (छः माह)-तक अथवा बारह दिनतक दुग्धका सेवन करते हुए शान्ति तथा संयमपूर्वक सभी देवताओंकी पूजा करनी चाहिये॥ ७३-७४॥

इस प्रकार यजन-पूजनके अनन्तर यज्ञसम्बन्धी काष्ठपात्र मन्त्रपूर्वक अग्निमें हवन कर दे, मिट्टीके पात्र जलमें छोड़ दे तथा धातुके पात्र गुरुको अर्पित कर दे और निष्कपट भावसे अपना सम्पूर्ण धन ब्राह्मणोंको देकर गुरुको दण्डवत् प्रणाम करके विरक्त यति संन्यासधर्मका आचरण करे॥ ७५-७६॥

शिखासहित बालोंको कटवाकर तथा यज्ञोपवीत त्यागकर विद्वान् यतिको '**भूः स्वाहा**' इस मन्त्रसे जलमें

ततश्चोर्ध्वं चरेदेवं यतिः शिवविमुक्तये।
व्रतेनानशनेनापि तोयवृत्त्यापि वा पुनः॥ ७८

पर्णवृत्त्या पयोवृत्त्या फलवृत्त्यापि वा यतिः।
एवं जीवन्मृतो नो चेत्षण्मासाद्वत्सरात्तु वा॥ ७९

प्रस्थानादिकमायासं स्वदेहस्य चरेद्यतिः।
शिवसायुज्यमाप्नोति कर्मणाप्येवमाचरन्॥ ८०

सद्योऽपि लभते मुक्तिं भक्तियुक्तो दृढव्रताः॥ ८१

त्यागेन वा किं विधिनाप्यनेन
भक्तस्य रुद्रस्य शुभैर्व्रतैश्च।
यज्ञैश्च दानैर्विविधैश्च होमै-
र्लब्धैश्च शास्त्रैर्विविधैश्च वेदैः॥ ८२

श्वेतेनैवं जितो मृत्युर्भवभक्त्या महात्मना।
वोऽस्तु भक्तिर्महादेवे शङ्करे परमात्मनि॥ ८३

पाँच आहुति देनी चाहिये॥ ७७॥

इसके पश्चात् यतिको शिवसायुज्यरूपी विमुक्तिके लिये आगेकी भी साधना करनी चाहिये। इसके लिये छः माह अथवा वर्षपर्यन्त यति अनशन करे अथवा जल पीकर या पत्ते खाकर या दूध पीकर या फल खाकर जीवन-निर्वाह करे। ऐसा करनेपर यदि मृत्यु नहीं हुई और वह जीवित रहता है, तो उसे अपने देहके प्रस्थान आदि अर्थात् स्थूल शरीरके त्यागका प्रयास करना चाहिये। ऐसा आचरण करते हुए वह यति अपने कर्मसे भी शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ७८—८०॥

परंतु हे दृढ़व्रती मुनियो! शिवजीमें भक्ति रखनेवाला प्राणी शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है। महादेवजीके भक्तको त्याग, विधि, महान् व्रतों, यज्ञों, विविध प्रकारके दानों, होमों, विविध शास्त्रों तथा वेदोंसे क्या प्रयोजन! महान् आत्मावाले श्वेतमुनिने महादेवकी भक्तिसे ही मृत्युतकको जीत लिया था। अतएव परमेश्वर महादेव शिवजीके प्रति आपलोग भी भक्तिपरायण हों॥ ८१—८३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे देवदारुवनवृत्तान्तवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'देवदारुवनवृत्तान्तवर्णन' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

शिवाराधनाके माहात्म्यमें श्वेतमुनिका आख्यान

शैलादिरुवाच

एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्राह्मणर्षभाः।
श्वेतस्य च कथां पुण्यामपृच्छन् परमर्षयः॥ १

पितामह उवाच

श्वेतो नाम मुनिः श्रीमान् गतायुर्गिरिगह्वरे।
सक्तो ह्यभ्यर्च्य यद्भक्त्या तुष्टाव च महेश्वरम्॥ २

रुद्राध्यायेन पुण्येन नमस्तेत्यादिना द्विजाः।
ततः कालो महातेजाः कालप्राप्तं द्विजोत्तमम्॥ ३

नेतुं सञ्चिन्त्य विप्रेन्द्राः सान्निध्यमकरोन्मुनेः।
श्वेतोऽपि दृष्ट्वा तं कालं कालप्राप्तोऽपि शङ्करम्॥ ४

नन्दिकेश्वर बोले—तत्पश्चात् उन ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर द्विजश्रेष्ठ महर्षियोंने उनसे श्वेतमुनिकी पुण्यप्रद कथा पूछी—॥ १॥

पितामह बोले—समाप्त आयुवाले श्वेत नामक एक श्रीयुक्त मुनि गिरिकी गुफामें शिवाराधनमें रत थे। हे द्विजो! **'नमस्ते रुद्र मन्यवे'** इत्यादि रुद्राध्यायसे भक्तिपूर्वक महेश्वरकी आराधना करके श्वेतमुनिने उन्हें प्रसन्न कर लिया॥ २½॥

हे विप्रेन्द्रो! तदनन्तर द्विजोंमें श्रेष्ठ श्वेतमुनिको समाप्त आयुवाला जानकर उन्हें ले जानेके लिये महातेजस्वी काल मुनिके पास पहुँचा॥ ३½॥

पूजयामास पुण्यात्मा त्रियम्बकमनुस्मरन्।
त्रियम्बकं यजेदेवं सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्॥ ५

किं करिष्यति मे मृत्युर्मृत्योर्मृत्युरहं यतः।
तं दृष्ट्वा सस्मितं प्राह श्वेतं लोकभयङ्करः॥ ६

एह्येहि श्वेत चानेन विधिना किं फलं तव।
रुद्रो वा भगवान् विष्णुर्ब्रह्मा वा जगदीश्वरः॥ ७

कः समर्थः परित्रातुं मया ग्रस्तं द्विजोत्तम।
अनेन मम किं विप्र रौद्रेण विधिना प्रभोः॥ ८

नेतुं यस्योत्थितश्चाहं यमलोकं क्षणेन वै।
यस्माद् गतायुस्त्वं तस्मान्मुने नेतुमिहोद्यतः॥ ९

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भैरवं धर्ममिश्रितम्।
हा रुद्र रुद्र रुद्रेति ललाप मुनिपुङ्गवः॥ १०

तं प्राह च महादेवं कालं सम्प्रेक्ष्य वै दृशा।
नेत्रेण बाष्पमिश्रेण सम्भ्रान्तेन समाकुलः॥ ११

श्वेत उवाच

त्वया किं काल नो नाथश्चास्ति चेद्धि वृषध्वजः।
लिङ्गेऽस्मिन् शङ्करो रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः॥ १२

अतीव भवभक्तानां मद्विधानां महात्मनाम्।
विधिना किं महाबाहो गच्छ गच्छ यथागतम्॥ १३

ततो निशम्य कुपितस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयङ्करः।
श्रुत्वा श्वेतस्य तद्वाक्यं पाशहस्तो भयावहः॥ १४

सिंहनादं महत्कृत्वा चास्फाट्य च मुहुर्मुहुः।
बबन्ध च मुनिं कालः कालप्राप्तं तमाह च॥ १५

सन्निकट मृत्युवाले पुण्यात्मा श्वेतमुनि भी उस कालको देखकर त्रिनेत्र शिवका स्मरण करते हुए उनकी आराधना करने लगे। वे ऐसा कहते हुए ध्यानपरायण थे कि जब मैं सुखकर सम्बन्धवाले तथा जगत्का पोषण करनेवाले त्रिनेत्र शिवका यजन कर रहा हूँ, तो मृत्यु मेरा क्या कर लेगी; क्योंकि मैं तो कालका भी काल हूँ॥ ४-५½॥

उन श्वेतमुनिको देखकर लोकोंको भयभीत करनेवाला वह काल मुसकराकर उनसे बोला—हे श्वेत! अब तुम मेरी ओर आओ; इस पूजा-पाठ आदिसे तुम्हें क्या लाभ! हे द्विजवर! भगवान् विष्णु, ब्रह्मा अथवा जगदीश्वर रुद्र—इनमें भला कौन मेरे द्वारा ग्रास बनाये गये जीवको बचा सकनेमें समर्थ है? हे विप्र! यह रुद्रपूजा मुझ शक्तिमान्का क्या कर सकती है? जिस किसीको भी ले जानेके लिये मैं उठ खड़ा होता हूँ, उसे क्षणभरमें यमलोक पहुँचा देता हूँ। हे मुने! क्योंकि तुम समाप्त आयुवाले हो चुके हो, अतः तुम्हें ले जानेहेतु मैं यहाँ आया हूँ॥ ६—९॥

उस कालका वह धर्ममिश्रित भयावह वचन सुनकर मुनिवर श्वेत 'हा रुद्र! हा रुद्र! हा रुद्र!' कहकर विलाप करने लगे और अश्रुपूरित तथा व्याकुल नेत्रोंसे एवं कातर दृष्टिसे शिवलिङ्गको निहारते हुए अत्यन्त व्यग्रचित्त होकर उस कालसे कहने लगे—॥ १०-११॥

श्वेतमुनि बोले—हे काल! तुम मेरा क्या बिगाड़ सकते हो; क्योंकि सभी देवताओंको उत्पन्न करनेवाले हमारे स्वामी वृषध्वज शंकर रुद्र इस लिङ्गमें विराजमान हैं॥ १२॥

विधिका विधान शिवजीके प्रति अतिशय भक्ति रखनेवाले मुझसदृश महात्माओंका क्या कर सकता है? अतएव हे महाबाहो! आप जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार चले जाइये॥ १३॥

तदनन्तर श्वेतमुनिका वैसा वचन सुनकर हाथमें पाश धारण किये, तीक्ष्ण दाढ़ोंवाले भयंकर कालने कुपित होकर सिंहके सदृश घोर गर्जना करते हुए तथा

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

मया बद्धोऽसि विप्रर्षे श्वेतं नेतुं यमालयम्।
अद्य वै देवदेवेन तव रुद्रेण किं कृतम्॥ १६

क्व शर्वस्तव भक्तिश्च क्व पूजा पूजया फलम्।
क्व चाहं क्व च मे भीतिः श्वेत बद्धोऽसि वै मया॥ १७

लिङ्गेऽस्मिन् संस्थितः श्वेत तव रुद्रो महेश्वरः।
निश्चेष्टोऽसौ महादेवः कथं पूज्यो महेश्वरः॥ १८

ततः सदाशिवः स्वयं द्विजं निहन्तुमागतम्।
निहन्तुमन्तकं स्मयन् स्मरारि यज्ञहा हरः॥ १९

त्वरन् विनिर्गतः परः शिवः स्वयं त्रिलोचनः।
त्रियम्बकोऽम्बया समं सनन्दिना गणेश्वरैः॥ २०

ससर्ज जीवितं क्षणाद्भवं निरीक्ष्य वै भयात्।
पपात चाशु वै बली मुनेस्तु सन्निधौ द्विजाः॥ २१

ननाद चोर्ध्वमुच्चधीर्निरीक्ष्य चान्तकान्तकम्।
निरीक्षणेन वै मृतं भवस्य विप्रपुङ्गवाः॥ २२

विनेदुरुच्चमीश्वराः सुरेश्वरा महेश्वरम्।
प्रणेमुरम्बिकामुमां मुनीश्वरास्तु हर्षिताः॥ २३

ससर्जुरस्य मूर्ध्नि वै मुनेर्भवस्य खेचराः।
सुशोभनं सुशीतलं सुपुष्पवर्षमम्बरात्॥ २४

अहो निरीक्ष्य चान्तकं मृतं तदा सुविस्मितः।
शिलाशनात्मजोऽव्ययं शिवं प्रणम्य शङ्करम्॥ २५

उवाच बालधीर्मृतः प्रसीद चेति वै मुनेः।
महेश्वरं महेश्वरस्य चानुगो गणेश्वरः॥ २६

ततो विवेश भगवाननुगृह्य द्विजोत्तमम्।
क्षणाद् गूढशरीरं हि ध्वस्तं दृष्ट्वान्तकं क्षणात्॥ २७

पाशको बार-बार फटकारते हुए काल-प्राप्त मुनिको बाँध दिया और पुनः उनसे कहा—॥ १४-१५॥

हे विप्रर्षे! तुम श्वेतको यमलोक ले जानेके निमित्त मैंने बाँध दिया है; किंतु तुम्हारे देवाधिदेव रुद्रने इस समय तुम्हारी क्या सहायता की? कहाँ शिव, कहाँ तुम्हारी भक्ति तथा पूजा, कहाँ पूजाका फल और कहाँ मैं एवं मेरा भय! हे श्वेत! अब तुम मेरे द्वारा बाँध दिये गये हो। हे श्वेत! तुम्हारा महेश्वर रुद्र जो इस लिङ्गमें स्थित है, वह महादेव तो निश्चेष्ट है; तो फिर तुम उस महेश्वरकी पूजा क्यों करते हो?॥ १६—१८॥

तत्पश्चात् मुनिका प्राण हरनेके निमित्त आये हुए कालका संहार करनेके लिये कामदेवके शत्रु, दक्ष-यज्ञके विध्वंसक तथा त्रिनेत्र सदाशिव महादेव शंकर अपने नन्दी, गणेश्वरों और पार्वतीसहित मुसकराते हुए शीघ्रतापूर्वक शिवलिङ्गसे साक्षात् प्रकट हुए॥ १९-२०॥

हे द्विजो! शिवजीको देखते ही उसी क्षण भयके कारण वह बलवान् काल श्वेतमुनिके पास शीघ्र ही गिर पड़ा और कालका भी अन्त करनेवाले शिवजीको देखकर जोरसे चिल्लाया। हे उत्तम विप्रो! मृतप्राय उस कालको शिवजीने अपने कृपावलोकनसे जीवन प्रदान कर दिया॥ २१-२२॥

सभी महान् देवतागण तथा मुनिवृन्द महेश्वर एवं माता पार्वतीको प्रणाम करने लगे और हर्षित होकर उच्च स्वरमें 'जय हो-जय हो' ऐसा बोलने लगे। नभोमण्डलमें स्थित देवसमुदाय इन श्वेतमुनि तथा शंकरजीके सिरपर आकाशसे अत्यन्त सुन्दर, शीतल तथा सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ २३-२४॥

तत्पश्चात् शिलादके पुत्र तथा शिवजीके अनुचर गणेश्वर नन्दीजी कालको मरा हुआ देखकर अत्यन्त विस्मित हुए और उन्होंने अविनाशी महेश्वर शिवको प्रणामकर उनसे कहा कि यह अल्पबुद्धि काल मर चुका है; अब आप इस काल और मुनि—दोनोंपर अनुग्रह कीजिये॥ २५-२६॥

तत्पश्चात् क्षणभरमें ही मृत होकर पृथ्वीपर गिरे कालको देखकर उसके तथा द्विजश्रेष्ठ श्वेत—दोनोंके

तस्मान्मृत्युञ्जयं चैव भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजाः।
मुक्तिदं भुक्तिदं चैव सर्वेषामपि शङ्करम्॥ २८

बहुना किं प्रलापेन संन्यस्याभ्यर्च्य वै भवम्।
भक्त्या चापरया तस्मिन् विशोका वै भविष्यथ॥ २९

शैलादिरुवाच

एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनः।
प्रसीद भक्तिर्देवेशे भवेद्रुद्रे पिनाकिनि॥ ३०

केन वा तपसा देव यज्ञेनाप्यथ केन वा।
व्रतैर्वा भगवद्भक्ता भविष्यन्ति द्विजातयः॥ ३१

पितामह उवाच

न दानेन मुनिश्रेष्ठास्तपसा च न विद्यया।
यज्ञैर्होमैर्व्रतैर्वेदैर्योगशास्त्रैर्निरोधनैः ॥ ३२

प्रसादेनैव सा भक्तिः शिवे परमकारणे।
अथ तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते परमर्षयः॥ ३३

सदारतनयाः श्रान्ताः प्रणेमुश्च पितामहम्।
तस्मात्पाशुपती भक्तिर्धर्मकामार्थसिद्धिदा॥ ३४

मुनेर्विजयदा चैव सर्वमृत्युजयप्रदा।
दधीचस्तु पुरा भक्त्या हरिं जित्वामरैर्विभुम्॥ ३५

क्षुपं जघान पादेन वज्रास्थित्वं च लब्धवान्।
मयापि निर्जितो मृत्युर्महादेवस्य कीर्तनात्॥ ३६

श्वेतेनापि गतेनास्यं मृत्योर्मुनिवरेण तु।
महादेवप्रसादेन जितो मृत्युर्यथा मया॥ ३७

ऊपर अनुग्रह करके भगवान् शंकर तत्काल गुप्त शरीरमें समाविष्ट हो गये॥ २७॥

अतएव हे द्विजो! सभीको मोक्ष तथा भोग प्रदान करनेवाले मृत्युंजय महादेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ २८॥

[हे मुनियो!] अधिक क्या कहूँ; संन्यासधर्मका पालन करते हुए परम श्रद्धाके साथ उन महादेवकी आराधना करनेसे तुम सब सन्तापरहित हो जाओगे॥ २९॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमारजी!] तत्पश्चात् उन ब्रह्माके इस प्रकार कहनेपर ब्रह्मवेत्ता मुनिगण बोले—हे देव! आप प्रसन्न हों और हमें बतायें कि किस तपस्या, किस यज्ञ अथवा किन व्रतोंसे पिनाकधारी देवेश्वर रुद्रके प्रति हमलोगोंमें भक्ति उत्पन्न होगी तथा हम द्विजगण शिवभक्त हो सकेंगे?॥ ३०-३१॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिवरो! दान, तप, विद्या, यज्ञ, होम, व्रत, वेदाध्ययन, शास्त्रपारायण, योगसाधन तथा इन्द्रिय-नियन्त्रण आदि उपायोंसे शिव-भक्ति सम्भव नहीं है। केवल उनकी कृपासे ही जगत्के परम कारण महादेवके प्रति वह भक्ति उत्पन्न होती है॥ ३२½॥

इसके बाद उन ब्रह्माका वचन सुनकर परिश्रान्त हुए उन सभी श्रेष्ठ ऋषियोंने स्त्री तथा पुत्रोंसहित ब्रह्माजीको प्रणाम किया॥ ३३½॥

अतएव [हे सनत्कुमार!] यह शैवी भक्ति धर्म, काम, अर्थ तथा सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली है और सभी प्रकारकी मृत्युसे विजय दिलानेवाली है। यह शिव-भक्ति मुनि दधीचके लिये विजयदायिनी सिद्ध हुई थी। पूर्व कालमें दधीचमुनिने शिवकी भक्तिसे ही देवताओंसहित सर्वशक्तिमान् विष्णुको जीतकर अपने चरणसे राजा क्षुपपर प्रहार किया और अपनी हड्डियोंमें वज्रत्व प्राप्त कर लिया था। महादेवकी आराधनासे मैंने भी मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली है और जिस प्रकार मैंने मृत्युको जीता है, उसी प्रकार मृत्युके मुखमें गये हुए मुनिवर श्वेतने भी शिवजीकी कृपासे मृत्युको जीत लिया था॥ ३४—३७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवाराधनमहिमवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवाराधनमहिमवर्णन' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

देवदारुवननिवासी मुनिगणोंद्वारा शिवाराधना

सनत्कुमार उवाच

कथं भवप्रसादेन देवदारुवनौकसः।
प्रपन्नाः शरणं देवं वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥ १

सनत्कुमार बोले—हे प्रभो! देवदारुवनके निवासी [तपस्वीगण] भगवान् शिवके अनुग्रहसे किस प्रकार उन महादेवके शरणको प्राप्त हुए? कृपा करके मुझे बतायें॥ १॥

शैलादिरुवाच

तानुवाच महाभागान् भगवानात्मभूः स्वयम्।
देवदारुवनस्थांस्तु तपसा पावकप्रभान्॥ २

शैलादि बोले—स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माने देवदारुवनमें निवास करनेवाले तथा अपनी तपस्यासे अग्नितुल्य प्रभावाले उन महाभाग मुनियोंसे कहा॥ २॥

पितामह उवाच

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः।
न तस्मात्परमं किञ्चित्पदं समधिगम्यते॥ ३

पितामह बोले—इन भगवान् महादेव महेश्वरको अवश्य जानना चाहिये; क्योंकि उनसे बढ़कर कोई भी ऐसा पद नहीं है, जो प्राप्त करनेयोग्य हो॥ ३॥

देवानां च ऋषीणां च पितॄणां चैव स प्रभुः।
सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनः॥ ४

संहरत्येष भगवान् कालो भूत्वा महेश्वरः।
एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा॥ ५

वे ही समस्त देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके प्रभु हैं। हजार युगोंके अन्तमें प्रलयकाल आनेपर वे ही भगवान् शिव काल बनकर सभी देहधारियोंका संहार करते हैं और एकमात्र ये भगवान् शिव ही अपने तेजसे सभी प्रजाओंका सृजन करते हैं॥ ४-५॥

एष चक्री च वज्री च श्रीवत्सकृतलक्षणः।
योगी कृतयुगे चैव त्रेतायां क्रतुरुच्यते॥ ६

द्वापरे चैव कालाग्निर्धर्मकेतुः कलौ स्मृतः।
रुद्रस्य मूर्तयस्त्वेता येऽभिध्यायन्ति पण्डिताः॥ ७

अपने वक्षःस्थलपर 'श्री' चिह्न धारण करनेवाले चक्रधारी विष्णु तथा व्रजधारी इन्द्र आदिके रूपमें ये शिव ही विराजमान हैं। ये सत्ययुगमें योगी, त्रेतामें यज्ञस्वरूप, द्वापरमें कालाग्नि एवं कलियुगमें धर्मकेतु नामसे कहे जाते हैं। भगवान् रुद्रकी ये ही मूर्तियाँ हैं, जिनका पण्डितजन ध्यान करते हैं॥ ६-७॥

चतुरस्रं बहिश्चान्तरष्टास्रं पिण्डिकाश्रये।
वृत्तं सुदर्शनं योग्यमेवं लिङ्गं प्रपूजयेत्॥ ८

बाहरसे चौकोर एवं भीतरसे अष्टकोणवाले पिण्डिका-स्थानमें वृत्ताकार, दर्शनीय तथा श्रेष्ठ लिङ्गकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ८॥

तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुः प्रकाशकम्।
मूर्तिरेका स्थिता चास्य मूर्तयः परिकीर्तिताः॥ ९

तमोगुणरूप अग्नि, रजोगुणरूप ब्रह्मा तथा प्रकाशक सत्त्वगुणरूप विष्णु आदिकी मूर्तियाँ एकमात्र इन्हीं शिवकी मूर्तिमें स्थित कही जाती हैं॥ ९॥

यत्र तिष्ठति तद् ब्रह्म योगेन तु समन्वितम्।
तस्माद्धि देवदेवेशमीशानं प्रभुमव्ययम्॥ १०

आराधयन्ति विप्रेन्द्रा जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
लिङ्गं कृत्वा यथान्यायं सर्वलक्षणसंयुतम्॥ ११

जीवके भीतर समाधियोगसे स्थित जो शिवरूप है, वही ब्रह्म है। अतएव क्रोधको जीत लेनेवाले तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले उत्तम विप्रगण विधानके अनुसार सभी लक्षणोंसे युक्त लिङ्ग बनाकर अविनाशी, देवाधिदेव, ईशान एवं सबके स्वामी शिवकी आराधना करते हैं॥ १०-११॥

अङ्गुष्ठमात्रं सुशुभं सुवृत्तं सर्वसम्मतम्।
समनाभं तथाष्टास्रं षोडशास्त्रमथापि वा॥ १२

सुवृत्तं मण्डलं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम्।
वेदिका द्विगुणा तस्य समा वा सर्वसम्मता॥ १३

गोमुखी च त्रिभागैका वेद्या लक्षणसंयुता।
पट्टिका च समन्ताद्वै यवमात्रा द्विजोत्तमाः॥ १४

सौवर्णं राजतं शैलं कृत्वा ताम्रमयं तथा।
वेदिकायाश्च विस्तारं त्रिगुणं वै समन्ततः॥ १५

वर्तुलं चतुरस्त्रं वा षडस्त्रं वा त्रिरस्त्रकम्।
समन्तान्निर्व्रणं शुभ्रं लक्षणैस्तत्सुलक्षितम्॥ १६

प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं पूजालक्षणसंयुतम्।
कलशं स्थापयेत्तस्य वेदिमध्ये तथा द्विजाः॥ १७

सहिरण्यं सबीजं च ब्रह्मभिश्चाभिमन्त्रितम्।
सेचयेच्च ततो लिङ्गं पवित्रैः पञ्चभिः शुभैः॥ १८

पूजयेच्च यथालाभं ततः सिद्धिमवाप्स्यथ।
समाहिताः पूजयध्वं सपुत्रा सह बन्धुभिः॥ १९

सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा शूलपाणिं प्रपद्यत।
ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः॥ २०

यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति।
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा ब्रह्माणममितौजसम्॥ २१

सम्प्रस्थिता वनौकास्ते देवदारुवनं ततः।
आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा॥ २२

स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतानां गुहासु च।
नदीनां च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च॥ २३

शैवालशोभनाः केचित्केचिदन्तर्जलेशयाः।
केचिद् दर्भावकाशास्तु पादाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठिताः॥ २४

वह लिङ्ग अंगुष्ठ परिमाणके बराबर, अत्यन्त सुन्दर, वर्तुलाकार तथा शास्त्रसम्मत हो। उसका मण्डल समान नाभिवाला, अष्ट अथवा षोडश कोणोंवाला पूर्णतः गोलाकार तथा दिव्य होना चाहिये; वह सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होता है॥ १२½॥

लिङ्गकी वेदिका उसकी दुगुनी, समान तथा शास्त्रसम्मत हो। गोमुखीको उसकी एक तिहाई एवं समस्त लक्षणोंसे युक्त जानना चाहिये। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उसके चारों ओर जौके परिमाणके बराबर पट्टिका होनी चाहिये। वेदिकाका विस्तार चारों ओर तिगुना, वर्तुलाकार, त्रिकोण, चौकोर अथवा षट्कोण होना चाहिये। सोनेका, चाँदीका, ताँबेका अथवा पाषाणका लिङ्ग बनाना चाहिये। हे द्विजो! इस प्रकार सभी ओरसे छिद्र आदिसे रहित, सुन्दर तथा सभी लक्षणोंसे युक्त लिङ्गको विधिपूर्वक प्रतिष्ठित करके उसकी वेदीके मध्यमें पूजालक्षणोंसे समन्वित, स्वर्णसहित, पंचाक्षरमन्त्र एवं सद्योजात आदि पाँच मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कलशकी स्थापना करनी चाहिये। तत्पश्चात् उन्हीं पाँच शुभ तथा पवित्र मन्त्रोंसे लिङ्गका अभिषेक करना चाहिये एवं यथोपलब्ध उपचारोंसे पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे तुमलोग सिद्धि प्राप्त कर लोगे। [हे मुनियो!] तुम लोग अपने पुत्रों तथा बन्धु-बान्धवोंसहित एकाग्रचित्त होकर महादेवजीका पूजन करो और हाथ जोड़कर शूलपाणिकी शरणमें जाओ। तत्पश्चात् तुमलोग असंयत आत्मावाले लोगोंके लिये दुर्लभ दर्शनवाले देवेश शिवका दर्शन प्राप्त कर सकोगे; जिन्हें देखते ही समस्त अज्ञान तथा अधर्म नष्ट हो जाता है॥ १३—२०½॥

तत्पश्चात् अमित तेजवाले ब्रह्माजीकी प्रदक्षिणा करके वे वनवासी मुनि देवदारु वनके लिये प्रस्थित हुए और जैसा ब्रह्माजीने कहा था, तदनुसार वे महादेवकी आराधना करने लगे॥ २१-२२॥

कुछ मुनि विचित्र प्रकारके स्थण्डिलोंपर, पर्वतोंकी गुफाओंमें, नदियोंके पवित्र तथा एकान्त तटोंपर, कुछ मुनि शैवालपर विराजमान होकर, कुछ मुनि जलके भीतर बैठकर, कोई दर्भ-शय्या बिछाकर, कोई अपने

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

दन्तोलूखलिनस्त्वन्ये अश्मकुट्टास्तथापरे।
स्थानवीरासनास्त्वन्ये मृगचर्यारताः परे॥ २५

कालं नयन्ति तपसा पूजया च महाधियः।
एवं संवत्सरे पूर्णे वसन्ते समुपस्थिते॥ २६

ततस्तेषां प्रसादार्थं भक्तानामनुकम्पया।
देवः कृतयुगे तस्मिन् गिरौ हिमवतः शुभे॥ २७

देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः।
भस्मपांसूपदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः॥ २८

उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः।
क्वचिच्च हसते रौद्रं क्वचिद् गायति विस्मितः॥ २९

क्वचिन्नृत्यति शृङ्गारं क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः।
आश्रमे ह्यटते भैक्ष्यं याचते च पुनः पुनः॥ ३०

मायां कृत्वा तथारूपां देवस्तद्वनमागतः।
ततस्ते मुनयः सर्वे तुष्टुवुश्च समाहिताः॥ ३१

अद्भिर्विविधमाल्यैश्च धूपैर्गन्धैस्तथैव च।
सपत्नीका महाभागाः सपुत्राः सपरिच्छदाः॥ ३२

मुनयस्ते तथा वाग्भिरीश्वरं चेदमब्रुवन्।
अज्ञानाद्देवदेवेश यदस्माभिरनुष्ठितम्॥ ३३

कर्मणा मनसा वाचा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि।
चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च॥ ३४

ब्रह्मादीनां च देवानां दुर्विज्ञेयानि ते हर।
अगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च॥ ३५

पैरके अँगूठेके अग्रभागपर स्थित होकर, कोई दाँतोंको ही उलूखल बनाकर उनसे पिसे अन्नको खाकर, कुछ पाषाणपर पिसे अन्नको ही खाकर, कुछ वीरासनमें बैठकर, कुछ मृगचर्यापरायण होकर—इस प्रकार तपस्या तथा पूजनके द्वारा उन महाबुद्धिमान् मुनियोंने समय व्यतीत किया॥ २३—२५$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार उन मुनियोंको तप करते हुए एक वर्ष पूर्ण होनेपर वसन्त ऋतु आनेपर परमेश्वर शिव अपनी दयासे उन भक्तोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त कृतयुगमें हिमालयके उस पर्वतपर स्थित देवदारुवनमें प्रसन्नतापूर्वक आये॥ २६-२७$^{१}/_{२}$॥

उस समय वे भस्म-धूलिसे भूषित शरीरवाले, दिगम्बर वेशवाले, विकृत स्वरूपवाले, उल्मुक (जलता हुआ काष्ठ) धारण किये हुए, व्यग्रहस्तवाले तथा रक्त-पिंगल नेत्रोंवाले थे। वे कभी रौद्ररूपमें हँसते थे, कभी विस्मित होकर गाते थे, कभी शृङ्गार-नृत्य करते थे तथा कभी रोते थे—इस रूपमें वे आश्रमोंमें बार-बार भिक्षा माँगते हुए इधर-उधर घूमने-फिरने लगे। इस प्रकारकी माया रचकर महादेवजी उस वनमें आये हुए थे॥ २८—३०$^{१}/_{२}$॥

तदनन्तर वे सभी महाभाग मुनिगण अपनी स्त्रियों, पुत्रों तथा बन्धु-बान्धवोंसहित शुद्ध जल, विविध पुष्प-मालाओं, धूप, गन्ध आदि उपचारोंसे महादेवजीका एकाग्रचित्त होकर पूजन करके उनकी स्तुति करने लगे॥ ३१-३२॥

पुनः वे सभी मुनि मधुर वाणीमें भगवान् शिवसे बोले—हे देवदेवेश! हम लोगोंने मन, वचन तथा कर्मसे जो भी आपके प्रति किया है, वह सब अज्ञानतावश किया है; अतएव आप सभी अपराधोंको क्षमा कीजिये॥ ३३$^{१}/_{२}$॥

हे हर! आपके चरित्र अत्यन्त अद्भुत, गूढ़ तथा कठिन हैं। वे चरित्र ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी दुर्ज्ञेय हैं॥ ३४$^{१}/_{२}$॥

हम आपकी अगति तथा गति कुछ भी नहीं जानते हैं और जान पाना सम्भव भी नहीं है। हे

विश्वेश्वर महादेव योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते।
स्तुवन्ति त्वां महात्मानो देवदेवं महेश्वरम्॥ ३६

विश्वेश्वर! हे महादेव! आप जो कोई भी हों, आपको नमस्कार है। हम मुनिगण आप देवदेव महेश्वरकी स्तुति करते हैं॥ ३५-३६॥

नमो भवाय भव्याय भावनायोद्भवाय च।
अनन्तबलवीर्याय भूतानां पतये नमः॥ ३७

भव, भव्य, भावन तथा उद्भवको नमस्कार है। अनन्त बल एवं वीर्यवाले और भूतोंके पतिको नमस्कार है॥ ३७॥

संहर्त्रे च पिशङ्गाय अव्ययाय व्ययाय च।
गङ्गासलिलधाराय आधाराय गुणात्मने॥ ३८

त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिशूलवरधारिणे।
कन्दर्पाय हुताशाय नमोऽस्तु परमात्मने॥ ३९

जगत्के संहारकर्ता, पिशंग वर्णवाले, अव्यय, व्यय, गंगाजलकी धारा धारण करनेवाले, जगत्के आधार, गुणात्मा, त्र्यम्बक, त्रिनेत्र, उत्तम त्रिशूल धारण करनेवाले, कन्दर्पस्वरूप तथा अग्निरूप परमात्मा शिवको नमस्कार है॥ ३८-३९॥

शङ्कराय वृषाङ्काय गणानां पतये नमः।
दण्डहस्ताय कालाय पाशहस्ताय वै नमः॥ ४०

हाथमें दण्ड तथा पाश धारण करनेवाले, कालरूप, गणोंके पति एवं वृषभध्वज शंकरको नमस्कार है॥ ४०॥

वेदमन्त्रप्रधानाय शतजिह्वाय वै नमः।
भूतं भव्यं भविष्यं च स्थावरं जङ्गमं च यत्॥ ४१

तव देहात्समुत्पन्नं देव सर्वमिदं जगत्।
पासि हंसि च भद्रं ते प्रसीद भगवंस्ततः॥ ४२

अज्ञानाद्यदि विज्ञानाद्यत्किञ्चित्कुरुते नरः।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया॥ ४३

वेदमन्त्रोंमें प्रधान रूपसे निरूपित तथा शत जिह्वावाले आप शिवको नमस्कार है। हे देव! भूत, भविष्य तथा वर्तमान जो कुछ भी है एवं स्थावर-जंगममय यह सम्पूर्ण जगत् आपकी ही देहसे उत्पन्न हुआ है। आप ही जगत्का पालन तथा संहार करते हैं। अतएव हे भगवन्! आपका मंगल हो और आप हमपर प्रसन्न हों। ज्ञान अथवा अज्ञानमें मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह सब स्वयं आप परमेश्वर ही अपनी योगमायासे सम्पन्न करते हैं॥ ४१—४३॥

एवं स्तुत्वा तु मुनयः प्रहृष्टैरन्तरात्मभिः।
याचन्त तपसा युक्ताः पश्यामस्त्वां यथा पुरा॥ ४४

इस प्रकार तपस्यासे युक्त वे मुनिगण पुलकित अन्तरात्मासे शिवजीका स्तवन करके उनसे याचना करने लगे कि हे भगवन्! हम लोगोंने आपको पहले जिस रूपमें देखा था, उसी रूपमें आपका दर्शन करना चाहते हैं॥ ४४॥

ततो देवः प्रसन्नात्मा स्वमेवास्थाय शङ्करः।
रूपं त्र्यक्षं च सन्द्रष्टुं दिव्यं चक्षुरदात्प्रभुः॥ ४५

तब उनकी स्तुतिसे प्रसन्न मनवाले प्रभु शिवने अपना त्रिनेत्र-रूप दिखानेके लिये उन्हें दिव्य-दृष्टि प्रदान की॥ ४५॥

लब्धदृष्ट्या तया दृष्ट्वा देवदेवं त्रियम्बकम्।
पुनस्तुष्टुवुरीशानं देवदारुवनौकसः॥ ४६

देवदारुवनमें निवास करनेवाले उन मुनियोंने उस प्राप्त दिव्य दृष्टिसे तीन नेत्रवाले देवाधिदेव शिवका दर्शन करके पुनः उनकी स्तुति की॥ ४६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे मुनिकृतं शिवस्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'मुनिकृतशिवस्तोत्रवर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

मुनियोंद्वारा की गयी शिवस्तुति

ऋषय ऊचुः

नमो दिग्वाससे नित्यं कृतान्ताय त्रिशूलिने।
विकटाय करालाय करालवदनाय च॥ १

अरूपाय सुरूपाय विश्वरूपाय ते नमः।
कटङ्कटाय रुद्राय स्वाहाकाराय वै नमः॥ २

सर्वप्रणतदेहाय स्वयं च प्रणतात्मने।
नित्यं नीलशिखण्डाय श्रीकण्ठाय नमो नमः॥ ३

नीलकण्ठाय देवाय चिताभस्माङ्गधारिणे।
त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः॥ ४

आत्मा च सर्वभूतानां सांख्यैः पुरुष उच्यते।
पर्वतानां महामेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमाः॥ ५

ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं देवानां वासवस्तथा।
ॐकारः सर्ववेदानां श्रेष्ठं साम च सामसु॥ ६

आरण्यानां पशूनां च सिंहस्त्वं परमेश्वरः।
ग्राम्याणामृषभश्चासि भगवान् लोकपूजितः॥ ७

सर्वथा वर्तमानोऽपि यो यो भावो भविष्यति।
त्वामेव तत्र पश्यामो ब्रह्मणा कथितं तथा॥ ८

कामः क्रोधश्च लोभश्च विषादो मद एव च।
एतदिच्छामहे बोद्धुं प्रसीद परमेश्वर॥ ९

महासंहरणे प्राप्ते त्वया देव कृतात्मना।
करं ललाटे संविध्य वह्निरुत्पादितस्त्वया॥ १०

तेनाग्निना तदा लोका अर्चिर्भिः सर्वतो वृताः।
तस्मादग्निसमा ह्येते बहवो विकृताग्नयः॥ ११

ऋषिगण बोले—दिशाओंको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले, शाश्वत, प्रलयके कारण, त्रिशूलधारी, विकट रूपवाले, कराल (संसाररूपी वृक्षके लिये कुठार स्वरूप) तथा भीषण वदनवाले शिवको नमस्कार है॥ १॥

बिना रूपवाले, सुन्दर रूपवाले, विश्वरूप आपको नमस्कार है। गजाननरूप, स्वाहा करनेवाले यजमानरूप रुद्रको नमस्कार है॥ २॥

सभी लोगोंसे नमस्कृत देहवाले, स्वयं विनीत आत्मावाले, निरन्तर नील जटाजूट धारण करनेवाले, अपने शरीरमें चिताकी भस्मको धारण करनेवाले, श्रीकण्ठ, नीलकण्ठ शिवको बार-बार नमस्कार है। हे प्रभो! आप सभी देवताओंमें ब्रह्मा हैं तथा रुद्रोंमें नीललोहित हैं॥ ३-४॥

आप समस्त भूतोंकी आत्मा हैं। सांख्यविद् आपको पुरुष कहते हैं। आप पर्वतोंमें विशाल मेरु पर्वत तथा नक्षत्रोंमें चन्द्रमा हैं॥ ५॥

ऋषियोंमें आप वसिष्ठ हैं तथा देवताओंमें देवराज इन्द्र हैं, सभी वेदोंमें साररूपसे आप ओंकार हैं एवं सभी गेयस्वरोंमें आप सामगान हैं॥ ६॥

आप परमेश्वर वन्य पशुओंमें सिंह हैं और ग्राम्य पशुओंमें आप ऐश्वर्यसम्पन्न तथा लोकपूज्य वृषभ हैं॥ ७॥

हे प्रभो! आप वैसा कीजिये कि आपका जो भी विद्यमान स्वरूप हो, उसमें हम ब्रह्माद्वारा कथित आपके सर्वस्वरूपका दर्शन कर सकें॥ ८॥

हे परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये। हम यह जानना चाहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, विषाद तथा मद—ये पाँचों विकार सभीको दग्ध क्यों करते हैं?॥ ९॥

हे देव! महासंहार उपस्थित होनेपर शुद्ध चित्तवाले आप परमेश्वरने ललाटपर हाथ घर्षितकर अग्नि उत्पन्न की थी॥ १०॥

तब उसी अग्निकी ज्वालाओंसे समस्त लोक

कामः क्रोधश्च लोभश्च मोहो दम्भ उपद्रवः।
यानि चान्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च॥ १२

दह्यन्ते प्राणिनस्ते तु त्वत्समुत्थेन वह्निना।
अस्माकं दह्यमानानां त्राता भव सुरेश्वर॥ १३

त्वं च लोकहितार्थाय भूतानि परिषिञ्चसि।
महेश्वर महाभाग प्रभो शुभनिरीक्षक॥ १४

आज्ञापय वयं नाथ कर्तारो वचनं तव।
भूतकोटिसहस्रेषु रूपकोटिशतेषु च॥ १५

अन्तं गन्तुं न शक्ताः स्म देवदेव नमोऽस्तु ते॥ १६

सभी ओरसे आच्छादित हो गये। इसीलिये ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ आदि विक्षोभात्मक विकृत अग्नियाँ अग्नितुल्य ही हैं। इस जगत्‌में जो भी स्थावर-जंगम जीव एवं पदार्थ हैं, वे सब आपद्वारा उत्पादित अग्निसे दग्ध हो रहे हैं। अतएव हे सुरेश्वर! उस अग्निसे दग्ध हो रहे हम सभीकी आप रक्षा कीजिये॥ ११—१३॥

हे महेश्वर! हे महाभाग! हे प्रभो! हे शुभ निरीक्षक! आप लोक-कल्याणके लिये जीवोंको अमृतरूपी जलसे सींचते हैं। हे नाथ! आज्ञा दीजिये; हमलोग आपके वचनोंका पालन करनेके लिये तत्पर हैं। अनन्त पदार्थों एवं उनके नाम-रूपोंके मध्य आप व्याप्त हैं, आपका पार हम पा नहीं सके हैं। हे देवाधिदेव! आपको नमस्कार है॥ १४—१६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे 'शिवस्तुतिवर्णनं' नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवस्तुतिवर्णन' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

मुनियोंको शिवभक्तिका उपदेश

नन्द्युवाच

ततस्तुतोष भगवाननुगृह्य महेश्वरः।
स्तुतिं श्रुत्वा स्तुतस्तेषामिदं वचनमब्रवीत्॥ १

यः पठेच्छृणुयाद्वापि युष्माभिः कीर्तितं स्तवम्।
श्रावयेद्वा द्विजान् विप्रो गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ २

वक्ष्यामि वो हितं पुण्यं भक्तानां मुनिपुङ्गवाः।
स्त्रीलिङ्गमखिलं देवी प्रकृतिर्मम देहजा॥ ३

पुंल्लिङ्गं पुरुषो विप्रा मम देहसमुद्भवः।
उभाभ्यामेव वै सृष्टिर्मम विप्रा न संशयः॥ ४

न निन्देद्यतिनं तस्माद्दिग्वाससमनुत्तमम्।
बालोन्मत्तविचेष्टं तु मत्परं ब्रह्मवादिनम्॥ ५

नन्दीश्वर बोले—उन मुनियोंके द्वारा संस्तुत भगवान् महेश्वर उनकी स्तुति सुनकर उनके प्रति अनुग्रहशील होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनसे यह वचन बोले॥ १॥

जो विप्र आप लोगोंद्वारा की गयी स्तुतिको पढ़ेगा अथवा सुनेगा अथवा द्विजोंको सुनायेगा, वह मेरे गणोंमें मुख्य स्थान प्राप्त करेगा॥ २॥

हे मुनिश्रेष्ठो! आप भक्तोंके हितार्थ अब मैं शुभ उपदेश करता हूँ। इस जगत्‌में समस्त स्त्रीलिङ्ग-समुदाय मेरे शरीरसे उत्पन्न प्रकृतिदेवीका ही रूप है और हे विप्रो! सभी पुंल्लिंग-समुदाय मेरी देहसे उत्पन्न पुरुषका रूप है। हे विप्रो! यह सृष्टि मुझसे प्रादुर्भूत पुरुष-प्रकृति (नर-नारी) इन्हीं दोनोंसे हुई है, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ३-४॥

सभी शिवरूप हैं, अतएव किसीकी भी निन्दा न

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

ये हि मां भस्मनिरता भस्मना दग्धकिल्बिषाः।
यथोक्तकारिणो दान्ता विप्रा ध्यानपरायणाः॥ ६

महादेवपरा नित्यं चरन्तो ह्यूर्ध्वरेतसः।
अर्चयन्ति महादेवं वाङ्मनःकायसंयताः॥ ७

रुद्रलोकमनुप्राप्य न निवर्तन्ति ते पुनः।
तस्मादेतद् व्रतं दिव्यमव्यक्तं व्यक्तलिङ्गिनः॥ ८

भस्मव्रताश्च मुण्डाश्च व्रतिनो विश्वरूपिणः।
न तान् परिवदेद्विद्वान्न चैतान्नाभिलङ्घयेत्॥ ९

न हसेन्नाप्रियं ब्रूयादमुत्रेह हितार्थवान्।
यस्तान्निन्दति मूढात्मा महादेवं स निन्दति॥ १०

यस्त्वेतान् पूजयेन्नित्यं स पूजयति शङ्करम्।
एवमेष महादेवो लोकानां हितकाम्यया॥ ११

युगे युगे महायोगी क्रीडते भस्मगुण्ठितः।
एवं चरत भद्रं वस्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ॥ १२

अतुलमिह महाभयप्रणाशहेतुं
शिवकथितं परमं पदं विदित्वा।
व्यपगतभवलोभमोहचित्ताः
प्रणिपतिताः सहसा शिरोभिरुग्रम्॥ १३

ततः प्रमुदिता विप्राः श्रुत्वैवं कथितं तदा।
गन्धोदकैः सुशुद्धैश्च कुशपुष्पविमिश्रितैः॥ १४

स्नापयन्ति महाकुम्भैरद्भिरेव महेश्वरम्।
गायन्ति विविधैर्गुह्यैर्हुङ्कारैश्चापि सुस्वरैः॥ १५

नमो देवाधिदेवाय महादेवाय वै नमः।
अर्धनारीशरीराय सांख्ययोगप्रवर्तिने॥ १६

करें। विशेष रूपसे मेरी भक्तिमें तत्पर उत्तम, दिगम्बर, ब्रह्मवादी, बालस्वभाववाले, उन्मत्त तथा चेष्टारहित यतिकी तो कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये॥ ५॥

भस्मसे विभूषित होकर दग्ध पापोंवाले, इन्द्रियजित्, ध्यानपरायण, नित्य नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले तथा महादेवकी भक्तिमें तत्पर जो विप्र मन-वाणी एवं शरीरसे संयत होकर मुझ महादेवकी यथोक्त रीतिसे पूजा-आराधना करते हैं, वे रुद्रलोकको प्राप्त होते हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता है। अतएव व्यक्त लिङ्गवाले शिवका यह [पाशुपत] व्रत परम दिव्य तथा अव्यक्त है॥ ६—८॥

विद्वान् मनुष्यको चाहिये कि भस्म धारण किये तथा मुण्डित सिर जो शिवरूप व्रती हैं, उनकी न तो निन्दा करे तथा न तो उनकी बातोंका उल्लंघन करे। लोक एवं परलोकमें अपना हित चाहनेवालेको ऐसे महात्माओंपर न तो हँसना चाहिये और न तो उनके प्रति अप्रिय वचन बोलना चाहिये॥ ९½॥

जो मनुष्य इनकी निन्दा करता है, वह मन्दबुद्धि साक्षात् महादेवकी निन्दा करता है तथा जो इनकी नित्य पूजा करता है, वह महादेवजीकी पूजा करता है॥ १०½॥

इस प्रकार ये महायोगी शिवजी भस्म-भूषित होकर लोक-कल्याणकी कामनासे युग-युगमें नानाविध क्रीड़ाएँ करते हैं। आपलोग भी ऐसा ही आचरण कीजिये; उससे आपलोगोंका कल्याण होगा तथा आपलोग सिद्धि प्राप्त करेंगे॥ ११-१२॥

महाभयका नाश करनेवाले शिव-कथित अतुलनीय तथा परमपदको जानकर उन मुनियोंका चित्त सांसारिक लोभ एवं मोहसे रहित हो गया और उन्होंने शंकरजीके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया॥ १३॥

इस प्रकार शिवकी बातें सुनकर प्रसन्न मनवाले उन मुनियोंने गन्ध, पुष्प तथा कुशसे मिश्रित शुद्ध जलसे परिपूर्ण विशाल घड़ोंसे महेश्वरको स्नान कराया और पुनः वे गूढ़ तथा हुंकारयुक्त सुन्दर स्वरोंसे महादेवजीका स्तुति-गान करने लगे॥ १४-१५॥

देवाधिदेव महादेवको नमस्कार है। अर्धनारीश्वर

मेघवाहनकृष्णाय गजचर्मनिवासिने।
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने॥ १७

सुरचितसुविचित्रकुण्डलाय
सुरचितमाल्यविभूषणाय तुभ्यम्।
मृगपतिवरचर्मवाससे च
प्रथितयशसे नमोऽस्तु शङ्कराय॥ १८

तथा सांख्ययोगके प्रवर्तक शिवको नमस्कार है। मेघवाहन कृष्ण (सदाशिव), गजचर्मको अधोवस्त्रके रूपमें धारण करनेवाले, कृष्णमृगके चर्मको उत्तरीयके रूपमें धारण करनेवाले एवं सर्पको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करनेवाले शिवको नमस्कार है॥ १६-१७॥

सुन्दर बने हुए अतिविचित्र कुण्डल धारण करनेवाले, सुन्दर रचित मालाको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले, सिंहके उत्तम चर्मको वस्त्रके रूपमें धारण करनेवाले तथा विस्तृत यशवाले आप शंकरको नमस्कार है॥ १८॥

ततस्तान् स मुनीन् प्रीतः प्रत्युवाच महेश्वरः।
प्रीतोऽस्मि तपसा युष्मान् वरं वृणुत सुव्रताः॥ १९

ततस्ते मुनयः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम्।
भृग्वङ्गिरा वसिष्ठश्च विश्वामित्रस्तथैव च॥ २०

गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
मरीचिः कश्यपः कण्वः संवर्तश्च महातपाः॥ २१

ते प्रणम्य महादेवमिदं वचनमब्रुवन्।
भस्मस्नानं च नग्नत्वं वामत्वं प्रतिलोमता॥ २२

सेव्यासेव्यत्वमेवं च ह्येतदिच्छाम वेदितुम्।

तत्पश्चात् उस स्तुतिसे अत्यन्त प्रसन्नताको प्राप्त उन महादेवने उन मुनियोंसे पुनः कहा—हे सुव्रती मुनीश्वरो! मैं तुमलोगोंकी तपस्यासे अति प्रसन्न हूँ। तुम सब वर माँगो॥ १९॥

इसपर भृगु, अंगिरा, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, कश्यप, कण्व, संवर्त आदि उन सभी महान् तपस्वी मुनियोंने शिवजीको प्रणामकर उनसे यह वचन कहा—भस्म-स्नान, नग्नता, वामता, प्रतिलोमता (काम्य कर्ममार्गमें प्रवृत्ति), सेव्य तथा असेव्य—इनके विषयमें हम जानना चाहते हैं॥ २०—२२½॥

ततस्तेषां वचः श्रुत्वा भगवान् परमेश्वरः॥ २३
सस्मितं प्राह सम्प्रेक्ष्य सर्वान् मुनिवरांस्तदा॥ २४

इसपर उनकी बात सुनकर परमेश्वर भगवान् शिवने मुसकराकर सभी मुनिवरोंकी ओर देखकर उनसे कहा॥ २३-२४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ऋषिवाक्यं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ऋषिवाक्य' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवद्वारा भस्म, भस्मस्नान एवं शिवयोगियोंकी महिमाका प्रतिपादन

श्रीभगवानुवाच

एतद्वः सम्प्रवक्ष्यामि कथासर्वस्वमद्य वै।
अग्निर्ह्यहं सोमकर्ता सोमश्चाग्निमुपाश्रितः॥ १

कृतमेतद्वहत्यग्निर्भूयो लोकसमाश्रयात्।
असकृत्त्वग्निना दग्धं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ २

भगवान् शिव बोले—हे मुनीश्वर! इन सबके माहात्म्यसे युक्त कथाके सारभागका वर्णन मैं आपलोगोंसे करूँगा। सोमका कारणस्वरूप अग्नि मैं हूँ तथा अग्निसंयुक्त सोम भी मैं ही हूँ॥ १॥

इस लोक (भारतवर्ष)-में रहनेके कारण सबके कर्मोंका फल अग्निके द्वारा ही धारण किया जाता है। अग्निने इस स्थावर-जंगम जगत्को अनेक बार दग्ध

भस्मसाद्विहितं सर्वं पवित्रमिदमुत्तमम्।
भस्मना वीर्यमास्थाय भूतानि परिषिञ्चति॥ ३

अग्निकार्यं च यः कृत्वा करिष्यति त्रियायुषम्।
भस्मना मम वीर्येण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥ ४

भासतेत्येव यद्भस्म शुभं भावयते च यत्।
भक्षणात्सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्तितम्॥ ५

ऊष्मपाः पितरो ज्ञेया देवा वै सोमसम्भवाः।
अग्नीषोमात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ६

अहमग्निर्महातेजाः सोमश्चैषा महाम्बिका।
अहमग्निश्च सोमश्च प्रकृत्या पुरुषः स्वयम्॥ ७

तस्माद्भस्म महाभागा मद्वीर्यमिति चोच्यते।
स्ववीर्यं वपुषा चैव धारयामीति वै स्थितिः॥ ८

तदाप्रभृति लोकेषु रक्षार्थमशुभेषु च।
भस्मना क्रियते रक्षा सूतिकानां गृहेषु च॥ ९

भस्मस्नानविशुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
मत्समीपं समागम्य न भूयो विनिवर्तते॥ १०

व्रतं पाशुपतं योगं कापिलं चैव निर्मितम्।
पूर्वं पाशुपतं ह्येतन्निर्मितं तदनुत्तमम्॥ ११

शेषाश्चाश्रमिणः सर्वे पश्चात्सृष्टाः स्वयम्भुवा।
सृष्टिरेषा मया सृष्टा लज्जामोहभयात्मिका॥ १२

नग्ना एव हि जायन्ते देवता मुनयस्तथा।
ये चान्ये मानवा लोके सर्वे जायन्त्यवाससः॥ १३

इन्द्रियैरजितैर्नग्नो दुकूलेनापि संवृतः।
तैरेव संवृतैर्गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्॥ १४

किया है। अग्निसे भस्मीभूत हो जानेसे यह सम्पूर्ण जगत् पवित्र तथा उत्तम हो जाता है। उसी भस्मसे ओज प्राप्त करके यह सोम प्राणियोंको जीवित करता है॥ २-३॥

जो मनुष्य अग्निहोत्र-कार्य सम्पन्न करके भस्मसे त्र्यायुष करता है, वह मेरे ओजसे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४॥

यह भस्म प्रकाशित करता है, कल्याण सम्पादित करता है तथा समस्त पापोंका नाश करता है, अतएव इसे भस्म कहा जाता है॥ ५॥

ऊष्मपसंज्ञक पितर तथा देवतागण चन्द्रमासे उत्पन्न कहे गये हैं। स्थावर-जंगममय यह समस्त जगत् अग्नि-सोमात्मक है॥ ६॥

मैं महान् तेजसे युक्त अग्नि हूँ तथा ये महिमामयी अम्बा पार्वती सोमस्वरूपा हैं। प्रकृतिके साथ पुरुषरूप मैं अग्नि सोम दोनों ही हूँ॥ ७॥

अतएव हे महाभाग मुनियो! यह भस्म मेरा वीर्य है—ऐसा कहा जाता है। मैं अपने शरीरमें अपने वीर्य (भस्म)-को धारण करके अधिष्ठित हूँ और उसी समयसे यह भस्म सभी अमंगलोंसे लोकोंकी रक्षा करता है तथा इसी भस्मसे सूतिकागृहोंकी भी रक्षा की जाती है॥ ८-९॥

जो मनुष्य क्रोध तथा इन्द्रियोंको जीतकर भस्मस्नान करके पवित्र अन्तःकरणवाला हो जाता है, वह मेरा सांनिध्य प्राप्त कर लेता है एवं पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है॥ १०॥

पाशुपतव्रत, योगशास्त्र तथा कापिल (सांख्यशास्त्र)-की रचना मैंने ही की। इनमें पाशुपतयोगकी रचना पहले हुई है, इसलिये यह उत्तम है॥ ११॥

आश्रम-सम्बन्धी शेष सभी शास्त्र स्वयंभू ब्रह्माजीके द्वारा बादमें रचे गये और लज्जा, मोह तथा भयसे युक्त इस सृष्टिकी रचना मैंने ही की है॥ १२॥

देवता तथा मुनिगण नग्न ही उत्पन्न होते हैं। लोकमें अन्य जो मनुष्य हैं, वे भी वस्त्रविहीन-अवस्थामें उत्पन्न होते हैं। इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त न किये हुए लोग सुन्दर वस्त्र धारण करके भी नग्न हैं और

क्षमा धृतिरहिंसा च वैराग्यं चैव सर्वशः।
तुल्यौ मानावमानौ च तदावरणमुत्तमम्॥ १५

भस्मस्नानेन दिग्धाङ्गो ध्यायते मनसा भवम्।
यद्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना॥ १६

तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम्।
तस्माद्यत्नपरो भूत्वा त्रिकालमपि यः सदा॥ १७

भस्मना कुरुते स्नानं गाणपत्यं स गच्छति।
समाहृत्य क्रतून् सर्वान् गृहीत्वा व्रतमुत्तमम्॥ १८

ध्यायन्ति ये महादेवं लीलासद्भावभाविताः।
उत्तरेणार्यपन्थानं तेऽमृतत्वमवाप्नुयुः॥ १९

दक्षिणेन च पन्थानं ये श्मशानानि भेजिरे।
अणिमा गरिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेव च॥ २०

इच्छाकामावसायित्वं तथा प्राकाम्यमेव च।
ईशित्वं च वशित्वं च अमरत्वं च ते गताः॥ २१

इन्द्रादयस्तथा देवाः कामिकव्रतमास्थिताः।
ऐश्वर्यं परमं प्राप्य सर्वे प्रथिततेजसः॥ २२

व्यपगतमदमोहमुक्तराग-
स्तमरजदोषविवर्जितस्वभावः।
परिभवमिदमुत्तमं विदित्वा
पशुपतियोगपरो भवेत्सदैव॥ २३

इमं पाशुपतं ध्यायन् सर्वपापप्रणाशनम्।
यः पठेच्च शुचिर्भूत्वा श्रद्दधानो जितेन्द्रियः॥ २४

सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति।
ते सर्वे मुनयः श्रुत्वा वसिष्ठाद्या द्विजोत्तमाः॥ २५

इन्द्रियजित् लोग नग्न रहते हुए भी वस्त्रसे ढँके हुए हैं, इसमें वस्त्र हेतु नहीं माना गया है॥ १३-१४॥

क्षमा, धैर्य, अहिंसा, वैराग्य तथा हर तरहसे मान-अपमानमें समानता उत्तम आवरण कहे गये हैं॥ १५॥

भस्म-स्नानके द्वारा पूरे शरीरमें भस्मका अनुलेपनकर मनसे शिवजीका ध्यान करना चाहिये। हजारों प्रकारके कुकृत्य करके भी यदि जो कोई मनुष्य भस्मसे स्नान करे, तो उसके सभी पापोंको भस्म उसी प्रकार जला डालता है, जिस प्रकार अग्नि अपने तेजसे वनको दग्ध कर देता है॥ १६ १/२॥

अतएव जो मनुष्य प्रयत्नशील होकर त्रिकाल भस्म-स्नान करता है, वह मेरे गणोंमें श्रेष्ठताको प्राप्त होता है॥ १७ १/२॥

जो लोग उत्तम व्रत धारण करके समस्त यज्ञ सम्पन्न करके महादेवके लीला-विग्रहका चिन्तन करते हुए उनकी आराधना करते हैं; वे अमृतत्व (मोक्ष)-को प्राप्त होते हैं। इसे श्रेष्ठ उत्तरमार्ग कहा गया है॥ १८-१९॥

जो लोग दक्षिण-मार्गके द्वारा नाशवान् काम्यकर्मोंके लिये परमेश्वरकी आराधना करते हैं, वे अणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, इच्छाकामावसायित्व, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व सिद्धियाँ प्राप्तकर अमर हो जाते हैं॥ २०-२१॥

इन्द्र आदि सभी देवता भी काम्य व्रतका आश्रयणकर परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति करके अपरिमित तेजस्वी हो गये॥ २२॥

मद-मोहसे शून्य, रागोंसे मुक्त तथा तम-रज आदि विकारोंसे रहित स्वभाववाला होकर संसारको परिभूत करनेवाले पाशुपतयोगको उत्तम जानकर सदा इस पशुपतियोगमें स्थित रहना चाहिये॥ २३॥

सभी इन्द्रियोंको जीतकर जो मनुष्य पवित्र मनसे सभी पापोंका नाश करनेवाले इस पाशुपतयोगका ध्यानपूर्वक श्रद्धा-भावसे पाठ करता है, सभी पातकोंसे रहित विशुद्ध आत्मावाला वह प्राणी रुद्रलोकको प्राप्त होता है॥ २४ १/२॥

महादेवजीका यह वचन सुनकर द्विजोंमें श्रेष्ठ

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गा बभूवुर्विगतस्पृहाः।
रुद्रलोकाय कल्पान्ते संस्थिताः शिवतेजसा॥ २६

वसिष्ठ आदि वे सभी मुनि अपने अंगोंमें पीताभ-श्वेत भस्म लगाने लगे और इच्छारहित वे मुनिगण कल्पके अन्तमें शिवजीके तेजके प्रभावसे रुद्रलोकके लिये प्रस्थित हुए॥ २५-२६॥

तस्मान्न निन्द्याः पूज्याश्च विकृता मलिना अपि।
रूपान्विताश्च विप्रेन्द्राः सदा योगीन्द्रशङ्कया॥ २७

[नन्दी कहते हैं—हे सनत्कुमारजी!] अतः मलिन, विकृत, रूपसम्पन्न चाहे जिस रूपमें हो, महान् योगीकी शंका करके उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, अपितु उनकी सदा पूजा करनी चाहिये॥ २७॥

बहुना किं प्रलापेन भवभक्ता द्विजोत्तमाः।
सम्पूज्याः सर्वयत्नेन शिववन्नात्र संशयः॥ २८

अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता; दृढ़ व्रतवाले भगवान् शिवके द्विजश्रेष्ठ भक्त चाहे वे मलिन ही क्यों न हों, पूरे प्रयत्नसे शिवकी ही भाँति उनकी पूजा करनी चाहिये, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ २८½॥

मलिनाश्चैव विप्रेन्द्रा भवभक्ता दृढव्रताः।
दधीचस्तु यथा देवदेवं जित्वा व्यवस्थितः॥ २९

इसी भाँति मुनि दधीच शिवकी भक्तिसे देवदेव नारायणको जीतकर लोकमें प्रतिष्ठित हो गये थे; इसमें सन्देह नहीं है॥ २९½॥

नारायणं तथा लोके रुद्रभक्त्या न संशयः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मदिग्धतनूरुहाः॥ ३०

जटिनो मुण्डिनश्चैव नग्ना नानाप्रकारिणः।
सम्पूज्याः शिववन्नित्यं मनसा कर्मणा गिरा॥ ३१

अतएव भस्मसे लिप्त शरीरवाले, जटाधारी, मुण्डित सिरवाले तथा दिगम्बर वेशवाले अनेक प्रकारके महात्माओंकी मन, वचन एवं कर्मसे पूर्ण प्रयत्नके साथ महादेवकी भाँति विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ३०-३१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे योगिप्रशंसा नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'योगिप्रशंसा' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

महर्षि दधीच एवं राजा क्षुपकी कथा तथा महामृत्युंजयमन्त्रकी स्वरूपमीमांसा

सनत्कुमार उवाच

कथं जघान राजानं क्षुपं पादेन सुव्रत।
दधीचः समरे जित्वा देवदेवं जनार्दनम्॥ १

वज्रास्थित्वं कथं लेभे महादेवान् महातपाः।
वक्तुमर्हसि शैलादे जितो मृत्युस्त्वया यथा॥ २

सनत्कुमार बोले—हे सुव्रत! मुनि दधीचने समरमें देवदेव नारायणको जीतकर राजा क्षुपके ऊपर अपने पैरसे प्रहार क्यों किया? और उन महातपस्वीने महादेवजीसे अपनी हड्डियाँ वज्रतुल्य होनेका वरदान किस प्रकार प्राप्त किया और हे नन्दीश्वर! जिस प्रकार आपने मृत्युपर विजय प्राप्त की, वह भी आप कृपा करके बताइये॥ १-२॥

शैलादिरुवाच

ब्रह्मपुत्रो महातेजा राजा क्षुप इति स्मृतः।
अभून्मित्रो दधीचस्य मुनीन्द्रस्य जनेश्वरः॥ ३

नन्दी कहते हैं—ब्रह्माजीके पुत्र महान् तेजवाले क्षुप नामक एक राजा हुए हैं। उन लोकपति क्षुपकी मुनीश्वर दधीचसे मित्रता थी॥ ३॥

चिरात्तयोः प्रसङ्गाद्वै वादः क्षुपदधीचयोः।
अभवत् क्षत्रियश्रेष्ठो विप्र एवेति विश्रुतः॥ ४

अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः।
तस्मादिन्द्रो ह्यहं वह्निर्यमश्च निर्ऋतिस्तथा॥ ५

वरुणश्चैव वायुश्च सोमो धनद एव च।
ईश्वरोऽहं न सन्देहो नावमन्तव्य एव च॥ ६

महती देवता या सा महतश्चापि सुव्रत।
तस्मात्त्वया महाभाग च्यावनेय सदा ह्यहम्॥ ७

नावमन्तव्य एवेह पूजनीयश्च सर्वथा।
श्रुत्वा तथा मतं तस्य क्षुपस्य मुनिसत्तमः॥ ८

दधीचश्च्यावनिश्चोग्रो गौरवादात्मनो द्विजः।
अताडयत्क्षुपं मूर्ध्नि दधीचो वाममुष्टिना।
चिच्छेद वज्रेण च तं दधीचं बलवान् क्षुपः॥ ९

ब्रह्मलोके पुरासौ हि ब्रह्मणः क्षुतसम्भवः।
लब्धं वज्रं च कार्यार्थं वज्रिणा चोदितः प्रभुः॥ १०

स्वेच्छयैव नरो भूत्वा नरपालो बभूव सः।
तस्माद्राजा स विप्रेन्द्रमजयद्वै महाबलः॥ ११

यथा वज्रधरः श्रीमान् बलवांस्तमसान्वितः।
पपात भूमौ निहतो वज्रेण द्विजपुङ्गवः॥ १२

सस्मार च तदा तत्र दुःखाद्वै भार्गवं मुनिम्।
शुक्रोऽपि सन्धयामास ताडितं कुलिशेन तम्॥ १३

योगादेत्य दधीचस्य देहं देहभृतांवरः।
सन्धाय पूर्ववद्देहं दधीचस्याह भार्गवः॥ १४

भो दधीच महाभाग देवदेवमुमापतिम्।
सम्पूज्य पूज्यं ब्रह्माद्यैर्देवदेवं निरञ्जनम्॥ १५

अवध्यो भव विप्रर्षे प्रसादात्त्र्यम्बकस्य तु।
मृतसञ्जीवनं तस्माल्लब्धमेतन्मया द्विज॥ १६

कालान्तरमें उन क्षुप तथा दधीचके मध्य किसी बातके सन्दर्भमें विवाद हो गया। क्षुपका कथन था कि क्षत्रिय श्रेष्ठ होता है और दधीचका कथन था कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ होता है॥ ४॥

राजा आठ लोकपालोंका विग्रहस्वरूप होता है। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, चन्द्र, कुबेर तथा ईश्वर मैं ही हूँ; इसमें कोई सन्देह नहीं है, अतः तुम्हें मेरी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये॥ ५-६॥

हे सुव्रत! वह राजा महान् देवता होता है। अतः हे च्यवनपुत्र! हे महाभाग! तुम्हें मेरा अपमान कभी नहीं करना चाहिये, अपितु सर्वथा मेरी पूजा करनी चाहिये॥ ७½॥

उन क्षुपका वह वचन सुनकर च्यवनपुत्र मुनिश्रेष्ठ द्विज दधीचने आत्मगौरवसे प्रेरित होकर अपने बाँयें हाथसे क्षुपके सिरपर तेज मुष्टिका-प्रहार किया॥ ८½॥

बलशाली क्षुपने भी वज्रसे उन दधीचपर प्रहार किया। पूर्वकालमें राजा क्षुप ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीकी छींकसे उत्पन्न हुए थे। भगवान्‌की प्रेरणासे असुरोंके पराजयरूप कार्यके निमित्त इन्द्रसे उन्होंने वज्र प्राप्त किया था॥ ९-१०॥

अपनी इच्छासे ही नर होकर वे राजा बने थे। श्रीयुक्त, बलवान् तथा तमोगुणयुक्त इन्द्रकी भाँति राजा क्षुप भी बलशाली थे, इसीलिये वे विप्रेन्द्र दधीचको जीतनेमें समर्थ हो गये॥ ११½॥

राजा क्षुपके वज्र-प्रहारसे निहत द्विजश्रेष्ठ दधीच भूमिपर गिर पड़े। फिर अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने भृगु-पुत्र मुनि शुक्राचार्यका स्मरण किया॥ १२½॥

देहधारियोंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यने भी वहाँ पहुँचकर दधीचमुनिके वज्र-ताड़ित शरीरको अपने योगबलसे यथावत् जोड़ दिया॥ १३½॥

दधीचके शरीरको पूर्वकी भाँति ठीककर भार्गव शुक्राचार्यने कहा—हे महाभाग दधीच! हे विप्रवर! ब्रह्मा आदि देवताओंसे पूजित निरंजन देवाधिदेव उमापति शिवकी सम्यक् पूजा करके उन त्र्यम्बक महादेवके अनुग्रहसे अवध्य हो जाओ॥ १४-१५½॥

हे द्विज! उन्हीं महादेवजीसे मैंने भी मृतसंजीवनी

नास्ति मृत्युभयं शम्भोर्भक्तानामिह सर्वतः।
मृतसञ्जीवनं चापि शैवमद्य वदामि ते॥ १७

त्रियम्बकं यजामहे त्रैलोक्यपितरं प्रभुम्।
त्रिमण्डलस्य पितरं त्रिगुणस्य महेश्वरम्॥ १८

त्रितत्त्वस्य त्रिवह्नेश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः।
त्रिदेवस्य महादेवं सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्॥ १९

सर्वभूतेषु सर्वत्र त्रिगुणे प्रकृतौ तथा।
इन्द्रियेषु तथान्येषु देवेषु च गणेषु च॥ २०

पुष्पेषु गन्धवत्सूक्ष्मः सुगन्धिः परमेश्वरः।
पुष्टिश्च प्रकृतिर्यस्मात्पुरुषस्य द्विजोत्तम॥ २१

महदादिविशेषान्तविकल्पस्यापि सुव्रत।
विष्णोः पितामहस्यापि मुनीनां च महामुने॥ २२

इन्द्रस्यापि च देवानां तस्माद्वै पुष्टिवर्धनः।
तं देवममृतं रुद्रं कर्मणा तपसा तथा॥ २३

स्वाध्यायेन च योगेन ध्यानेन च यजामहे।
सत्येनानेन मुक्षीयान्मृत्युपाशाद्भवः स्वयम्॥ २४

बन्धमोक्षकरो यस्मादुर्वारुकमिव प्रभुः।
मृतसञ्जीवनो मन्त्रो मया लब्धस्तु शङ्करात्॥ २५

जप्त्वा हुत्वाभिमन्त्र्यैवं जलं पीत्वा दिवानिशम्।
लिङ्गस्य सन्निधौ ध्यात्वा नास्ति मृत्युभयं द्विज॥ २६

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तपसाराध्य शङ्करम्।
वज्रास्थित्वमवध्यत्वमदीनत्वं च लब्धवान्॥ २७

विद्या प्राप्त की है। शिवजीके भक्तोंको मृत्युसे किसी प्रकारका भय नहीं होता है। उसी शैवी मृतसंजीवनी विद्याको अब मैं तुम्हें बता रहा हूँ॥ १६-१७॥

तीनों लोकोंके पिता; सोम-चन्द्र-अग्नि—इन तीनों मण्डलोंके जनक; सत-रज-तम—तीनों गुणोंके महेश्वर; तीन तत्त्वों (बुद्धि-अहंकार-मन), तीन अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि), तीन देवों (ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र) तथा जगत्के सभी तीन प्रकारके पदार्थोंके स्वामी, सुगन्धिरूप पुष्टिवर्धन परमेश्वर महादेवका यजन करना चाहिये॥ १८-१९॥

सुगन्धिरूप वह सूक्ष्म परमेश्वर सभी जगह, समस्त जीवधारियोंमें, त्रिगुणात्मिका प्रकृतिमें, इन्द्रियोंमें, अन्य देवताओं तथा गणोंमें उसी प्रकार अधिष्ठित है, जैसे पुष्पोंमें गन्ध विद्यमान रहती है॥ २०$^{१}/_{२}$॥

हे द्विजश्रेष्ठ! चूँकि पुरुषरूप परमेश्वरकी पुष्टि प्रकृतिरूप है। हे सुव्रत! हे महामुने! अतएव वही परमेश्वर महत् आदिसे लेकर विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्-प्रपंच, विष्णु, ब्रह्मा, मुनियों तथा इन्द्र आदि सभी देवताओंका पुष्टिवर्धन करता है॥ २१-२२$^{१}/_{२}$॥

कर्म, तपस्या, स्वाध्याय, योग तथा ध्यानके द्वारा उन अमृतरूप महादेवका यजन करना चाहिये॥ २३$^{१}/_{२}$॥

जन्म-मरणरूप बन्धनसे मुक्ति प्रदान करनेवाले प्रभु शिव इस सत्यके द्वारा जीवको मृत्युके पाशसे छुटकारा प्रदान करते हैं। सूर्यकी किरणोंसे पककर अपने मूलबन्धसे स्वयं मुक्त हुए उर्वारुक (ककड़ी)-की भाँति वह जीव शिवाराधनके द्वारा सांसारिक बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ २४$^{१}/_{२}$॥

मैंने भी शिवजीसे ही मृतसंजीवनी मन्त्र प्राप्त किया है। हे द्विज! जप करने, हवन करने, अभिमन्त्रित जलका पान करने तथा दिन-रात शिवलिङ्गके सांनिध्यमें बैठकर उनका ध्यान करनेसे मृत्युका भय नहीं रह जाता॥ २५-२६॥

उन शुक्राचार्यका वह वचन सुनकर मुनि दधीचने घोर तपस्या करके शिवकी आराधना की, जिसके

एवमाराध्य देवेशं दधीचो मुनिसत्तमः।
प्राप्यावध्यत्वमन्यैश्च वज्रास्थित्वं प्रयत्नतः॥ २८

परिणामस्वरूप उनकी हड्डियाँ वज्र-तुल्य हो गयीं, वे अवध्य हो गये तथा उनकी सारी दीनता दूर हो गयी॥ २७॥

अताडयच्च राजेन्द्रं पादमूलेन मूर्धनि।
क्षुपो दधीचं वज्रेण जघानोरसि च प्रभुः॥ २९

इस प्रकार देवेश्वर शिवकी आराधना करके मुनिश्रेष्ठ दधीचने वज्रके समान हड्डियाँ हो जाने तथा दूसरोंसे मारे न जा सकनेका वरदान प्राप्तकर चेष्टापूर्वक राजा क्षुपके सिरपर अपने चरण-मूलसे प्रहार किया। इसपर राजा क्षुपने भी अपने वज्रसे उनकी छातीपर आघात किया॥ २८-२९॥

नाभून्नाशाय तद्वज्रं दधीचस्य महात्मनः।
प्रभावात्परमेशस्य वज्रबद्धशरीरिणः॥ ३०

किंतु भगवान् शिवके अनुग्रहसे वज्र-तुल्य शरीरवाले महात्मा दधीचको वह वज्र विनष्ट करनेमें समर्थ नहीं हो सका॥ ३०॥

दृष्ट्वाप्यवध्यत्वमदीनतां च
क्षुपो दधीचस्य तदा प्रभावम्।
आराधयामास हरिं मुकुन्द-
मिन्द्रानुजं प्रेक्ष्य तदाम्बुजाक्षम्॥ ३१

दधीचका अवध्यत्व, उनकी अदीनता तथा उनके तपोबलका प्रभाव देखकर राजा क्षुप कमलके सदृश नेत्रवाले उपेन्द्र मुकुन्द श्रीविष्णुकी आराधना करने लगे॥ ३१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे क्षुपाभिधनृपपराभववर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'क्षुपाभिधनृपपराभववर्णन' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

राजा क्षुपद्वारा विष्णुकी आराधना, विष्णुद्वारा शिवभक्तोंकी महिमाका कथन

नन्द्युवाच

पूजया तस्य सन्तुष्टो भगवान् पुरुषोत्तमः।
श्रीभूमिसहितः श्रीमान् शङ्खचक्रगदाधरः॥ १

किरीटी पद्महस्तश्च सर्वाभरणभूषितः।
पीताम्बरश्च भगवान् देवैर्दैत्यैश्च संवृतः॥ २

प्रददौ दर्शनं तस्मै दिव्यं वै गरुडध्वजः।
दिव्येन दर्शनेनैव दृष्ट्वा देवं जनार्दनम्॥ ३

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमारजी!] उन राजा क्षुपकी आराधनासे प्रसन्न होकर देवताओं तथा दैत्योंसे पूजित, हाथोंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए, पीत वस्त्र पहने हुए, सभी आभूषणोंसे सुशोभित एवं मुकुट धारण किये हुए लक्ष्मी तथा भूमिसहित गरुड़ध्वज श्रीमान् भगवान् पुरुषोत्तमने उन क्षुपको दिव्य दर्शन दिया॥ १-२½॥

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणम्य गरुडध्वजम्।
त्वमादिस्त्वमनादिश्च प्रकृतिस्त्वं जनार्दनः॥ ४

दिव्य दर्शनके अनन्तर उन गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु देवको प्रणाम करके राजा क्षुप अत्यन्त प्रिय वाणीमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ३½॥

पुरुषस्त्वं जगन्नाथो विष्णुर्विश्वेश्वरो भवान्।
योऽयं ब्रह्मासि पुरुषो विश्वमूर्तिः पितामहः॥ ५

आप आदि हैं तथा आप आदिरहित भी हैं। आप ही प्रकृति हैं, आप ही जनार्दन हैं, आप ही पुरुष हैं, आप ही जगन्नाथ, आप ही विष्णु तथा आप ही

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

तत्त्वमाद्यं भवानेव परं ज्योतिर्जनार्दन।
परमात्मा परं धाम श्रीपते भूपते प्रभो॥ ६

त्वत्क्रोधसम्भवो रुद्रस्तमसा च समावृतः।
त्वत्प्रसादाज्जगद्धाता रजसा च पितामहः॥ ७

त्वत्प्रसादात्स्वयं विष्णुः सत्त्वेन पुरुषोत्तमः।
कालमूर्ते हरे विष्णो नारायण जगन्मय॥ ८

महांस्तथा च भूतादिस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च।
त्वयैवाधिष्ठितान्येव विश्वमूर्ते महेश्वर॥ ९

महादेव जगन्नाथ पितामह जगद्गुरो।
प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर॥ १०

प्रसीद त्वं जगन्नाथ शरण्यं शरणं गतः।
वैकुण्ठ शौरे सर्वज्ञ वासुदेव महाभुज॥ ११

सङ्कर्षण महाभाग प्रद्युम्न पुरुषोत्तम।
अनिरुद्ध महाविष्णो सदा विष्णो नमोऽस्तु ते॥ १२

विष्णो तवासनं दिव्यमव्यक्तं मध्यतो विभुः।
सहस्रफणसंयुक्तस्तमोमूर्तिर्धराधरः ॥ १३

अधश्च धर्मो देवेश ज्ञानं वैराग्यमेव च।
ऐश्वर्यमासनस्यास्य पादरूपेण सुव्रत॥ १४

सप्तपातालपादस्त्वं धराजघनमेव च।
वासांसि सागराः सप्त दिशश्चैव महाभुजाः॥ १५

द्यौर्मूर्धा ते विभो नाभिः खं वायुर्नासिकां गतः।
नेत्रे सोमश्च सूर्यश्च केशा वै पुष्करादयः॥ १६

नक्षत्रतारका द्यौश्च ग्रैवेयकविभूषणम्।
कथं स्तोष्यामि देवेशं पूज्यश्च पुरुषोत्तमः॥ १७

विश्वेश्वर हैं। जो ये पुरुषरूप विश्वमूर्ति पितामह हैं, वे भी आप ही हैं॥ ४-५॥

हे जनार्दन! जो आदि ज्योति है, वह आप ही हैं। हे लक्ष्मीकान्त! हे भूपते! आप ही परमात्मा तथा आप ही परमधाम हैं॥ ६॥

तमोगुणसे संलिप्त भगवान् रुद्र आपके क्रोधसे आविर्भूत हैं तथा आपके ही अनुग्रहसे रजोगुणसे सम्पन्न जगत्के सृजनकर्ता पितामह ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है। हे कालमूर्ते! हे हरे! हे विष्णो! हे नारायण! हे जगन्मय! सत्त्वगुणयुक्त साक्षात् पुरुषोत्तम विष्णु भी आपके ही अनुग्रहसे अधिष्ठित हैं॥ ७-८॥

हे विश्वमूर्ते! हे महेश्वर! महत्, पंचमहाभूतादि, पाँच तन्मात्राएँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं मन—ये सब आपके ही द्वारा अधिष्ठित हैं॥ ९॥

हे महादेव! हे जगन्नाथ! हे पितामह! हे जगद्गुरो! हे देवदेवेश! हे परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये॥ १०॥

हे शरणागतको शरण प्रदान करनेवाले जगन्नाथ! हे वैकुण्ठ! हे शौरे! हे सर्वज्ञ! हे वासुदेव! हे महाभुज! आप प्रसन्न होइये॥ ११॥

हे संकर्षण! हे महाभाग! हे प्रद्युम्न! हे पुरुषोत्तम! हे अनिरुद्ध! हे महाविष्णो! हे विष्णो! आपको सदा नमस्कार है॥ १२॥

हे विष्णो! हजार फणोंसे युक्त, तमोमूर्तिस्वरूप, पृथ्वीको धारण करनेवाले, ऐश्वर्यसम्पन्न शेषनाग आपके दिव्य तथा अव्यक्त आसनके रूपमें अधिष्ठित हैं॥ १३॥

हे देवेश! हे सुव्रत! इस आसनके नीचे पादके रूपमें साक्षात् धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य विराजमान हैं॥ १४॥

हे विभो! सातों पाताल आपके चरणरूपमें, पृथ्वी जाँघके रूपमें, सातों समुद्र वस्त्रके रूपमें, दिशाएँ विशाल भुजाओंके रूपमें, अन्तरिक्ष मस्तकके रूपमें, आकाश नाभिके रूपमें, वायु नासिकाके रूपमें, दोनों नेत्र सूर्य-चन्द्रके रूपमें, बाल मेघोंके रूपमें तथा नक्षत्र-तारे और सम्पूर्ण गगनमण्डल आपके गलेके आभूषणके

श्रद्धया च कृतं दिव्यं यच्छ्रुतं यच्च कीर्तितम्।
यदिष्टं तत्क्षमस्वेश नारायण नमोऽस्तु ते॥ १८

शैलादिरुवाच

इदं तु वैष्णवं स्तोत्रं सर्वपापप्रणाशनम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि क्षुपेण परिकीर्तितम्॥ १९

श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति॥ २०

सम्पूज्य चैवं त्रिदशेश्वराद्यैः
स्तुत्वा स्तुतं देवमजेयमीशम्।
विज्ञापयामास निरीक्ष्य भक्त्या
जनार्दनाय प्रणिपत्य मूर्ध्ना॥ २१

राजोवाच

भगवन् ब्राह्मणः कश्चिद्दधीच इति विश्रुतः।
धर्मवेत्ता विनीतात्मा सखा मम पुराभवत्॥ २२

अवध्यः सर्वदा सर्वैः शङ्करार्चनतत्परः।
सावज्ञं वामपादेन स मां मूर्ध्नि सदस्यथ॥ २३

ताडयामास देवेश विष्णो विश्वजगत्पते।
उवाच च मदाविष्टो न बिभेमीति सर्वतः॥ २४

जेतुमिच्छामि तं विप्रं दधीचं जगदीश्वर।
यथा हि तं तथा कर्तुं त्वमर्हसि जनार्दन॥ २५

शैलादिरुवाच

ज्ञात्वा सोऽपि दधीचस्य ह्यवध्यत्वं महात्मनः।
सस्मार च महेशस्य प्रभावमतुलं हरिः॥ २६

एवं स्मृत्वा हरिः प्राह ब्रह्मणः क्षुतसम्भवम्।
विप्राणां नास्ति राजेन्द्र भयमेत्य महेश्वरम्॥ २७

विशेषाद्रुद्रभक्तानामभयं सर्वदा नृप।
नीचानामपि सर्वत्र दधीचस्यास्य किं पुनः॥ २८

तस्मात्तव महाभाग विजयो नास्ति भूपते।
दुःखं करोमि विप्रस्य शापार्थं ससुरस्य मे॥ २९

रूपमें अधिष्ठित हैं। आप पुरुषोत्तम हैं और परम पूज्य हैं। आप देवेश्वरकी स्तुति मैं किस प्रकार करूँ? आपके विषयमें जैसा सुना तथा कहा गया है, उसी दिव्य भावको मैंने श्रद्धापूर्वक स्तुतिरूपमें कह दिया। हे ईश! हे नारायण! मेरी अभिलाषाके लिये मुझे क्षमा कीजिये। आपको नमस्कार है॥ १५—१८॥

नन्दीश्वर बोले—जो मनुष्य क्षुपके द्वारा की गयी सर्वपापनाशिनी इस विष्णु-स्तुतिको भक्तिपूर्वक पढ़ता है या सुनता है अथवा ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह विष्णु-लोकको प्राप्त होता है॥ १९-२०॥

इस प्रकार इन्द्र आदिके द्वारा स्तुत किये जानेवाले अपराजेय परमेश्वर विष्णुकी भक्तिपूर्वक स्तुति करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनकी ओर कातर दृष्टिसे देखते हुए क्षुपने कहा॥ २१॥

राजा बोले—हे भगवन्! दधीच नामसे लोकप्रसिद्ध एक धर्मज्ञ तथा विनीत आत्मावाले ब्राह्मण हैं, जो पहले मेरे मित्र थे। शिवजीकी आराधनामें सदा तत्पर रहनेके कारण उनकी कृपासे वे सभीसे अवध्य हैं। हे देवेश! हे विष्णो! हे जगत्पते! उन्होंने सभामें मेरा तिरस्कार करते हुए अपने बायें पैरसे मेरे सिरपर प्रहार कर दिया और उन मदोन्मत्तने कहा कि मैं किसीसे भी नहीं डरता हूँ॥ २२—२४॥

हे जगदीश्वर! मैं उन विप्र दधीचको जीतना चाहता हूँ। हे जनार्दन! मैं उन्हें जिस भी तरहसे जीत सकूँ; आप वैसा उपाय कीजिये॥ २५॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उन विष्णुने भी महात्मा दधीचके अवध्यत्वको जानकर तथा भगवान् शिवके अतुलित प्रभावका स्मरण करके ब्रह्माकी छींकसे उत्पन्न क्षुपसे कहा—हे राजेन्द्र! महेश्वरकी भक्तिको प्राप्त विप्रोंको किसी प्रकारका भय नहीं रहता। हे राजन्! विशेषरूपसे रुद्रके भक्त सर्वदा भयसे मुक्त रहते हैं, चाहे वे परम नीच ही क्यों न हों; फिर इन दधीचमुनिकी तो बात ही क्या?॥ २६—२८॥

हे महाभाग! हे भूपते! अतः अब आपके विजयकी आशा नहीं है। देवताओंसहित अपनेको शापित होनेके

भविता तस्य शापेन दक्षयज्ञे सुरैः समम्।
विनाशो मम राजेन्द्र पुनरुत्थानमेव च॥ ३०

तस्मात्समेत्य विप्रेन्द्र सर्वयत्नेन भूपते।
करोमि यत्नं राजेन्द्र दधीचविजयाय ते॥ ३१

शैलादिरुवाच

श्रुत्वा वाक्यं क्षुपः प्राह तथास्त्विति जनार्दनम्।
भगवानपि विप्रस्य दधीचस्याश्रमं ययौ॥ ३२

आस्थाय रूपं विप्रस्य भगवान् भक्तवत्सलः।
दधीचमाह ब्रह्मर्षिमभिवन्द्य जगद्गुरुः॥ ३३

श्रीभगवानुवाच

भो भो दधीच ब्रह्मर्षे भवार्चनरताव्यय।
वरमेकं वृणे त्वत्तस्तं भवान् दातुमर्हति॥ ३४

याचितो देवदेवेन दधीचः प्राह विष्णुना।
ज्ञातं तवेप्सितं सर्वं न बिभेमि तवाप्यहम्॥ ३५

भवान् विप्रस्य रूपेण आगतोऽसि जनार्दन।
भूतं भविष्यं देवेश वर्तमानं जनार्दन॥ ३६

ज्ञातं प्रसादाद् रुद्रस्य द्विजत्वं त्यज सुव्रत।
आराधितोऽसि देवेश क्षुपेण मधुसूदन॥ ३७

जाने तवैनां भगवन् भक्तवत्सलतां हरे।
स्थाने तवैषा भगवन् भक्तवात्सल्यता हरे॥ ३८

अस्ति चेद्भगवन् भीतिर्भवार्चनरतस्य मे।
वक्तुमर्हसि यत्नेन वरदाम्बुजलोचन॥ ३९

वदामि न मृषा तस्मान्न बिभेमि जनार्दन।
न बिभेमि जगत्यस्मिन् देवदैत्यद्विजादपि॥ ४०

नन्द्युवाच

श्रुत्वा वाक्यं दधीचस्य तदास्थाय जनार्दनः।
स्वरूपं सस्मितं प्राह सन्त्यज्य द्विजतां क्षणात्॥ ४१

लिये मैं अब विप्र दधीचको क्रोधित करूँगा॥ २९॥

हे राजेन्द्र! उनके शापसे दक्षके यज्ञमें सभी देवताओंसहित मेरा विनाश होगा और पुनः उत्थान होगा॥ ३०॥

हे भूपते! हे राजेन्द्र! समस्त देवताओंसहित मैं विप्रेन्द्र दधीचमुनिसे आपकी विजयके लिये पूरे मनसे प्रयास करूँगा॥ ३१॥

नन्दीश्वर बोले—भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर क्षुपने उनसे कहा—आप वैसा ही कीजिये। इधर भक्तवत्सल भगवान् विष्णु ब्राह्मणका रूप धारणकर दधीचमुनिके आश्रम पहुँचे। जगद्गुरु विष्णुने ब्रह्मर्षि दधीचको प्रणामकर उनसे कहा॥ ३२-३३॥

श्रीभगवान् बोले—हे शिवाराधनमें तत्पर निर्विकार ब्रह्मर्षि दधीच! मैं आपसे एक वरकी याचना करता हूँ। आप मुझे वह वर देनेकी कृपा कीजिये॥ ३४॥

देवदेव विष्णुके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दधीचने कहा—मैं आपके सभी भावों तथा मनोरथोंको समझ गया हूँ। मुझे आपसे भी कोई भय नहीं है॥ ३५॥

हे जनार्दन! आप यहाँ ब्राह्मणका रूप धारणकर आये हुए हैं। हे देवेश! हे जनार्दन! भगवान् शिवकी कृपासे मैं भूत, भविष्य तथा वर्तमान सब कुछ जानता हूँ। हे सुव्रत! आप यह विप्ररूप छोड़ दीजिये। हे देवेश! हे मधुसूदन! क्षुपने अपनी कार्य-सिद्धिके लिये आपकी आराधना की है॥ ३६-३७॥

हे भगवन्! हे हरे! आपकी यह भक्तवत्सलता मुझे पूर्ण रूपसे विदित है। हे भगवन्! हे हरे! आज यहाँ भी आपकी वही भक्तवत्सलता विद्यमान है॥ ३८॥

हे भगवन्! हे वरदाता! हे कमलनयन! यदि आपका ऐसा भक्तवात्सल्य है तो आप सोच-समझकर यह बताइये कि मुझ शिवाराधनतत्पर व्यक्तिको आपसे क्या भय हो सकता है?॥ ३९॥

हे जनार्दन! मैं मिथ्या-भाषण नहीं करता; इसीलिये इस जगत्में देवता, दैत्य तथा ब्राह्मण किसीसे भी मैं भयभीत नहीं रहता हूँ॥ ४०॥

नन्दी कहते हैं—[हे सनत्कुमार!] दधीचका वह

श्रीभगवानुवाच

भयं दधीच सर्वत्र नास्त्येव तव सुव्रत।
भवार्चनरतो यस्माद्भवान् सर्वज्ञ एव च॥ ४२

बिभेमीति सकृद्वक्तुं त्वमर्हसि नमस्तव।
नियोगान्मम विप्रेन्द्र क्षुपं प्रति सदस्यथ॥ ४३

एवं श्रुत्वापि तद्वाक्यं सान्त्वं विष्णोर्महामुनिः।
न बिभेमीति तं प्राह दधीचो देवसत्तमम्॥ ४४

प्रभावाद्देवदेवस्य शम्भोः साक्षात्पिनाकिनः।
शर्वस्य शङ्करस्यास्य सर्वज्ञस्य महामुनिः॥ ४५

ततस्तस्य मुनेः श्रुत्वा वचनं कुपितो हरिः।
चक्रमुद्यम्य भगवान् दिधक्षुर्मुनिसत्तमम्॥ ४६

अभवत्कुण्ठिताग्रं हि विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम्।
प्रभावाद्धि दधीचस्य क्षुपस्यैव हि सन्निधौ॥ ४७

दृष्ट्वा तत्कुण्ठिताग्रं हि चक्रं चक्रिणमाह सः।
दधीचः सस्मितं साक्षात्सदसद्व्यक्तिकारणम्॥ ४८

भगवन् भवता लब्धं पुरातीव सुदारुणम्।
सुदर्शनमिति ख्यातं चक्रं विष्णो प्रयत्नतः॥ ४९

भवस्यैतच्छुभं चक्रं न जिघांसति मामिह।
ब्रह्मास्त्राद्यैस्तथान्यैर्हि प्रयत्नं कर्तुमर्हसि॥ ५०

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा निर्वीर्यमायुधम्।
ससर्ज च पुनस्तस्मै सर्वास्त्राणि समन्ततः॥ ५१

चक्रुर्देवास्ततस्तस्य विष्णोः साहाय्यमव्ययाः॥
द्विजेनैकेन योद्धुं हि प्रवृत्तस्य महाबलाः॥ ५२

वचन सुनकर उसी क्षण ब्राह्मणरूप छोड़कर विष्णुने अपना रूप धारण कर लिया और हँसकर दधीचसे कहा॥ ४१॥

श्रीभगवान् बोले—हे सुव्रत! हे दधीच! क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं तथा शिवार्चनमें रत रहनेवाले हैं, इसलिये आपको सभी स्थानोंपर किसी भी प्रकारका भय व्याप्त नहीं कर सकता॥ ४२॥

हे विप्रवर! आपको नमस्कार है। मेरा आग्रह है कि आप एक बार सभामें क्षुपसे बोल दीजिये कि 'मैं आपसे डरता हूँ'॥ ४३॥

इस प्रकार विष्णुभगवान्का वह विनय तथा प्रीतियुक्त वचन सुनकर महामुनि दधीचने देवोंमें श्रेष्ठ उन विष्णुसे कहा—मैं साक्षात् पिनाकधारी सर्वज्ञ शर्व देवदेव महादेव शिवके अनुग्रहसे किसीसे भी नहीं डरता॥ ४४-४५॥

तत्पश्चात् उन मुनि दधीचका वचन सुनकर भगवान् विष्णु क्रोधित हो उठे और उन्होंने मुनिश्रेष्ठ दधीचको दग्ध करनेकी इच्छासे अपना चक्र उठाया॥ ४६॥

क्षुपके सामने ही मुनि दधीचके प्रभावसे विष्णुका सुदर्शन चक्र कुण्ठित हो गया॥ ४७॥

कुण्ठित अग्रभागवाले सुदर्शन चक्रको देखकर वे दधीच मुसकराकर सत-असत्के अवभासक चक्रधारी [विष्णु]-से कहने लगे॥ ४८॥

हे भगवन्! हे विष्णो! पूर्वकालमें आपको भी अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक शिवकृपासे ही यह अति भयावह सुदर्शन नामक शुभ चक्र प्राप्त हुआ है। अतः यह चक्र मुझ शिवभक्तको नहीं मार सकता। अब आप ब्रह्मास्त्र आदि अन्य अस्त्रोंसे मुझे मारनेका प्रयास कीजिये॥ ४९-५०॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] दधीचका वह वचन सुनकर तथा अपने अस्त्रको निस्तेज देखकर विष्णुजीने समस्त प्रकारके अस्त्र उत्पन्न किये और वे चारों ओरसे उनके ऊपर प्रहार करने लगे॥ ५१॥

महान् बलशाली शाश्वत देवता लोग भी उस एकमात्र ब्राह्मणसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त उन विष्णुकी सहायता करनेमें तत्पर हो गये॥ ५२॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Aquinas/Shashi 1985_Lingamahapurana_Shashi_7_1_Back

कुशमुष्टिं तदादाय दधीचः संस्मरन् भवम्।
ससर्ज सर्वदेवेभ्यो वज्रास्थिः सर्वतो वशी॥ ५३

तब वज्रतुल्य हड्डियोंवाले इन्द्रियजित् दधीचने एक मुट्ठी कुश लेकर भगवान् शिवका स्मरण करते हुए सभी देवताओंके ऊपर फेंक दिया॥ ५३॥

दिव्यं त्रिशूलमभवत्कालाग्निसदृशप्रभम्।
दग्धुं देवान् मतिं चक्रे युगान्ताग्निरिवापरः॥ ५४

वह कुश कालाग्निके तेजके समान दिव्य त्रिशूल बन गया। उस समय दूसरी प्रलयाग्निके तुल्य प्रतीत होनेवाले दधीचने सभी देवताओंको भस्म कर देनेका निश्चय कर लिया॥ ५४॥

इन्द्रनारायणाद्यैश्च देवैस्त्यक्तानि यानि तु।
आयुधानि समस्तानि प्रणेमुस्त्रिशिखं मुने॥ ५५

हे मुने! इन्द्र तथा विष्णु आदि देवताओंने जो-जो अस्त्र दधीचके ऊपर छोड़े थे, वे सब उस त्रिशूलको प्रणाम करने लगे॥ ५५॥

देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे ध्वस्तवीर्या द्विजोत्तम।
ससर्ज भगवान् विष्णुः स्वदेहात्पुरुषोत्तमः॥ ५६

आत्मनः सदृशान् दिव्यान् लक्षलक्षायुतान् गणान्।
तानि सर्वाणि सहसा ददाह मुनिसत्तमः॥ ५७

हे द्विजश्रेष्ठ! यह देखकर सभी देवता पराक्रमशून्य हो गये तथा व्याकुल होकर पलायन करने लगे। तब पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुने अपने शरीरसे अपने ही तुल्य करोड़ों दिव्य गण उत्पन्न किये। मुनिवर दधीचने क्षण-भरमें उन सभीको भस्मसात् कर दिया॥ ५६-५७॥

ततो विस्मयनार्थाय विश्वमूर्तिरभूद्धरिः।
तस्य देहे हरेः साक्षादपश्यद् द्विजसत्तमः॥ ५८

दधीचो भगवान् विप्रः देवतानां गणान् पृथक्।
रुद्राणां कोटयश्चैव गणानां कोटयस्तदा॥ ५९

अण्डानां कोटयश्चैव विश्वमूर्तेस्तनौ तदा।
दृष्ट्वैतदखिलं तत्र च्यावनिर्विस्मितं तदा॥ ६०

तदनन्तर दधीचको विस्मित करनेके निमित्त भगवान् विष्णुने विश्वरूप धारण किया। विप्रेन्द्र दधीचने उन विष्णुके शरीरमें साक्षात् देवताओंके पृथक्-पृथक् गणोंको देखा। उस समय विश्वमूर्ति विष्णुके शरीरमें करोड़ों रुद्र, करोड़ों रुद्रगण तथा करोड़ों ब्रह्माण्ड विद्यमान थे॥ ५८-५९ १/२॥

विष्णुमाह जगन्नाथं जगन्मयमजं विभुम्।
अम्भसाभ्युक्ष्य तं विष्णुं विश्वरूपं महामुनिः॥ ६१

तब च्यवन-पुत्र महामुनि दधीच वह सब कुछ देखकर विस्मित हो गये और वे विश्वरूप धारण किये हुए उन जगत्पति, लोकव्याप्त, ऐश्वर्यसम्पन्न विष्णुके ऊपर जलका छींटा मारकर उनसे कहने लगे— ॥ ६०-६१॥

मायां त्यज महाबाहो प्रतिभासा विचारतः।
विज्ञानानां सहस्राणि दुर्विज्ञेयानि माधव॥ ६२

हे महाबाहो! मायाका परित्याग कीजिये। हे माधव! पदार्थोंकी भ्रमात्मक सत्तापर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि इस मायाके हजारों प्रकारके दुर्विज्ञेय क्रिया-कलाप हुआ करते हैं॥ ६२॥

मयि पश्य जगत्सर्वं त्वया सार्धमनिन्दित।
ब्रह्माणं च तथा रुद्रं दिव्यां दृष्टिं ददामि ते॥ ६३

हे अनिन्द्य! अब आप अपने सहित ब्रह्मा, रुद्र तथा सम्पूर्ण जगत्को मुझमें देखिये। इसके लिये मैं आपको दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ॥ ६३॥

इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वतनौ निखिलं मुनिः।
तं प्राह च हरिं देवं सर्वदेवभवोद्भवम्॥ ६४

ऐसा कहकर मुनि दधीचने अपने शरीरमें उन्हें सम्पूर्ण जगत् दिखा दिया और फिर सभी देवताओं तथा विश्वके रचयिता भगवान् विष्णुसे उन्होंने कहा॥ ६४॥

मायया ह्यनया किं वा मन्त्रशक्त्याथ वा प्रभो।
वस्तुशक्त्याथ वा विष्णो ध्यानशक्त्याथ वा पुनः॥ ६५

त्यक्त्वा मायामिमां तस्माद्योद्धुमर्हसि यत्नतः।
एवं तस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा माहात्म्यमद्भुतम्॥ ६६

देवाश्च दुद्रुवुर्भूयो देवं नारायणं च तम्।
वारयामास निश्चेष्टं पद्मयोनिर्जगद्गुरुः॥ ६७

हे प्रभो! हे विष्णो! इस मायासे अथवा मन्त्रशक्तिसे अथवा पदार्थशक्तिसे अथवा ध्यानशक्तिसे क्या लाभ? अतएव इस मायाको छोड़कर आप मेरे साथ यत्नपूर्वक युद्ध कीजिये॥ ६५ १/२॥

उन दधीचका यह वचन सुनकर तथा उनका अद्भुत प्रभाव देखकर देवगण व्याकुल होकर पुनः भागने लगे। तदनन्तर जगद्गुरु ब्रह्माजीने उन निश्चेष्ट भगवान् विष्णुको युद्ध करनेसे रोका॥ ६६-६७॥

निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मणस्तेन निर्जितः।
जगाम भगवान् विष्णुः प्रणिपत्य महामुनिम्॥ ६८

इसके बाद उन ब्रह्माजीका वचन सुनकर दधीचसे पराजित हुए भगवान् विष्णु उन महामुनिको प्रणाम करके अपने लोकको चले गये॥ ६८॥

क्षुपो दुःखातुरो भूत्वा सम्पूज्य च मुनीश्वरम्।
दधीचमभिवंद्याशु प्रार्थयामास विक्लवः॥ ६९

इधर अत्यन्त दुःखित तथा व्याकुलचित्त राजा क्षुप मुनीश्वर दधीचकी विधिवत् पूजा करके उन्हें बार-बार प्रणाम करते हुए उनसे प्रार्थना करने लगे॥ ६९॥

दधीच क्षम्यतां देव मयाज्ञानात्कृतं सखे।
विष्णुना हि सुरैर्वापि रुद्रभक्तस्य किं तव॥ ७०

हे दधीच! हे देव! मेरे द्वारा अज्ञानवश किये गये अपराधको आप क्षमा करें। हे सखे! आप-सदृश रुद्रभक्तका विष्णु तथा अन्य देवता भला क्या कर सकते हैं?॥ ७०॥

प्रसीद परमेशाने दुर्लभा दुर्जनैर्द्विज।
भक्तिर्भक्तिमतां श्रेष्ठ मद्विधैः क्षत्रियाधमैः॥ ७१

हे द्विज! आप प्रसन्न हो जाइये। हे भक्तोंमें श्रेष्ठ! मुझ-सदृश दुर्जन तथा अधम क्षत्रियोंके लिये परमेश्वर महादेवकी भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है॥ ७१॥

श्रुत्वानुगृह्य तं विप्रो दधीचस्तपतां वरः।
राजानं मुनिशार्दूलः शशाप च सुरोत्तमान्॥ ७२

रुद्रकोपाग्निना देवाः सदेवेन्द्रा मुनीश्वरैः।
ध्वस्ता भवन्तु देवेन विष्णुना च समन्विताः॥ ७३

तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मुनीश्वर दधीचने राजा क्षुपकी वाणी सुनकर उसके ऊपर अनुग्रह कर दिया तथा श्रेष्ठ देवताओंको शाप दे दिया कि विष्णुदेव, इन्द्र एवं मुनीश्वरोंसहित सभी देवता महान् आत्मावाले दक्षप्रजापतिके पवित्र यज्ञमें रुद्रकी कोपाग्निमें दग्ध हो जायँ॥ ७२-७३ १/२॥

प्रजापतेर्मखे पुण्ये दक्षस्य सुमहात्मनः।
एवं शप्त्वा क्षुपं प्रेक्ष्य पुनराह द्विजोत्तमः॥ ७४

देवैश्च पूज्या राजेन्द्र नृपैश्च विविधैर्गणैः।
ब्राह्मणा एव राजेन्द्र बलिनः प्रभविष्णवः॥ ७५

इस प्रकार देवताओंको शाप देकर द्विजश्रेष्ठ दधीचने क्षुपकी ओर देखते हुए कहा—हे राजेन्द्र! ब्राह्मण सभी देवताओं, राजाओं तथा विविध गणोंके पूज्य हैं। अतः हे नृपश्रेष्ठ! ब्राह्मण ही सबसे अधिक बलशाली एवं परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न होते हैं॥ ७४-७५॥

इत्युक्त्वा स्वोटजं विप्रः प्रविवेश महाद्युतिः।
दधीचमभिवन्द्यैव जगाम स्वं नृपः क्षयम्॥ ७६

ऐसा कहकर महातेजस्वी मुनि दधीच अपनी कुटीमें चले गये तथा राजा क्षुप दधीचको प्रणामकर अपने घरको प्रस्थित हुए॥ ७६॥

तदेव तीर्थमभवत्स्थानेश्वरमिति स्मृतम्।
स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ७७

वह युद्धस्थान एक तीर्थ बन गया, जो स्थानेश्वर नामसे जाना जाता है। स्थानेश्वर तीर्थका सेवन करनेसे मनुष्य शिव-सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ७७॥

कथितस्तव सङ्क्षेपाद्विवादः क्षुब्दधीचयोः।
प्रभावश्च दधीचस्य भवस्य च महामुने॥ ७८

[नन्दीश्वर बोले—] हे महामुने सनत्कुमार! यह मैंने आपसे संक्षेपमें क्षुप-दधीचके विवाद और दधीच तथा भगवान् शिवके प्रभावका वर्णन किया है॥ ७८॥

य इदं कीर्तयेद्दिव्यं विवादं क्षुब्दधीचयोः।
जित्वापमृत्युं देहान्ते ब्रह्मलोकं प्रयाति सः॥ ७९

जो मनुष्य क्षुप तथा दधीचके इस दिव्य विवादका पठन करता है, वह अपमृत्युको जीतकर देहका अन्त होनेके अनन्तर ब्रह्मलोकको प्रस्थान करता है॥ ७९॥

य इदं कीर्त्य सङ्ग्रामं प्रविशेत्तस्य सर्वदा।
नास्ति मृत्युभयं चैव विजयी च भविष्यति॥ ८०

जो कोई भी इसका पाठ करके युद्ध-स्थलमें प्रवेश करता है, उसे मृत्युसे किसी प्रकारका भय नहीं रहता है और वह संग्राममें सदा विजेता सिद्ध होता है॥ ८०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे क्षुपदधीचसंवादो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'क्षुप-दधीच-संवाद' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

नन्दीके जन्मका वृत्तान्त, ब्रह्मा तथा विष्णुका परस्पर संवाद और शिवद्वारा दोनोंपर अनुग्रह करना

सनत्कुमार उवाच

भवान् कथमनुप्राप्तो महादेवमुमापतिम्।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे नन्दीश्वर!] आपको पार्वतीपति महादेवका सान्निध्य कैसे प्राप्त हुआ? हे प्रभो! मैं इससे सम्बन्धित सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ; आप उसे बतायें॥ १॥

शैलादिरुवाच

प्रजाकामः शिलादोऽभूत्पिता मम महामुने।
सोऽप्यन्धः सुचिरं कालं तपस्तेपे सुदुश्चरम्॥ २

नन्दी कहते हैं—हे महामुने! मेरे पिता शिलादको एक बार संतानकी कामना उत्पन्न हुई और उन्होंने अन्धे होनेपर भी दीर्घकालतक कठोर तपस्या की॥ २॥

तपतस्तस्य तपसा सन्तुष्टो वज्रधृक् प्रभुः।
शिलादमाह तुष्टोऽस्मि वरयस्व वरानिति॥ ३

तपस्यामें रत उन मेरे पिताके तपसे प्रसन्न होकर वज्रधारी इन्द्रने शिलादसे कहा—मैं तुमपर अति प्रसन्न हूँ; अतएव वर माँगो॥ ३॥

ततः प्रणम्य देवेशं सहस्राक्षं सहामरैः।
प्रोवाच मुनिशार्दूल कृताञ्जलिपुटो हरिम्॥ ४

तब देवताओंसमेत सहस्रनेत्र देवेन्द्रको प्रणाम करके मुनिश्रेष्ठ शिलादने दोनों हाथ जोड़कर उनसे कहा॥ ४॥

शिलाद उवाच

भगवन् देवतारिघ्न सहस्राक्ष वरप्रद।
अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सुव्रत॥ ५

शिलाद बोले—हे भगवन्! हे असुर-दलन! हे सहस्रनयन! हे वरप्रद! हे सुव्रत! मैं अयोनिज तथा अमर पुत्र चाहता हूँ॥ ५॥

शक्र उवाच

पुत्रं दास्यामि विप्रर्षे योनिजं मृत्युसंयुतम्।
अन्यथा ते न दास्यामि मृत्युहीना न सन्ति वै॥ ६

इन्द्र बोले—हे विप्रवर! मैं तुम्हें योनिज तथा मरणधर्मा पुत्रका वर दे सकता हूँ; क्योंकि मरणहीन तो

न दास्यति सुतं तेऽत्र मृत्युहीनमयोनिजम्।
पितामहोऽपि भगवान् किमुतान्ये महामुने॥ ७

सोऽपि देवः स्वयं ब्रह्मा मृत्युहीनो न चेश्वरः।
योनिजश्च महातेजाश्चाण्डजः पद्मसम्भवः॥ ८

महेश्वराङ्गजश्चैव भवान्यास्तनयः प्रभुः।
तस्याप्यायुः समाख्यातं परार्धद्वयसम्मितम्॥ ९

कोटिकोटिसहस्राणि अहर्भूतानि यानि वै।
समतीतानि कल्पानां तावच्छेषाः परत्र ये॥ १०

तस्मादयोनिजे पुत्रे मृत्युहीने प्रयत्नतः।
परित्यजाशां विप्रेन्द्र गृहाणात्मसमं सुतम्॥ ११

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पिता मे लोकविश्रुतः।
शिलाद इति पुण्यात्मा पुनः प्राह शचीपतिम्॥ १२

शिलाद उवाच

भगवन्नण्डयोनित्वं पद्मयोनित्वमेव च।
महेश्वराङ्गयोनित्वं श्रुतं वै ब्रह्मणो मया॥ १३

पुरा महेन्द्र दायादाद् गदतश्चास्य पूर्वजात्।
नारदाद्वै महाबाहो कथमत्राशु नो वद॥ १४

दाक्षायणी सा दक्षोऽपि देवः पद्मोद्भवात्मजः।
पौत्री कनकगर्भस्य कथं तस्याः सुतो विभुः॥ १५

शक्र उवाच

स्थाने संशयितुं विप्र तव वक्ष्यामि कारणम्।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्तं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ १६

ससर्ज सकलं ध्यात्वा ब्रह्माणं परमेश्वरः।
जनार्दनो जगन्नाथः कल्पे वै मेघवाहने॥ १७

दिव्यं वर्षसहस्रं तु मेघो भूत्वावहद्धरम्।
नारायणो महादेवं बहुमानेन सादरम्॥ १८

दृष्ट्वा भावं महादेवो हरेः स्वात्मनि शङ्करः।
प्रददौ तस्य सकलं स्रष्टुं वै ब्रह्मणा सह॥ १९

कोई भी नहीं है॥ ६॥

हे महामुने! अयोनिज तथा मृत्युसे हीन पुत्र तो तुम्हें भगवान् ब्रह्मा भी नहीं दे सकते; अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या?॥ ७॥

साक्षात् वे परमेश्वर ब्रह्मदेव भी मृत्युहीन नहीं हैं। महान् तेजस्वी ब्रह्मा भी योनिज है; क्योंकि उनकी भी उत्पत्ति अण्ड तथा कमलसे हुई है। वे प्रभु ब्रह्मा महेश्वर एवं भवानीके पुत्र हैं। उनकी भी आयु दो परार्धके बराबर कही गयी है। प्रथम परार्धमें हजारों करोड़ कल्प भी ब्रह्माके दिनके रूपमें व्यतीत हो चुके हैं और द्वितीय परार्धमें उतने ही कल्प शेष हैं॥ ८—१०॥

अतएव हे विप्रेन्द्र! अयोनिज तथा मृत्युहीन पुत्रकी आशा प्रयत्नपूर्वक छोड़ दीजिये और अपने तुल्य पुत्र ग्रहण कीजिये॥ ११॥

नन्दीश्वर बोले—उनका वह वचन सुनकर शिलाद नामसे लोक-विख्यात मेरे पुण्यात्मा पिताने शचीपति इन्द्रसे पुनः कहा॥ १२॥

शिलाद बोले—हे भगवन्! हे महेन्द्र! मैंने पूर्वकालमें इन ब्रह्माके पूर्वोत्पन्न नारद नामक पुत्रद्वारा ऐसा कहते हुए सुन रखा है कि ये ब्रह्मा अण्ड, कमल और शिवजीके अंगसे उत्पन्न हैं; तो हे महाबाहो! मुझे आप शीघ्र बताइये कि ऐसा कैसे है? दक्षप्रजापति तो पद्मयोनि ब्रह्माजीके पुत्र हैं। इस प्रकार दक्षकी पुत्री हिरण्यगर्भ ब्रह्माकी पौत्री हुईं; तो फिर वे प्रभु ब्रह्मा उन दाक्षायणीके पुत्र कैसे हुए?॥ १३—१५॥

इन्द्र बोले—हे विप्र! इस स्थितिमें आपका संदेह करना युक्तिपूर्ण है; किंतु मैं आपको इसका कारण बता रहा हूँ। तत्पुरुष नामक कल्पमें परमेष्ठी शिवकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई और उन परमेश्वरने ध्यान करके कलायुक्त ब्रह्माजीको उत्पन्न किया। जनार्दन जगत्पति नारायण विष्णुभगवान् मेघवाहन कल्पमें हजार दिव्य वर्षोंतक मेघ बनकर अत्यन्त सम्मान तथा आदरके साथ महादेव शिवके वाहन बने रहे॥ १६—१८॥

महादेव शिवने अपनेमें भगवान् विष्णुकी भक्ति देखकर उन्हें ब्रह्माजीसहित सम्पूर्ण जगत् रचनेकी आज्ञा दी॥ १९॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

तदा तं कल्पमाहुर्वै मेघवाहनसंज्ञया।
हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा तस्य देहोद्भवस्तदा॥ २०

जनार्दनसुतः प्राह तपसा प्राप्य शङ्करम्।
तव वामाङ्गजो विष्णुर्दक्षिणाङ्गभवो ह्यहम्॥ २१

मया सह जगत्सर्वं तथाप्यसृजदच्युतः।
जगन्मयोऽवहद्यस्मान्मेघो भूत्वा दिवानिशम्॥ २२

भवन्तमवहद्विष्णुर्देवदेवं जगद्गुरुम्।
नारायणादपि विभो भक्तोऽहं तव शङ्कर॥ २३

प्रसीद देहि मे सर्वं सर्वात्मत्वं तव प्रभो।
तदाथ लब्ध्वा भगवान् भवात्सर्वात्मतां क्षणात्॥ २४

त्वरमाणोऽथ सङ्गम्य ददर्श पुरुषोत्तमम्।
एकार्णवालये शुभ्रे त्वन्धकारे सुदारुणे॥ २५

हेमरत्नचिते दिव्ये मनसा च विनिर्मिते।
दुष्प्राप्ये दुर्जनैः पुण्यैः सनकाद्यैरगोचरे॥ २६

जगदावासहृदयं ददर्श पुरुषं त्वजः।
अनन्तभोगशय्यायां शायिनं पङ्कजेक्षणम्॥ २७

शङ्खचक्रगदापद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम्।
सर्वाभरणसंयुक्तं शशिमण्डलसन्निभम्॥ २८

श्रीवत्सलक्षणं देवं प्रसन्नास्यं जनार्दनम्।
रमामृदुकराम्भोजस्पर्शरक्तपदाम्बुजम् ॥ २९

परमात्मानमीशानं तमसा कालरूपिणम्।
रजसा सर्वलोकानां सर्गलीलाप्रवर्तकम्॥ ३०

सत्त्वेन सर्वभूतानां स्थापकं परमेश्वरम्।
सर्वात्मानं महात्मानं परमात्मानमीश्वरम्॥ ३१

क्षीरार्णवेऽमृतमये शायिनं योगनिद्रया।
तं दृष्ट्वा प्राह वै ब्रह्मा भगवन्तं जनार्दनम्॥ ३२

ग्रसामि त्वां प्रसादेन यथापूर्वं भवानहम्।
स्मयमानस्तु भगवान् प्रतिबुध्य पितामहम्॥ ३३

उदैक्षत महाबाहुः स्मितमीषच्चकार सः।
विवेश चाण्डजं तं तु ग्रस्तस्तेन महात्मना॥ ३४

तभीसे उस कल्पको 'मेघवाहन' नामसे कहा जाता है। उन विष्णुको देखकर उन्हींके देहसे उत्पन्न जनार्दनपुत्र हिरण्यगर्भ ब्रह्माने अपनी तपस्यासे शंकरजीको प्राप्तकर उनसे कहा— ॥ २०$^{१}/_{२}$॥

विष्णु आपके वाम अंगसे उत्पन्न हैं तथा मैं आपके दायें अंगसे उत्पन्न हूँ; फिर भी उन विष्णुने मेरे साथ सम्पूर्ण जगत्की रचना की॥ २१$^{१}/_{२}$॥

यद्यपि जगन्मय विष्णुने मेघ बनकर आप देवदेव जगद्गुरु महेश्वरका दिन-रात वहन किया है; फिर भी हे विभो! हे शंकर! मैं उन नारायणसे भी बढ़कर आपका भक्त हूँ। अतएव हे प्रभो! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये और मुझे अपना सर्वात्मत्व प्रदान कीजिये॥ २२-२३$^{१}/_{२}$॥

तत्पश्चात् महादेवजीसे सर्वात्मत्वकी प्राप्ति करके ब्रह्माजीने शीघ्रतापूर्वक क्षीरसागर पहुँचकर वहाँ एकार्णवमें पुरुषोत्तम विष्णुको भीषण अन्धकारमें मानसनिर्मित, स्वर्णरत्न-खचित, दुर्जनोंद्वारा दुष्प्राप्य तथा सनक आदि पुण्यात्माओंद्वारा अगोचर शुभ्र एवं दिव्य भवनमें देखा॥ २४—२६॥

ब्रह्माजीने जगत्को अपने हृदयमें धारण करनेवाले, चारों भुजाओंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण करनेवाले, सभी आभूषणोंसे युक्त, चन्द्र-मण्डलतुल्य आभावाले, अपने वक्षःस्थलपर 'श्री' चिह्न धारण करनेवाले, तमोगुणसे युक्त होनेपर कालरूप, रजोगुणसे युक्त होनेपर सभी लोकोंकी सृजन-लीलाके प्रवर्तक, सत्त्वगुणसे युक्त होनेपर सभी प्राणियोंके स्थापक, कमलनयन, प्रसन्नमुख, जनार्दन, परमपुरुष, परमात्मा, ईशान, सर्वात्मा, महात्मा, देवरूप ईश्वर विष्णुको उस अमृतमय क्षीरसागरमें अनन्त शेषनागकी शय्यापर योगनिद्रामें सोये हुए देखा; उस समय उनके रक्त-कमल-सदृश चरणोंको लक्ष्मीजी अपने अरविन्द-तुल्य कोमल हाथोंसे दबा रही थीं॥ २७—३१$^{१}/_{२}$॥

भगवान् जनार्दनको देखकर ब्रह्माजीने उनसे कहा कि जिस प्रकार पहले आपने मुझे ग्रस लिया था, उसी प्रकार शिवजीकी कृपासे अब मैं आपको ग्रसूँगा॥ ३२$^{१}/_{२}$॥

भगवान् विष्णुने उठकर विस्मयपूर्ण भावसे ऊपर दृष्टि करके ब्रह्माजीको देखा और उन महाबाहुने थोड़ा

ततस्तं चासृजद् ब्रह्मा भ्रुवोर्मध्येन चाच्युतम्।
सृष्टस्तेन हरिः प्रेक्ष्य स्थितस्तस्याथ सन्निधौ॥ ३५

एतस्मिन्नन्तरे रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः।
विकृतं रूपमास्थाय पुरा दत्तवरस्तयोः॥ ३६

आगच्छद्यत्र वै विष्णुर्विश्वात्मा परमेश्वरः।
प्रसादमतुलं कर्तुं ब्रह्मणश्च हरेः प्रभुः॥ ३७

ततः समेत्य तौ देवौ सर्वदेवभवोद्भवम्।
अपश्यतां भवं देवं कालाग्निसदृशं प्रभुम्॥ ३८

तौ तं तुष्टुवतुश्चैव शर्वमुग्रं कपर्दिनम्।
प्रणेमतुश्च वरदं बहुमानेन दूरतः॥ ३९

भवोऽपि भगवान् देवमनुगृह्य पितामहम्।
जनार्दनं जगन्नाथस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ४०

हँसकर ब्रह्माजीके भीतर प्रवेश किया। उन महात्मा ब्रह्माने भी उन्हें ग्रस लिया॥ ३३-३४॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपने भ्रूमध्यसे उन विष्णुजीको पुनः उत्पन्न कर दिया और इस प्रकार उनके द्वारा सृजित होकर भगवान् विष्णु उन्हें देखकर उनके पास खड़े हो गये॥ ३५॥

इसी बीच पूर्वकालमें उन दोनों [ब्रह्मा, विष्णु]-को वर देनेवाले सभी देवताओं तथा जगत्की उत्पत्ति करनेवाले विश्वात्मा प्रभु परमेश्वर शिव विकृत रूप धारण करके ब्रह्मा एवं विष्णुपर महान् अनुग्रह करनेके लिये जहाँ विष्णुजी थे, वहींपर आ गये॥ ३६-३७॥

इसके बाद उन दोनों देवोंने शिवजीके पास पहुँचकर कालाग्नितुल्य उन सभी देवताओं तथा जगत्की उत्पत्ति करनेवाले महादेवका दर्शन किया॥ ३८॥

उन दोनों (ब्रह्मा, विष्णु)-ने दूरसे ही सम्मानपूर्वक उन शर्व (भक्तोंके पापोंका नाश करनेवाले), कपर्दी (जटाजूटधारी), उग्र तथा वर देनेवाले शिवजीको प्रणाम किया और पुनः वे उनकी स्तुति करने लगे॥ ३९॥

जगत्के स्वामी भगवान् शिव पितामह ब्रह्मदेव तथा जनार्दन विष्णुपर अनुग्रह करके वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ ४०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मणो वरप्रदानं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ब्रह्माको वरप्रदान' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

विष्णुद्वारा महेश्वरके माहात्म्यका कथन तथा नारायणद्वारा सृष्टिका वर्णन

शैलादिरुवाच

गते महेश्वरे देवे तमुद्दिश्य जनार्दनः।
प्रणम्य भगवान् प्राह पद्मयोनिमजोद्भवः॥ १

नन्दीश्वर बोले—तदनन्तर महेश्वर महादेवके चले जानेपर ब्रह्माजीसे उत्पन्न भगवान् विष्णु पद्मयोनि पितामहको उद्देश्य करके प्रणामकर उनसे कहने लगे॥ १॥

श्रीविष्णुरुवाच

परमेशो जगन्नाथः शङ्करस्त्वेष सर्वगः।
आवयोरखिलस्येशः शरणं च महेश्वरः॥ २

श्रीविष्णु बोले—सर्वत्र गमनका सामर्थ्य रखनेवाले ये परमेश्वर ईश्वर जगन्नाथ महेश्वर शिव सम्पूर्ण जगत्के तथा हमदोनोंके शरण हैं॥ २॥

अहं वामाङ्गजो ब्रह्मन् शङ्करस्य महात्मनः।
भवान् भवस्य देवस्य दक्षिणाङ्गभवः स्वयम्॥ ३

मामाहुर्ऋषयः प्रेक्ष्य प्रधानं प्रकृतिं तथा।
अव्यक्तमजमित्येवं भवन्तं पुरुषस्त्विति॥ ४

हे ब्रह्मन्! मैं महात्मा शिवके वाम अंगसे जायमान हूँ तथा स्वयं आप महादेव रुद्रके दाहिने अंगसे उत्पन्न हुए हैं। अतएव इस विषयमें सम्यक् विचारकर ऋषियोंने मुझे प्रधान तथा प्रकृति एवं आपको अव्यक्त, अज तथा पुरुष कहा है॥ ३-४॥

एवमाहुर्महादेवमावयोरपि कारणम्।
ईशं सर्वस्य जगतः प्रभुमव्ययमीश्वरम्॥ ५

इस प्रकार अविनाशी ईश्वर महादेवको हम दोनोंका भी कारण तथा सम्पूर्ण जगत्का स्वामी कहा गया है॥ ५॥

सोऽपि तस्यामरेशस्य वचनाद्वारिजोद्भवः।
वरेण्यं वरदं रुद्रमस्तुवत्प्रणनाम च॥ ६

उन देवेश विष्णुका वचन सुनकर उन पद्मयोनि ब्रह्माने भी वर प्रदान करनेवाले पूज्य महादेवको बार-बार प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की॥ ६॥

अथाम्भसा प्लुतां भूमिं समादाय जनार्दनः।
पूर्ववत्स्थापयामास वाराहं रूपमास्थितः॥ ७

इसके अनन्तर वाराहरूप धारणकर जनार्दन विष्णुने जलसे व्याप्त भूमिको लाकर पुनः पूर्वकी भाँति स्थापित किया॥ ७॥

नदीनदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाकरोत्प्रभुः।
कृत्वा चोर्वीं प्रयत्नेन निम्नोन्नतविवर्जिताम्॥ ८

धरायां सोऽचिनोत्सर्वान् भूधरान् भूधराकृतिः।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत्॥ ९

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने नदियों, नदों तथा समुद्रोंको पहलेकी भाँति कर दिया। पुनः पृथ्वीको ऊँचाई एवं निचाईसे रहितकर भूधरकी आकृतिवाले उन भगवान्ने उस समतल धरापर समस्त पर्वत स्थापित किये, भूलोक आदि चार लोक पूर्वकी भाँति रचे॥ ८-९॥

स्रष्टुं च भगवान् चक्रे मतिं मतिमतां वरः।
मुख्यं च तैर्यग्योन्यं च दैविकं मानुषं तथा॥ १०

विभुश्चानुग्रहं तत्र कौमारकमदीनधीः।
पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा॥ ११

पुनः बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, प्रखर प्रतिभावाले तथा ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् विष्णुने मुख्य सर्ग, तिर्यक् सर्ग (पशुसर्ग), देवसर्ग, मनुष्यसर्ग, अनुग्रहसर्ग एवं कौमारसर्ग रचनेका विचार किया॥ १०½॥

सनातनं सतां श्रेष्ठं नैष्कर्म्येण गताः परम्।
मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्॥ १२

दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद्योगविद्यया।
सङ्कल्पं चैव धर्मं च ह्यधर्मं भगवान् प्रभुः॥ १३

द्वादशैव प्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
ऋभुं सनत्कुमारं च ससर्जादौ सनातनः॥ १४

तौ चोर्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मवादिनौ।
कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ॥ १५

उन विष्णुने आरम्भमें सनन्द, सनक तथा महात्माओंमें श्रेष्ठ सनातनका सृजन किया, जो निष्काम ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होकर ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हुए॥ ११½॥

इसके बाद सबके स्वामी भगवान् विष्णुने मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ, संकल्प, धर्म तथा अधर्मको योगविद्यासे रचा। अव्यक्तजन्मा ब्रह्माकी ये ही बारह संतानें हैं॥ १२-१३½॥

शाश्वत विष्णुने आरम्भमें ऋभु तथा सनत्कुमारका सृजन किया। पूर्वमें उत्पन्न वे दोनों कुमार ऊर्ध्वरेता, दिव्य, ब्रह्मवादी, सर्वज्ञ, सभी प्रकारके भावोंसे सम्पन्न तथा ब्रह्माजीके ही सदृश थे॥ १४-१५॥

एवं मुख्यादिकान् सृष्ट्वा पद्मयोनिः शिलाशन।
युगधर्मानशेषांश्च कल्पयामास विश्वसृक्॥ १६

हे शिलाद! इस प्रकार मुख्य आदि सर्गोंकी सृष्टि करके विश्वकी रचना करनेवाले पद्मयोनि (विष्णु)-ने समस्त युगधर्मोंको प्रतिष्ठित किया॥ १६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वैष्णवकथनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'वैष्णवकथन' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

सत्ययुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुगका वर्णन, द्वापरमें वेदसंहिताके विभाजनका एवं कल्पभेदसे विविध पुराणोंके अनुक्रमका वर्णन

शैलादिरुवाच

श्रुत्वा शक्रेण कथितं पिता मम महामुनिः।
पुनः पप्रच्छ देवेशं प्रणम्य रचिताञ्जलिः॥ १

शिलाद उवाच

भगवन् शक्र सर्वज्ञ देवदेवनमस्कृत।
शचीपते जगन्नाथ सहस्राक्ष महेश्वर॥ २

युगधर्मान् कथं चक्रे भगवान् पद्मसम्भवः।
वक्तुमर्हसि मे सर्वं साम्प्रतं प्रणताय मे॥ ३

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिलादस्य महात्मनः।
व्याजहार यथादृष्टं युगधर्मं सुविस्तरम्॥ ४

शक्र उवाच

आद्यं कृतयुगं विद्धि ततस्त्रेतायुगं मुने।
द्वापरं तिष्यमित्येते चत्वारस्तु समासतः॥ ५

सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरं च रजस्तमः।
कलिस्तमश्च विज्ञेयं युगवृत्तिर्युगेषु च॥ ६

ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां यज्ञ उच्यते।
भजनं द्वापरे शुद्धं दानमेव कलौ युगे॥ ७

चत्वारि च सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः॥ ८

चत्वारि च सहस्राणि मानुषाणि शिलाशन।
आयुः कृतयुगे विद्धि प्रजानामिह सुव्रत॥ ९

ततः कृतयुगे तस्मिन् सन्ध्यांशे च गते तु वै।
पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वतः॥ १०

चतुर्भागैकहीनं तु त्रेतायुगमनुत्तमम्।
कृतार्धं द्वापरं विद्धि तदर्धं तिष्यमुच्यते॥ ११

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इन्द्रका कथन सुनकर मेरे पिता महामुनि शिलादने दोनों हाथ जोड़कर देवेश इन्द्रको प्रणाम करके उनसे पुनः पूछा॥ १॥

शिलाद बोले—हे भगवन्! हे शक्र! हे सर्वज्ञ! हे सर्वदेवनमस्कृत! हे शचीपते! हे जगन्नाथ! हे सहस्राक्ष! हे महेश्वर! भगवान् पद्मयोनिने युगधर्म किस प्रकार कल्पित किये? आप इस विषयमें सब कुछ मुझ शरणागतको बतानेकी कृपा करें॥ २-३॥

शैलादि बोले—[हे सनत्कुमार!] महात्मा शिलादका वह वचन सुनकर इन्द्रने जैसा देखा था, उन युगधर्मोंका विस्तारसे वर्णन करना प्रारम्भ किया॥ ४॥

इन्द्र बोले—हे मुने! आदिमें सत्ययुग, फिर त्रेतायुग, द्वापर तथा कलियुग—ये ही चार युग होते हैं; ऐसा आप संक्षेपमें जान लीजिये॥ ५॥

सत्ययुगको सत्त्वगुणरूप, त्रेतायुगको रजोगुणरूप, द्वापरयुगको रज-तमगुणरूप और कलियुगको तमोगुणरूप जानना चाहिये। इस प्रकार विभिन्न युगोंमें अलग-अलग युग-वृत्ति होती है॥ ६॥

सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतायुगमें यज्ञ, द्वापरमें भजन तथा कलियुगमें विशुद्ध दानको श्रेष्ठ कहा गया है॥ ७॥

वह सत्ययुग चार हजार दिव्य वर्षोंके प्रमाणवाला है। उसकी सन्ध्या चार सौ दिव्य वर्षोंकी होती है तथा उसका सन्ध्यांश भी उसी प्रकार चार सौ दिव्य वर्षोंका होता है॥ ८॥

हे शिलाद! हे सुव्रत! इस सत्ययुगमें प्रजाओंकी आयु चार हजार मनुष्य वर्षके बराबर जानिये॥ ९॥

सत्ययुग तथा इसके सन्ध्यांश बीत जानेपर समग्र युग-धर्मका एक चरण घट जाता है। पुनः उत्तम त्रेतायुग प्रवृत्त होता है, जो तीन हजार दिव्य वर्षोंका होता है। सत्ययुगके आधे प्रमाणके बराबर द्वापरको जानिये तथा उसके (द्वापरके) आधेके बराबर कलियुगका प्रमाण

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

त्रिशती द्विशती सन्ध्या तथा चैकशती मुने।
सन्ध्यांशकं तथाप्येवं कल्पेष्वेवं युगे युगे॥ १२

कहा जाता है। हे मुने! उसी तरह त्रेतायुगकी सन्ध्या तीन सौ दिव्य वर्ष, द्वापरकी सन्ध्या दो सौ दिव्य वर्ष तथा कलियुगकी सन्ध्या एक सौ दिव्य वर्षकी होती है। सभीका सन्ध्यांश भी सन्ध्याकालके समान ही जानना चाहिये। प्रत्येक कल्पमें आनेवाले युगोंमें यही स्थिति होती है॥ १०—१२॥

आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः सनातनः।
त्रेतायुगे त्रिपादस्तु द्विपादो द्वापरे स्थितः॥ १३

त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण धिष्ठितः।
कृते तु मिथुनोत्पत्तिः वृत्तिः साक्षाद्रसोल्लसा॥ १४

सनातन धर्म आरम्भके सत्ययुगमें चार चरणोंवाला, त्रेतामें तीन चरणोंवाला, द्वापरमें दो चरणोंवाला तथा कलियुगमें मात्र एक चरणवाला होकर अधिष्ठित रहता है॥ १३ १/२॥

प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वानन्दाश्च भोगिनः।
अधमोत्तमता तासां न विशेषाः प्रजाः शुभाः॥ १५

सत्ययुगमें स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पत्ति होती है तथा उनकी वृत्ति मधुर रसोंसे सम्पन्न होती है। उस युगमें समस्त प्रजाएँ सभी प्रकारके आनन्दों एवं भोगोंसे पूर्ण तृप्त रहती हैं। उनमें अधमता तथा उत्तमताका कोई भेद नहीं रहता है और सभी प्रजाएँ शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न रहती हैं॥ १४-१५॥

तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन् कृते युगे।
तासां प्रीतिर्न च द्वन्द्वं न द्वेषो नास्ति च क्लमः॥ १६

उस सत्ययुगमें वे प्रजाएँ समान आयु, सुख तथा रूपवाली होती हैं। उनमें परस्पर द्वेष, द्वन्द्व एवं अवसाद नहीं रहता है, अपितु वे एक-दूसरेसे प्रेम करती हैं॥ १६॥

पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः।
विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तबहुलास्तथा॥ १७

सत्ययुगमें वे प्रजाएँ घरका आश्रय न लेकर पर्वतों तथा समुद्रोंके सान्निध्यमें निवास करती हैं। सभी लोग शोकरहित, पराक्रमसम्पन्न एवं एकान्तप्रिय होते हैं॥ १७॥

ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः।
अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः॥ १८

कृतयुगमें वे प्रजाएँ निष्काम कर्मोंमें प्रवृत्त रहनेवाली तथा सदा प्रसन्न मनवाली होती हैं। वे कर्मोंके पाप और पुण्यकी भावनासे रहित होती हैं। उस समय वर्णाश्रम-व्यवस्था रहती है, किंतु वर्णसंकर दोष विद्यमान नहीं रहता है॥ १८ १/२॥

वर्णाश्रमव्यवस्था च तदासीन्न च सङ्करः।
रसोल्लासः कालयोगात् त्रेताख्ये नश्यते द्विज॥ १९

हे द्विज! कालयोगसे त्रेतायुगमें रसोंका प्रादुर्भाव समाप्त होने लगता है। उस युगमें सिद्धिके नष्ट हो जानेपर अन्य सिद्धि उत्पन्न होती है॥ १९ १/२॥

तस्यां सिद्धौ प्रनष्टायामन्या सिद्धिः प्रजायते।
अपां सौक्ष्म्ये प्रतिगते तदा मेघात्मना तु वै॥ २०

मेघेभ्यः स्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम्।
सकृदेव तया वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले॥ २१

जलकी अल्पता हो जानेपर भगवान् मेघात्मा गर्जनयुक्त मेघोंके माध्यमसे जल बरसाते हैं और एक बारमें ही उस वृष्टिसे पृथ्वीतलके संयुक्त हो जानेपर

प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः।
सर्ववृत्त्युपभोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते॥ २२

वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं; इस प्रकार वे वृक्ष ही प्रजाओंके

वर्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः।
ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात्॥ २३

रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत्।
विपर्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविना॥ २४

प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः।
ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रान्ता मैथुनोद्भवाः॥ २५

अपि ध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा।
प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः॥ २६

वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च।
तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम्॥ २७

अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु।
तेन ता वर्तयन्ति स्म सुखमायुः सदैव हि॥ २८

हृष्टपुष्टास्तया सिद्ध्या प्रजा वै विगतज्वराः।
ततः कालान्तरेणैव पुनर्लोभावृतास्तु ताः॥ २९

वृक्षांस्तान् पर्यगृह्णन्ति मधु वा माक्षिकं बलात्।
तासां तेनोपचारेण पुनर्लोभकृतेन वै॥ ३०

प्रनष्टा मधुना सार्धं कल्पवृक्षाः क्वचित्क्वचित्।
तस्यामेवाल्पशिष्टायां सिद्ध्यां कालवशात्तदा॥ ३१

आवर्तनात्तु त्रेतायां द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानि वै।
शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम्॥ ३२

द्वन्द्वैः सम्पीड्यमानाश्च चक्रुरावरणानि तु।
कृतद्वन्द्वप्रतीघाताः केतनानि गिरौ ततः॥ ३३

गृहरूप बन जाते हैं। उन प्रजाओंकी सम्पूर्ण वृत्ति तथा उपभोग उन्हीं वृक्षोंपर आश्रित रहता है। इस प्रकार त्रेतायुगके आरम्भमें प्रजाएँ जीवनयापन-सम्बन्धी सभी व्यवहार उन्हीं वृक्षोंपर आश्रित होकर करती हैं॥ २०—२२½॥

तत्पश्चात् अधिक समय बीतनेपर उनके [बुद्धि]-विपर्ययसे उन प्रजाओंमें अकस्मात् राग तथा लोभसे युक्त भाव उत्पन्न हो जाते हैं॥ २३½॥

उन प्रजाओंमें उस समय उत्पन्न उस विपर्ययके कारण उनके गृहसंज्ञक सभी वृक्ष नष्ट हो जाते हैं॥ २४½॥

तब उन वृक्षोंके नष्ट हो जानेपर मैथुनसे उत्पन्न वे प्रजाएँ भ्रमित हो जाती हैं। इसके बाद सत्यका चिन्तन करनेवाले वे प्रजागण उस सिद्धिका फिरसे ध्यान करते हैं॥ २५½॥

इस प्रकार ध्यानके फलस्वरूप उनके गृहसंज्ञक वे वृक्ष फिरसे उत्पन्न हो जाते हैं। वे वृक्ष प्रजाओंके लिये वस्त्र, भूषण तथा नानाविध फल उत्पन्न करते हैं॥ २६½॥

उनके लिये उन वृक्षोंके पत्ते-पत्तेमें गन्ध-वर्ण-रससे युक्त, शक्तिवर्धक तथा अमाक्षिक (मक्षिकारहित) मधु पैदा होता है॥ २७½॥

उसी मधुसे प्रजाएँ सुखपूर्वक सदा जीवनयापन करती हैं और वे उसी सिद्धिसे सन्तापरहित होकर सर्वदा हृष्ट-पुष्ट रहती हैं॥ २८½॥

तत्पश्चात् कालान्तरमें वे प्रजाएँ पुनः लोभके वशीभूत होकर बलपूर्वक उन वृक्षों अथवा माक्षिक मधुका हरण करती हैं॥ २९½॥

लोभमें पड़कर उनके द्वारा किये गये इस अनाचारपूर्ण कृत्यसे मधुके साथ-साथ कहीं-कहीं वे कल्पवृक्ष भी नष्ट हो जाते हैं॥ ३०½॥

पुनः उस त्रेतामें कालयोगसे अवशिष्ट सिद्धियोंमें आवर्तन हो जानेसे द्वन्द्व उत्पन्न होने लगते हैं॥ ३१½॥

पुनः तीव्र शीत, वर्षा तथा आतपसे प्रजाएँ अत्यन्त दुःखित हो जाती हैं और इन द्वन्द्वोंसे पीड़ित प्रजाएँ अपने आवरणका उपाय करने लगती हैं॥ ३२½॥

पूर्वं निकामचारास्ता ह्यनिकेता अथावसन्।
यथायोगं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन् पुनः॥ ३४

कृत्वा द्वन्द्वोपघातांस्तान् वृत्त्युपायमचिन्तयन्।
नष्टेषु मधुना सार्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा॥ ३५

विवादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः।
ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः॥ ३६

वार्तायाः साधिकाप्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः।
तासां वृष्ट्युदकादीनि ह्यभवन्निम्नगानि तु॥ ३७

अभवन् वृष्टिसन्तत्या स्त्रोतस्थानानि निम्नगाः।
एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्जने॥ ३८

ये पुनस्तदपां स्तोकाः पतिताः पृथिवीतले।
अपां भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन्॥ ३९

अथाल्पकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश।
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे॥ ४०

प्रादुर्भूतानि चैतानि वृक्षजात्यौषधानि च।
तेनौषधेन वर्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा॥ ४१

ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः।
अवश्यं भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन च॥ ४२

ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान्।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम्॥ ४३

विपर्ययेण चौषध्यः प्रनष्टास्ताश्चतुर्दश।
मत्वा धरां प्रविष्टास्ता इत्यौषध्यः पितामहः॥ ४४

दुदोह गां प्रयत्नेन सर्वभूतहिताय वै।
तदाप्रभृति चौषध्यः फालकृष्टास्त्वितस्ततः॥ ४५

द्वन्द्वोंसे निरन्तर प्रतिहत प्रजाएँ पर्वतोंपर घर बनाने लगती हैं। इसलिये पूर्वमें स्वेच्छाचारितापूर्ण वे प्रजाएँ, जो बिना घरके रहती थीं, पुनः अपने अनुकूल तथा सुविधाजनक घरोंमें रहने लगती हैं॥ ३३-३४॥

मधुके साथ उन कल्पवृक्षोंके भी नष्ट हो जानेपर पुनः उन द्वन्द्वोंके प्रति उपघात करती हुई वे प्रजाएँ जीविकोपार्जनका उपाय सोचने लगती हैं॥ ३५॥

वे प्रजाएँ पुनः जब विवादसे व्याकुल तथा भूख एवं प्याससे पीड़ित हो जाती हैं, तब त्रेतायुगमें उनमें सिद्धिका प्रादुर्भाव पुनः होता है॥ ३६॥

उनके लिये कृषि-कार्यको पूर्णतः सिद्ध करनेवाली दूसरी अन्य वृष्टि होती है। वृष्टिजनित वे जल आदि नदियोंके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं॥ ३७॥

सतत वृष्टि होनेसे नदियाँ तथा जलके अन्य उद्गमस्थान हो गये। इस प्रकार दूसरे वृष्टि-सर्जनमें नदियोंका प्रादुर्भाव हो गया॥ ३८॥

इस प्रकार पृथ्वीतलपर जो जल-बिन्दु गिरे; उन जलों तथा भूमिके संयोगसे अल्प-कृष्ट एवं बिना बोये चौदह प्रकारकी वन्य तथा ग्राम्य (वन एवं ग्रामीण क्षेत्रोंमें उगनेवाली) औषधियाँ उत्पन्न हो गयीं। ऋतुसम्बन्धी विभिन्न पुष्प, फल, वृक्ष एवं पौधे उग गये। इस प्रकार ये विभिन्न जातिके वृक्ष तथा औषध उत्पन्न हो गये और उस त्रेतायुगमें प्रजाएँ उन्हीं औषधियोंसे ही अपना जीवन-निर्वाह करने लगीं॥ ३९—४१॥

इसके बाद उन प्रजाओंमें हर प्रकारसे राग तथा लोभका उदय हुआ और त्रेतायुगके प्रभावसे होनेवाली अवश्यम्भाविताके कारण वे प्रजाएँ नदीक्षेत्रों तथा पर्वतोंका अतिक्रमण करने लगीं और वृक्ष, गुल्मों एवं औषधियोंका बलपूर्वक पुनः हरण करने लगीं। उनके इस विपरीत आचरणसे चौदहों प्रकारकी औषधियाँ विनष्ट हो गयीं॥ ४२-४३ १/२॥

अब वे औषधियाँ पृथ्वीमें समा गयीं—ऐसा मानकर भगवान् विष्णुने राजा पृथुके रूपमें होकर सभी प्राणियोंके कल्याणार्थ पृथ्वीरूप गायका दोहन किया। उसी समयसे हलके फालसे जुती हुई भूमिमें यहाँ-वहाँ

वार्ता कृषिं समायाता वर्तुकामाः प्रयत्नतः।
वार्तावृत्तिः समाख्याता कृषिकामप्रयत्नतः॥ ४६

अन्यथा जीवितं तासां नास्ति त्रेतायुगात्यये।
हस्तोद्भवा ह्यपश्चैव भवन्ति बहुशस्तदा॥ ४७

तत्रापि जगृहुः सर्वे चान्योन्यं क्रोधमूर्च्छिताः।
सुतदारधनाद्यांस्तु बलाद्युगबलेन तु॥ ४८

मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वा तदखिलं विभुः।
ससर्ज क्षत्रियांस्त्रातुं क्षतात्कमलसम्भवः॥ ४९

वर्णाश्रमप्रतिष्ठां च चकार स्वेन तेजसा।
वृत्तेन वृत्तिना वृत्तं विश्वात्मा निर्ममे स्वयम्॥ ५०

यज्ञप्रवर्तनं चैव त्रेतायामभवत्क्रमात्।
पशुयज्ञं न सेवन्ते केचित्तत्रापि सुव्रताः॥ ५१

बलाद्विष्णुस्तदा यज्ञमकरोत्सर्वदृक् क्रमात्।
द्विजास्तदा प्रशंसन्ति ततस्त्वाहिंसकं मुने॥ ५२

द्वापरेष्वपि वर्तन्ते मतिभेदास्तदा नृणाम्।
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिध्यति॥ ५३

तदा तु सर्वभूतानां कायक्लेशवशात्क्रमात्।
लोभो भृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः॥ ५४

वेदशाखाप्रणयनं धर्माणां सङ्करस्तथा।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च॥ ५५

औषधियाँ उत्पन्न होने लगीं॥ ४४-४५॥

इस तरह अब जीनेकी इच्छा रखनेवाली प्रजाएँ प्रयत्नपूर्वक कृषि कार्य करने लग गयीं। कृषिमें प्रयत्नपूर्वक इच्छा रखनेके कारण इसे 'वार्तावृत्ति' कहा गया॥ ४६॥

त्रेतायुगके उस अन्तिम कालमें इस कृषिको छोड़कर आजीविकाका कोई अन्य उपाय नहीं था। उस समय [खनित्र आदिके उपयोग बिना ही] हाथसे ही खोदकर पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता था॥ ४७॥

उस समय सभी लोग युग-प्रभावके कारण क्रोधके वशीभूत होकर बलपूर्वक एक-दूसरेके पुत्र, स्त्री, धन आदिका हरण कर लेते थे॥ ४८॥

वह सम्पूर्ण स्थिति देखकर मर्यादाकी प्रतिष्ठा करनेके लिये तथा दुःखसे रक्षा करनेके लिये भगवान् कमलयोनिने क्षत्रियोंकी उत्पत्ति की॥ ४९॥

विश्वात्मा भगवान्ने अपने तेजसे वर्णाश्रम-व्यवस्था स्थापित की तथा उन्होंने स्वधर्मानुसार जीविकाद्वारा जीवनका निर्माण (परिपालन) स्वयं किया॥ ५०॥

इसी प्रकार त्रेतायुगमें क्रमसे यज्ञ-अनुष्ठान आदि आरम्भ हुआ। सभीकी व्रतोंमें निष्ठा थी तथा कोई भी मनुष्य पशु-यज्ञ नहीं करते थे॥ ५१॥

उस समय व्यापक दृष्टिवाले भगवान् विष्णुने अपने सामर्थ्यसे क्रमपूर्वक यज्ञ सम्पन्न किये। हे मुने! उस समय द्विज लोग हिंसा न करनेवालेकी प्रशंसा करते थे॥ ५२॥

द्वापरमें भी लोगोंमें मन-वचन-कर्मसे बुद्धि-भेद उत्पन्न होते हैं। कष्टपूर्वक कृषिकार्य भी सम्पन्न होते हैं॥ ५३॥

उस समय शारीरिक क्लेशवश सभी लोगोंमें लोभ, भृति, वाणिज्य कर्मोंमें विवाद तथा चित्त-कालुष्यके कारण यथार्थ वस्तुओंके प्रति सन्देह उत्पन्न होने लगता है॥ ५४॥

उस समय शाखाओंके रूपमें वेदोंका विभाग होता है तथा धर्मोंके संकर अर्थात् अन्य धर्मकी प्रवृत्ति होने लगती है। उस द्वापरमें ब्राह्मण आदि वर्णों एवं

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

द्वापरे तु प्रवर्तन्ते रागो लोभो मदस्तथा।
वेदो व्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु॥ ५६

एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते।
सङ्क्षयादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेषु सः॥ ५७

ऋषिपुत्रैः पुनर्भेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः॥ ५८

संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते मनीषिभिः।
सामान्या वैकृताश्चैव दृष्टिभिस्तैः पृथक्पृथक्॥ ५९

ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च।
अन्ये तु प्रस्थितास्तान् वै केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः॥ ६०

इतिहासपुराणानि भिद्यन्ते कालगौरवात्।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा॥ ६१

भविष्यं नारदीयं च मार्कण्डेयमतः परम्।
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गं वाराहमेव च॥ ६२

वामनाख्यं ततः कूर्मं मात्स्यं गारुडमेव च।
स्कान्दं तथा च ब्रह्माण्डं तेषां भेदः प्रकथ्यते॥ ६३

लैङ्गमेकादशविधं प्रभिन्नं द्वापरे शुभम्।
मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः॥ ६४

यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती।
पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ॥ ६५

शातातपो वसिष्ठश्च एवमाद्यैः सहस्रशः।
अवृष्टिर्मरणं चैव तथा व्याध्याद्युपद्रवाः॥ ६६

वाङ्मनःकर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते ततः।
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा॥ ६७

ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंका लगभग विनाश हो जाता है। लोगोंमें वासना, द्वेष, राग, लोभ तथा मद प्रवृत्त हो जाते हैं। द्वापर आदि कालोंमें व्यासोंके द्वारा एक वेद चार भागोंमें विभक्त किया जाता है। ऋक् आदि चार पादोंसे युक्त एक वेद-संहिताका इस भूलोकमें त्रेता आदि कालोंमें अध्ययन किया जाता है; वही वेद द्वापर आदि कालोंमें आयुसंक्षयके कारण विभाजित कर दिया जाता है॥ ५५—५७॥

इसके आगे ऋषिपुत्रोंके द्वारा अपनी दृष्टिसे विभाजन पुनः किया जाता है। दृष्टिविभ्रम (अलग-अलग विचार रखनेवाले) मनीषियोंने समानरूपसे विभाजित की गयी ऋक्, यजुः तथा साम नामक संहिताओंको स्वर-वर्णोंके भेदसे मन्त्र और ब्राह्मणभागके स्वरूपमें पुनः अलग-अलग विभाजित किया॥ ५८-५९॥

इस प्रकार मनीषियोंने ब्राह्मणभाग, कल्पसूत्र तथा मीमांसा-न्यायके सूत्रोंकी रचना की। कुछ मनीषी इतने विभाजनको पर्याप्त मानकर इसीपर स्थिरमति हो गये, किंतु अन्य मनीषी इस विभाजनको न्यून मानकर इसके विस्तारमें प्रवृत्त हुए॥ ६०॥

अनेक कल्पोंके भेदसे इतिहास, पुराण आदिके भी विशिष्ट भेद होते हैं। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, भविष्यपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वाराहपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड़पुराण, स्कन्दपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण—ये उन पुराणोंके भेद कहे जाते हैं। इनमें ग्यारहवाँ पवित्र लिङ्गपुराण द्वापरमें विभक्त किया गया है॥ ६१—६३$^{१}/_{२}$॥

मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप तथा वसिष्ठ आदि बहुत-से मुनि धर्मशास्त्रोंका विस्तार करनेवाले हैं॥ ६४-६५$^{१}/_{२}$॥

अवृष्टि, अकालमरण, रोग, विघ्न एवं मन-वचन-कर्मजनित दुःखोंसे निर्वेद उत्पन्न होता है। निर्वेदसे उन प्रजाओंके मनमें दुःखोंसे छूटनेका विचार

विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम्।
दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः॥ ६८

पैदा होता है। उस विचारसे वैराग्य तथा वैराग्यसे सांसारिक क्रियाकलापोंमें दोष दिखायी देने लगते हैं और उन दोषोंके दर्शनसे द्वापरमें ज्ञान उत्पन्न हो जाता है॥ ६६—६८॥

एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे स्मृता।
आद्ये कृते तु धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्तते॥ ६९
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे॥ ७०

द्वापरमें रजोगुण तथा तमोगुणसे युक्त इस प्रकारकी वृत्ति कही गयी है। आदि सत्ययुगमें एकमात्र धर्म ही सर्वत्र रहता है, वह त्रेतामें प्रेरणासे प्रवृत्त होता है वह धर्म द्वापरमें व्याकुल होकर स्थित रहता है तथा फिर कलियुगमें नष्ट हो जाता है॥ ६९-७०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे 'चतुर्युगधर्माणां वर्णनं' नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'चतुर्युगधर्मवर्णन' नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

कलियुगके धर्मोंका वर्णन, कलियुगमें धर्म आदिका ह्रास तथा स्वल्प भी धर्माचरणका महत्फल एवं कलियुगके अन्तमें पुनः सत्ययुगकी प्रवृत्ति

शक्र उवाच

तिष्ये मायामसूयां च वधं चैव तपस्विनाम्।
साधयन्ति नरास्तत्र तमसा व्याकुलेन्द्रियाः॥ १

इन्द्र बोले—[हे शिलाद!] कलियुगमें तमोगुणसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले मनुष्य माया रचेंगे, दूसरोंका दोष देखेंगे तथा तपस्वियोंका वध करेंगे॥ १॥

कलौ प्रमादको रोगः सततं क्षुद्भयानि च।
अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः॥ २

कलियुगमें प्रमाद, रोग, निरन्तर क्षुधाका भय, अनावृष्टिरूप घोर भय तथा देशोंका विपर्यय (विनाश)—ये सब होंगे॥ २॥

न प्रामाण्यं श्रुतेरस्ति नृणां चाधर्मसेवनम्।
अधार्मिकास्त्वनाचारा महाकोपाल्पचेतसः॥ ३

लोग वेदोंकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करेंगे तथा अधर्मका आचरण करेंगे। मनुष्य धर्मच्युत होकर अनाचारमें रत रहेंगे और महान् क्रोधी तथा मन्द बुद्धिवाले होंगे॥ ३॥

अनृतं ब्रुवते लुब्धास्तिष्ये जाताश्च दुष्प्रजाः।
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः॥ ४

विप्राणां कर्मदोषेण प्रजानां जायते भयम्।
नाधीयन्ते तदा वेदान्न यजन्ति द्विजातयः॥ ५

कलियुगमें प्रजाएँ मिथ्या भाषण करेंगी, लोभ-परायण होंगी तथा मलिन आचार-विचारवाली होंगी। ब्राह्मणोंके दूषित यज्ञ, दूषित पठन, दूषित आचार एवं दूषित शास्त्रोंके सेवनरूपी कर्मदोषसे प्रजाओंमें भय उत्पन्न होगा। द्विजातिगण न तो वेदोंका अध्ययन करेंगे और न तो यज्ञ-अनुष्ठान करेंगे॥ ४-५॥

उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाश्च विशः क्रमात्।
शूद्राणां मन्त्रयोगेन सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह॥ ६

भवतीह कलौ तस्मिन् शयनासनभोजनैः।
राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान् बाधयन्ति ते॥ ७

क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी मनुष्य क्रमशः विनष्ट हो जायँगे। कलियुगमें ब्राह्मण लोग शूद्रोंको मन्त्रोपदेश देंगे तथा उनके साथ शयन, आसन, भोजन आदिका व्यवहार

भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायन्ते प्रजासु वै।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः॥ ८

राजवृत्तिस्थिताश्चौराश्चौराचाराश्च पार्थिवाः।
एकपत्न्यो न शिष्यन्ति वर्धिष्यन्त्यभिसारिकाः॥ ९

वर्णाश्रमप्रतिष्ठा नो जायते नृषु सर्वतः।
तदा स्वल्पफला भूमिः क्वचिच्चापि महाफला॥ १०

अरक्षितारो हर्तारः पार्थिवाश्च शिलाशन।
शूद्रा वै ज्ञानिनः सर्वे ब्राह्मणैरभिवन्दिताः॥ ११

अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः।
आसनस्था द्विजान् दृष्ट्वा न चलन्त्यल्पबुद्धयः॥ १२

ताडयन्ति द्विजेन्द्रांश्च शूद्रा वै स्वल्पबुद्धयः।
आस्ये निधाय वै हस्तं कर्णं शूद्रस्य वै द्विजाः॥ १३

नीचस्येव तदा वाक्यं वदन्ति विनयेन तम्।
उच्चासनस्थान् शूद्रांश्च द्विजमध्ये द्विजर्षभ॥ १४

ज्ञात्वा न हिंसते राजा कलौ कालवशेन तु।
पुष्पैश्च वासितैश्चैव तथान्यैर्मङ्गलैः शुभैः॥ १५

शूद्रानभ्यर्चयन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः।
न प्रेक्षन्ते गर्विताश्च शूद्रा द्विजवरान् द्विज॥ १६

सेवावसरमालोक्य द्वारे तिष्ठन्ति वै द्विजाः।
वाहनस्थान् समावृत्य शूद्रान् शूद्रोपजीविनः॥ १७

सेवन्ते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवन्ति स्तुतिभिः कलौ।
तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः॥ १८

करके उनसे सम्बन्ध बनायेंगे। राजा लोग शूद्रवत् आचरण करते हुए ब्राह्मणोंको सन्ताप देंगे॥ ६-७॥

प्रजाओंमें भ्रूणहत्या तथा वीरोंकी हत्याकी प्रवृत्ति व्याप्त रहेगी। शूद्र लोग ब्राह्मणोंका आचरण करेंगे एवं ब्राह्मण शूद्रोंका आचरण करेंगे॥ ८॥

चोर लोग राजाओंके तुल्य व्यवहार करेंगे और राजा लोग चोरों-जैसा व्यवहार करेंगे। स्त्रियाँ पातिव्रत्य धर्मका पालन नहीं करेंगी और व्यभिचारिणी स्त्रियोंका बाहुल्य होगा॥ ९॥

मनुष्योंमें वर्ण तथा आश्रमसम्बन्धी समस्त व्यवहार समाप्त हो जायगा। उस समय पृथ्वी कहीं कम और कहीं अधिक फल देनेवाली होगी॥ १०॥

हे शिलाद! राजागण प्रजाओंके रक्षक न होकर उनके विनाशक हो जायेंगे। सभी शूद्र ज्ञानी बनकर ब्राह्मणोंसे वन्दित होंगे॥ ११॥

क्षत्रियसे इतर वर्णवाले राजा होंगे, ब्राह्मण आजीविकाके लिये शूद्रोंपर निर्भर रहेंगे और अल्प बुद्धिवाले वे शूद्र ब्राह्मणोंको देखकर अपने आसनसे नहीं उठेंगे। स्वल्प बुद्धिवाले शूद्र श्रेष्ठ द्विजोंको भी दण्डित (अपमानित) करेंगे। द्विज अपने मुखपर हाथ रखकर शूद्रके कानमें विनयपूर्वक नीच व्यक्तिके समान वाक्य बोलेंगे॥ १२-१३$^{१}/_{२}$॥

हे द्विजश्रेष्ठ! कलियुगमें कालके वशमें होकर राजा ब्राह्मणोंके बीच उच्च आसनपर बैठे हुए शूद्रको देखकर उसे दण्डित नहीं करेंगे। वे पुष्पों, सुगन्धित पदार्थों तथा अन्य मंगल-द्रव्योंसे शूद्रोंकी पूजा करेंगे। हे द्विज! अल्प शास्त्र-ज्ञान, खोटे भाग्य एवं बलसे युक्त शूद्र लोग गर्वित होकर श्रेष्ठसे श्रेष्ठ द्विजोंकी ओर देखनातक पसन्द नहीं करेंगे॥ १४—१६॥

अपनी आजीविकाके लिये शूद्रोंपर आश्रित रहनेवाले ब्राह्मण सेवाका अवसर देखकर वाहनोंपर स्थित शूद्रोंको घेरकर उनके द्वारपर खड़े होकर उनकी सेवा करेंगे। कलियुगमें ब्राह्मण अनेकविध स्तुतियोंसे शूद्रोंका स्तवन करेंगे। उस समय उत्तम विप्रगण अपने तपों तथा यज्ञोंके फलका विक्रय करेंगे॥ १७-१८॥

यतयश्च भविष्यन्ति बहवोऽस्मिन् कलौ युगे।
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्ते समुपस्थिते॥ १९

निन्दन्ति वेदविद्यां च द्विजाः कर्माणि वै कलौ।
कलौ देवो महादेवः शङ्करो नीललोहितः॥ २०

प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः।
ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनापि शङ्करम्॥ २१

कलिदोषान् विनिर्जित्य प्रयान्ति परमं पदम्।
श्वापदप्रबलत्वं च गवां चैव परिक्षयः॥ २२

साधूनां विनिवृत्तिश्च वेद्या तस्मिन् युगक्षये।
तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुर्लभो दानमूलवान्॥ २३

चातुराश्रमशैथिल्ये धर्मः प्रतिचलिष्यति।
अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः॥ २४

युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः।
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः॥ २५

प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे।
चित्रवर्षी तदा देवो यदा प्राहुर्युगक्षयम्॥ २६

सर्वे वणिग्जनाश्चापि भविष्यन्त्यधमे युगे।
कुशीलचर्याः पाखण्डैर्वृथारूपैः समावृताः॥ २७

बहुयाजनको लोको भविष्यति परस्परम्।
नाव्याहृतक्रूरवाक्यो नार्जवी नानसूयकः॥ २८

न कृते प्रतिकर्ता च युगक्षीणे भविष्यति।
निन्दकाश्चैव पतिता युगान्तस्य च लक्षणम्॥ २९

उस कलियुगमें बहुत लोग संन्यासीका रूप धारण कर लेंगे। उस युगान्तके उपस्थित होनेपर पुरुष तो कम होंगे, किंतु स्त्रियाँ अधिक होंगी। कलियुगमें ब्राह्मण वेद-विद्या तथा वैदिक कर्मोंकी निन्दा करेंगे॥ १९½॥

तब उस कलियुगमें नीललोहित महादेव शिव धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये अपनी विकृत आकृति अर्थात् उच्छिन्नभिन्न लिङ्गस्वरूपवाले होकर प्रकट होंगे॥ २०½॥

उस समय जो विप्रगण जिस किसी भी तरहसे उन विकृत वेषवाले शिवकी आराधना करेंगे, वे कलियुगके दोषोंपर विजय प्राप्तकर परमपदको प्राप्त होंगे॥ २१½॥

उस कलियुगके अन्तमें हिंसक पशुओंकी प्रबलता तथा गायोंका ह्रास होगा और उत्तम साधुओंका अभाव हो जायगा॥ २२½॥

उस समय दानके मूलवाला सूक्ष्म ऐश्वर्यका रूप भी दुर्लभ हो जायगा, ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमोंकी शिथिलता हो जानेपर धर्म विनष्ट हो जायगा॥ २३½॥

उस युगान्तमें राजा लोग प्रजाजनोंकी रक्षा न करके मात्र अपनी रक्षामें तत्पर रहेंगे और बलिभाग [कर]-के हर्ता बन जायँगे॥ २४½॥

कलियुगमें समस्त प्राणी अन्न तथा कन्याओंका विक्रय करनेवाले एवं ब्राह्मण वेद बेचनेवाले होंगे और स्त्रियाँ व्यभिचारपरायण हो जायँगी। जब युगक्षय होता है, उस समय वर्षाके देवता इन्द्र कहीं-कहींपर वृष्टि करनेवाले कहे जाते हैं॥ २५-२६॥

उस अधम कलियुगमें सभी वणिक् जन भी कुत्सित आचरणवाले, दम्भ करनेवाले तथा पाखण्डी अर्थात् अवैदिक मार्गोंपर चलनेवाले होंगे॥ २७॥

कलियुगमें सभी लोग ग्रामयाजक (पात्र-अपात्रका विचार किये बिना सबका यज्ञ आदि करानेवाले) हो जायँगे। कोई भी मृदु वचन बोलनेवाला, सरल स्वभाववाला, ईर्ष्यारहित तथा प्रत्युपकारी अर्थात् अपने लिये किये गये उपकारको माननेवाला नहीं होगा और सभी लोग निन्दक एवं पतित हो जायँगे। यह सब युगान्त कलियुगका लक्षण है॥ २८-२९॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

नृपशून्या वसुमती न च धान्यधनावृता।
मण्डलानि भविष्यन्ति देशेषु नगरेषु च॥ ३०

पृथ्वी राजाओंसे शून्य हो जायगी तथा धन-धान्यसे परिपूर्ण नहीं रहेगी। देशों और नगरोंमें बहुत-से स्थान जनशून्य हो जायँगे॥ ३०॥

अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुन्धरा।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः सम्भविष्यन्त्यशासनाः॥ ३१

पृथ्वी अल्प जलवाली तथा कम फल देनेवाली होगी। रक्षक ही भक्षक बन जायँगे एवं लोग स्वेच्छाचारी हो जायँगे॥ ३१॥

हर्तारः परवित्तानां परदारप्रधर्षकाः।
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमाः साहसप्रियाः॥ ३२

प्रनष्टचेष्टनाः पुंसो मुक्तकेशाश्च शूलिनः।
जनाः षोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये॥ ३३

युगान्त कलियुगमें सभी लोग दूसरोंके धनका हरण करनेवाले, परस्त्रीगमन करनेवाले, कामी, दुरात्मा, अधम, दुस्साहसी, उद्योगरहित, लज्जारहित, रोगी तथा सोलह वर्षकी परम आयुवाले होंगे॥ ३२-३३॥

शुक्लदन्ताजिनाक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥ ३४

कलियुगके उपस्थित होनेपर शूद्रगण [निर्लज्जता-पूर्वक] दाँत दिखाते हुए गेरुआ वस्त्र तथा रुद्राक्ष धारणकर एवं मुण्डित सिरवाले होकर यतियोंके धर्मका आचरण करेंगे॥ ३४॥

सस्यचौरा भविष्यन्ति दृढचैलाभिलाषिणः।
चौराश्चोरस्वहर्तारो हर्तुर्हर्ता तथापरः॥ ३५

योग्यकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते।
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान्॥ ३६

कलियुगमें लोग धान्यका हरण करनेवाले तथा अत्यन्त दुष्ट लोगोंके संगकी अभिलाषा करनेवाले होंगे। चोर चोरोंका धन चुरायेंगे और उनके भी धनको कोई दूसरा हरण कर ले जायगा। मनुष्यके विधिसम्मत कर्मसे विरत होकर निष्क्रिय होनेपर कीट, मूषक तथा सर्प मनुष्योंको पीड़ित करेंगे॥ ३५-३६॥

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं तदा।
कौशिकीं प्रतिपत्स्यन्ते देशान् क्षुद्भयपीडिताः॥ ३७

दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं तदा।
दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः॥ ३८

उत्सीदन्ति तदा यज्ञा केवलाधर्मपीडिताः।
काषायिणोऽप्यनिर्ग्रन्थाः कापालीबहुलास्त्विह॥ ३९

वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे।
वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः॥ ४०

उत्पद्यन्ते तदा ते वै सम्प्राप्ते तु कलौ युगे।
अधीयन्ते तदा वेदान् शूद्रा धर्मार्थकोविदाः॥ ४१

यजन्ते चाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः।
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्॥ ४२

सभी प्राणी स्त्रियों, बालकों

सुभिक्ष, कल्याण, नीरोगता, सामर्थ्य आदि दुर्लभ हो जायँगे। लोग क्षुधापीड़ित होकर अपने देशसे आकर कौशिकी नदीके तटपर बसेंगे। लोग दुःखित होकर सौ वर्षकी पूर्ण आयु व्यतीत करेंगे॥ ३७½॥

कलियुगमें सभी वेदोंका प्रचार-प्रसार कहीं दिखायी देगा और कहीं नहीं। समस्त यज्ञ अधर्मसे पीड़ित होकर विनष्ट हो जायँगे॥ ३८½॥

संन्यासी शास्त्रज्ञानसे रहित होंगे तथा कापालिक बहुत-से होंगे। कुछ लोग वेद बेचेंगे, तो अन्य लोग तीर्थोंका विक्रय करेंगे। अन्य पाखण्डी लोग वर्णाश्रमधर्मके प्रतिकूल आचरण करेंगे। कलियुगके उपस्थित होनेपर इस प्रकारके लोग उत्पन्न होंगे॥ ३९-४०½॥

धर्म तथा अर्थके पण्डित बनकर शूद्रलोग वेदोंका अध्ययन करेंगे एवं शूद्र जातिके राजा अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करेंगे। उस समय सभी प्राणी स्त्रियों, बालकों

उपद्रवांस्तथान्योन्यं साधयन्ति तदा प्रजाः।
दुःखप्रभूतमल्पायुर्देहोत्सादः सरोगता॥ ४३

अधर्माभिनिवेशित्वात्तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्।
प्रजासु ब्रह्महत्यादि तदा वै सम्प्रवर्तते॥ ४४

तथा गायोंका वध करके परस्पर नानाविध उपद्रव उत्पन्न करेंगे॥ ४१-४२$^{१}/_{२}$॥

उस समय अपार दुःख, अल्प आयु, शारीरिक कष्ट तथा व्याधियोंसे लोग पीड़ित होंगे। ऐसा कहा गया है कि कलियुगमें अधर्मके प्रति अत्यन्त आसक्ति होनेके कारण लोगोंका आचरण तमोगुणप्रधान होगा। उस समय प्रजाओंमें ब्रह्महत्या आदि महापापकर्म करनेकी विशेष तत्परता होगी॥ ४३-४४॥

तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते।
तदा त्वल्पेन कालेन सिद्धिं गच्छन्ति मानवाः॥ ४५

अतएव कलियुगको प्राप्तकर प्रजाओंकी आयु, बल, रूप आदिका क्षय होगा। उस समय अल्पकालके धर्माचरणसे ही मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होंगे॥ ४५॥

धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते द्विजसत्तमाः।
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरन्त्यनसूयकाः॥ ४६

उस कलियुगमें जो श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वेषरहित होकर वेदों तथा स्मृतियोंमें प्रतिपादित धर्मोंका आचरण करेंगे, वे धन्य होंगे॥ ४६॥

त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः।
यथाक्लेशं चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुते कलौ॥ ४७

त्रेतामें वर्षभर तथा द्वापरमें मासभर धर्माचरण करनेसे जिस फलका प्राप्त होना बताया गया है, ज्ञानवान् व्यक्ति कलियुगमें वही फल यथाशक्ति एक दिन धर्माचरण करके प्राप्त कर लेता है॥ ४७॥

एषा कलियुगावस्था सन्ध्यांशं तु निबोध मे।
युगे युगे च हीयन्ते त्रींस्त्रीन् पादांस्तु सिद्धयः॥ ४८

यह कलियुगकी दशाका वर्णन किया गया है। अब आप उसका सन्ध्यांश मुझसे जान लीजिये। युग-युगमें सिद्धियोंके तीन पादोंका ह्रास होता है॥ ४८॥

युगस्वभावाः सन्ध्यास्तु तिष्ठन्तीह तु पादशः।
सन्ध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादशस्ते प्रतिष्ठिताः॥ ४९

युगके स्वभाववाली सन्ध्याएँ यहाँ पादसे न्यून होकर रहती हैं। इस प्रकार सन्ध्याके स्वभाव अपने अंशोंमें अर्थात् सन्ध्यांशोंमें एक चतुर्थांशसे न्यून होकर प्रतिष्ठित रहते हैं॥ ४९॥

एवं सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके।
तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भूतानां निधनोत्थितः॥ ५०

इस प्रकार युगान्तमें सन्ध्यांशकालके उपस्थित होनेपर दुष्ट प्राणियोंके संहारके लिये उनका एक महान् शासक आविर्भूत होगा॥ ५०॥

गोत्रेऽस्मिन् वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते।
मानवस्य तु सोंऽशेन पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ ५१

पूर्वकालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें जो प्रमिति नामसे विख्यात रहे हैं, वे मनुपुत्रके अंशसे इस कलियुगके समाप्तिकालमें चन्द्रमाके गोत्रमें सोमशर्मा नामक ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न होंगे॥ ५१॥

समाः सविंशतिः पूर्णा पर्यटन् वै वसुन्धराम्।
अनुकर्षन् स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम्॥ ५२

प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् हन्ति सहस्रशः॥ ५३

शस्त्रधारी ब्राह्मणोंसे निरन्तर परिवृत वे हाथी, घोड़े तथा रथसे युक्त विशाल सेना साथमें लेकर पूरे बीस वर्षतक पृथ्वीपर घूम-घूमकर सैकड़ों और हजारों बार म्लेच्छोंका वध करेंगे॥ ५२-५३॥

स हत्वा सर्वशश्चैव राज्ञस्तान् शूद्रयोनिजान्।
पाखण्डांस्तु ततः सर्वान्निःशेषं कृतवान् प्रभुः॥ ५४

नात्यर्थं धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वतः।
वर्णव्यत्यासजाताश्च ये च ताननुजीविनः॥ ५५

प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृत्स तु।
अधृष्यः सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम्॥ ५६

मानवस्य तु सोंऽशेन देवस्येह विजज्ञिवान्।
पूर्वजन्मनि विष्णोस्तु प्रमितिर्नाम वीर्यवान्॥ ५७

गोत्रतो वै चन्द्रमसः पूर्णे कलियुगे प्रभुः।
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्तो विंशतिः समाः॥ ५८

विनिघ्नन् सर्वभूतानि शतशोऽथ सहस्रशः।
कृत्वा बीजावशेषां तु पृथिवीं क्रूरकर्मणः॥ ५९

परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु।
स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान्॥ ६०

गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्थितिं प्राप्तः सहानुगः।
ततो व्यतीते काले तु सामात्यः सह सैनिकः॥ ६१

उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः।
तत्र सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके॥ ६२

स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित्।
अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टास्तु कृत्स्नशः॥ ६३

उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रणिपत्य परस्परम्।
अराजके युगवशात्संशये समुपस्थिते॥ ६४

प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः।
व्याकुलाश्च परिभ्रान्तास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च॥ ६५

स्वान् प्राणाननपेक्षन्तो निष्कारुण्याः सुदुःखिताः।
नष्टे श्रौते स्मार्तधर्मे परस्परहतास्तदा॥ ६६

निर्मर्यादा निराक्रान्ता निःस्नेहा निरपत्रपाः।
नष्टे धर्मे प्रतिहताः ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः॥ ६७

परम ऐश्वर्यसम्पन्न वे ब्राह्मणपुत्र शूद्रयोनिमें उत्पन्न उन सभी पाखण्डी राजाओंको मारकर पृथ्वीको उनसे पूर्णतः विहीन कर देंगे॥ ५४॥

अधर्मका आचरण करनेवाले, वर्णव्यवस्थाके प्रतिकूल चलनेवाले तथा इनके जो अनुजीवी हैं, उन सभीको वे मार डालेंगे॥ ५५॥

सभी प्राणियोंके लिये अजेय, म्लेच्छोंके संहारक, अत्यन्त बलशाली तथा प्रवृत्त-आज्ञामण्डलवाले वे समग्र भूमण्डलपर विचरण करेंगे॥ ५६॥

पूर्वजन्ममें वीर्यवान् प्रमिति नामवाले वे इस कलिमें मनुपुत्र विष्णुदेवके अंशसे सोम-गोत्रमें कलियुगके पूर्ण होनेपर उत्पन्न होंगे। बीस वर्षतक पराक्रम प्रदर्शित करनेवाले वे सैकड़ों-हजारों विधर्मी प्राणियोंको नष्ट करते हुए पृथ्वीको क्रूरकर्मा जनोंसे शून्यप्राय-सा करके आकस्मिक तथा पारस्परिक समुत्पादित कोपके द्वारा उन अधार्मिक वृषलप्राय जनोंको मारकर बत्तीसवें वर्षके उदित होते ही मन्त्रियों, सहचरों तथा सैनिकोंसहित गंगा-यमुनाके मध्य स्वयंको संस्थापित कर लेंगे॥ ५७—६१॥

धर्मच्युत सभी पार्थिवों तथा हजारों म्लेच्छोंको नष्ट करके उस कलियुगमें सन्ध्यांशके समुपस्थित होनेपर यत्र-तत्र थोड़ी ही प्रजाएँ बची रहेंगी। वे आत्मनियन्त्रण खोकर तथा पूर्ण रूपसे लोभके वशीभूत होकर एक-दूसरेसे कृत्रिम नम्रता प्रदर्शित करती हुई उन्हें विश्वासमें लेकर उनकी हिंसा कर डालेंगी॥ ६२-६३$^{१}/_{२}$॥

युगके प्रभावके कारण अराजकताकी स्थिति उत्पन्न होनेपर वे सभी प्रजाएँ परस्पर भयसे ग्रस्त होकर व्याकुल तथा भ्रमित हो जायँगी। लोग अत्यन्त दुःखित एवं करुणाशून्य होकर अपनी पत्नियों तथा घरोंको छोड़कर अपने प्राणोंकी भी परवाह न करनेवाले होंगे॥ ६४-६५$^{१}/_{२}$॥

श्रौत तथा स्मार्तधर्मके नष्ट हो जानेपर सभी प्रजाएँ मर्यादाहीन, अत्यन्त क्रूर, स्नेहरहित तथा निर्लज्ज होकर एक-दूसरेकी हिंसा करानेमें तत्पर रहेंगी॥ ६६$^{१}/_{२}$॥

धर्मके नष्ट हो जानेपर पतनको प्राप्त हुए लोग लघु आकारवाले तथा पच्चीस वर्षकी आयुवाले होंगे।

हित्वा पुत्रांश्च दारांश्च विवादव्याकुलेन्द्रियाः।
अनावृष्टिहताश्चैव वार्तामुत्सृज्य दूरतः॥ ६८

प्रत्यन्तानुपसेवन्ते हित्वा जनपदान् स्वकान्।
सरित्सागरकूपांस्ते सेवन्ते पर्वतांस्तथा॥ ६९

मधुमांसैर्मूलफलैर्वर्तयन्ति सुदुःखिताः।
चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः॥ ७०

वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्कटं घोरमास्थिताः।
एवं कष्टमनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजास्तदा॥ ७१

जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमानसाः।
विचारणा तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणा॥ ७२

साम्यावस्थात्मको बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता।
अरूपशमयुक्तास्तु कलिशिष्टा हि वै स्वयम्॥ ७३

अहोरात्रात्तदा तासां युगं तु परिवर्तते।
चित्तसम्मोहनं कृत्वा तासां वै सुप्तमत्तवत्॥ ७४

भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत।
प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै॥ ७५

उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु प्रजाः कार्तयुगास्तदा।
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विचरन्ति च॥ ७६

सप्तसप्तर्षिभिश्चैव तत्र ते तु व्यवस्थिताः।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह॥ ७७

कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाभवन्।
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेऽपि च॥ ७८

आपसी कलहसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले लोग अपनी पत्नियों एवं पुत्रोंका त्यागतक कर देंगे॥ ६७$^{१}/_{२}$॥

वृष्टि न होनेके कारण दुःखित प्रजाएँ कृषिकर्मका पूर्ण रूपसे त्याग करके अपने-अपने देशोंको छोड़कर म्लेच्छ देशों, नदी, समुद्र, कुएँ, पर्वत आदि स्थानोंपर शरण लेंगी॥ ६८-६९॥

प्रजाएँ अत्यन्त दुःखित होकर मधु, मांस, कन्दमूल तथा फलोंपर जीवन-निर्वाह करेंगी। वे परिग्रहरहित एवं निष्क्रिय होकर वृक्षोंकी छाल तथा उनके पत्ते वस्त्ररूपमें धारण करेंगी॥ ७०॥

वर्ण तथा आश्रमव्यवस्थासे भ्रष्ट हुए लोग घोर कष्टमें पड़ जायँगे और इस प्रकार भीषण दुःख आ जानेके कारण थोड़ी ही प्रजा बच पायेगी॥ ७१॥

बुढ़ापा, रोग तथा क्षुधासे पीड़ित लोगोंके मनमें उस दुःखसे निर्वेद उत्पन्न होगा। पुनः उस निर्वेदसे साम्यावस्थावाली विचारणा, विचारणासे साम्यावस्थात्मक बोध और अन्तमें उस बोधसे धर्माचरणके प्रति प्रवृत्ति जाग्रत् होगी। कलियुगकी बची हुई वे प्रजाएँ स्वयं शक्ति-सामर्थ्यके अभावमें शान्तियुक्त हो जायँगी॥ ७२-७३॥

इसके बाद सुप्त तथा मत्तकी भाँति उन प्रजाओंका चित्त-सम्मोहन करके एक दिन-रातमें ही कलियुग परिवर्तित हो जायगा और इस प्रकार कालधर्मके अनुसार कलियुगको दबाकर सत्ययुग प्रवृत्त हो जायगा॥ ७४$^{१}/_{२}$॥

तदनन्तर उस सत्ययुगके प्रवृत्त होनेपर कलियुगकी बची हुई प्रजाओंमें सत्ययुगके आचार-विचार उत्पन्न होंगे॥ ७५$^{१}/_{२}$॥

इस लोकमें उस समय जो सप्तसिद्ध[१] लोग रहते हैं, वे अदृश्य रूपमें सप्तर्षियों[२]के साथ व्यवस्थित होकर विचरण करते हैं॥ ७६$^{१}/_{२}$॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बीजके लिये कहे गये हैं, वे सब कलियुगमें उत्पन्न होनेवालोंके साथ उस समय विशेषता-रहित होकर रहते थे॥ ७७$^{१}/_{२}$॥

वर्णाश्रमके आचारवाला जो श्रौत तथा स्मार्त दो

१. मन्त्रज्ञ, मन्त्रविद्, प्राज्ञ, मन्त्रराट्, सिद्धपूजित, सिद्धवत् और परमसिद्ध—ये सात सप्तसिद्ध कहे गये हैं। (लिङ्गपुराण पू० ८२।५१)
२. कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, वसिष्ठ तथा जमदग्नि—ये सप्तर्षि कहे गये हैं।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतं स्मार्तं द्विधा तु यम्।
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्धन्ते वै प्रजाः कृते॥ ७९

श्रौतस्मार्तकृतानां च धर्मे सप्तर्षिदर्शिते।
केचिद्धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह युगक्षये॥ ८०

मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह ततः क्षितौ॥ ८१

वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषु सम्भवः।
तथा कार्तयुगानां तु कलिजेष्विह सम्भवः॥ ८२

एवं युगाद्युगस्येह सन्तानं तु परस्परम्।
वर्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः॥ ८३

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मोऽर्थः काम एव च।
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रींस्त्रीन् पादान् क्रमेण तु॥ ८४

ससन्ध्यांशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः।
इत्येषा प्रतिसिद्धिर्वै कीर्तितैषा क्रमेण तु॥ ८५

चतुर्युगानां सर्वेषामनेनैव तु साधनम्।
एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्राद्गुणीकृता॥ ८६

ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्चैतावती स्मृता।
अनार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात्॥ ८७

एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम्।
एषां चतुर्युगाणां च गुणिता ह्येकसप्ततिः॥ ८८

क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते।
चतुर्युगे यथैकस्मिन् भवतीह यदा तु यत्॥ ८९

तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम्।
सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु॥ ९०

पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा।
तथा कल्पा युगैः सार्धं भवन्ति सह लक्षणैः॥ ९१

प्रकारका धर्म होता है; उस धर्मको उन लोगोंके लिये सप्तर्षि एवं सप्तसिद्ध लोग उपदेश करते हैं। इस प्रकार उन लोगोंके कर्मनिष्ठ हो जानेपर कृतयुगमें प्रजाएँ बढ़ने लगती हैं॥ ७८-७९॥

उन सप्तर्षियोंके द्वारा श्रौत-स्मार्तसम्बन्धी धर्मोंका उपदेश करनेसे कुछ लोग युगके क्षयके समय इस पृथ्वीलोकमें धर्मकी व्यवस्थाके लिये रह जाते हैं॥ ८०॥

वे मुनिगण मन्वन्तरोंके अधिकारोंमें स्थित रहते हैं। जिस प्रकार इस पृथ्वीपर दावानलसे वनोंके तृण आदिके जल जानेपर बादमें प्रथम वृष्टिसे उनके मूलोंमें पुनः अंकुरण होता है; उसी प्रकार कलियुगमें उत्पन्न हुए लोगोंसे ही कृतयुगके प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है॥ ८१-८२॥

इस प्रकार अव्यवच्छिन्न रूपसे इस लोकमें मन्वन्तरके क्षयतक एक युगके कुछ संतान दूसरे युगमें विद्यमान रहते हैं॥ ८३॥

प्रत्येक चतुर्युगीमें सुख, आयु, बल, रूप, धर्म, अर्थ तथा काम—ये सभी क्रमसे तीन-तीन पादोंके ह्रासको प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रत्येक युगके अन्ततक इनके एक-एक पादका ह्रास होता जाता है॥ ८४॥

इसी प्रकार युगके सन्ध्यांशमें प्रत्येक युगकी धर्म सिद्धियोंका भी ह्रास होता है। इस तरह मैंने क्रमसे प्रत्येक सिद्धिका वर्णन कर दिया॥ ८५॥

इसी प्रकार सभी चारों युगोंकी स्थिति बनती है। चारों युगोंकी एक आवृत्तिका जो एक हजार गुना है; वही ब्रह्माजीका एक दिन कहा गया है और उतनी ही बड़ी उनकी एक रात कही जाती है॥ ८६$^{१}/_{२}$॥

ज्यों-ज्यों युगका क्षय होता है, प्राणियोंमें जड़ता-भाव तथा स्वभावकी सरलताका अभाव बढ़ता जाता है। यही सभी युगोंका लक्षण कहा गया है॥ ८७$^{१}/_{२}$॥

क्रमसे एक चतुर्युगका इकहत्तर ($७१\frac{६}{१४}$) बार आवर्तन एक मन्वन्तर कहा जाता है। जो व्यवहार इस चतुर्युगमें घटित होता है, वही क्रमशः दूसरे चतुर्युगोंमें भी होता है॥ ८८-८९$^{१}/_{२}$॥

प्रत्येक सर्गमें पचीस प्रकारके भेदोंवाले जो तत्त्व होते

मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम्॥ ९२

यथा युगानां परिवर्तनानि
चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात्।
तथा तु सन्तिष्ठति जीवलोकः
क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः॥ ९३

इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः।
अतीतानागतानां हि सर्वमन्वन्तरेषु वै॥ ९४

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि च।
व्याख्यातानि न सन्देहः कल्पः कल्पेन चैव हि॥ ९५

अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह॥ ९६

तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत।
देवा ह्यष्टविधा ये च ये च मन्वन्तरेश्वराः॥ ९७

ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः।
एवं वर्णाश्रमाणां तु प्रविभागो युगे युगे॥ ९८

युगस्वभावश्च तथा विधत्ते वै तदा प्रभुः।
वर्णाश्रमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः॥ ९९

युगानां परिमाणं ते कथितं हि प्रसङ्गतः।
वदामि देवि पुत्रत्वं पद्मयोनेः समासतः॥ १००

हैं; वे ही जैसे सदा उत्पन्न होते हैं और इससे कम या अधिक नहीं। उसी प्रकार युगोंके साथ-साथ लक्षणोंसहित कल्प भी होते हैं। सभी मन्वन्तरोंका भी यही लक्षण है॥ ९०—९२॥

युगोंके स्वभावके अनुसार जिस प्रकार चिरकालसे प्रवृत्त होनेवाले युगोंमें परिवर्तन होता है, उसी प्रकार युगोंके अनुरूप क्षय तथा उदयसे यह जीवलोक भी संस्थित रहता है और इसमें भी युगोंके अनुरूप परिवर्तन होता रहता है॥ ९३॥

इस प्रकार सभी मन्वन्तरोंमें बीते हुए तथा आनेवाले युगोंके लक्षण संक्षेपमें कहे गये हैं॥ ९४॥

इसी तरह एक मन्वन्तरसे सभी मन्वन्तरोंकी व्याख्या की गयी है। एक कल्पके लक्षणोंसे सभी कल्पोंके लक्षण समझ लेना चाहिये। इस विषयमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है॥ ९५॥

उसी भाँति ज्ञानी पुरुषको इस लोकमें बीते हुए तथा आनेवाले सभी मन्वन्तरोंके विषयमें कल्पना कर लेनी चाहिये॥ ९६॥

जो आठ प्रकारके देवता*, मन्वन्तरोंके स्वामी, ऋषिगण, मनुगण आदि हैं, वे सब तुल्य अभिमान-नाम-रूपवाले हुआ करते हैं; साथ ही उन सभीका समान प्रकारका प्रयोजन भी होता है॥ ९७½॥

इस प्रकार मैंने युग, उनके धर्म, वर्णाश्रमोंके विभाग, युगोंकी सिद्धियाँ, युगोंके परिमाण जिन्हें युग-युगमें परमात्मा धारण करते हैं—इन सबके विषयमें आपसे प्रसंगके अनुसार कह दिया। अब मैं आपसे पद्मयोनि ब्रह्माजीके देवीके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेके विषयमें संक्षेपमें कह रहा हूँ॥ ९८—१००॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे चतुर्युगपरिमाणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'चतुर्युगपरिमाण' नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

---

* यहाँ गणदेवताओंका वर्ग आठ प्रकारका बताया गया है, किंतु अमरकोष (१।१।१०) तथा वाचस्पतिकोषमें गणदेवताओंके नौ वर्ग कहे गये हैं और एक-एक वर्गमें परिगणित देवताओंकी संख्याको इस प्रकार बताया गया है—

आदित्या द्वादशप्रोक्ता विश्वेदेवा दशस्मृताः। वसवश्चाष्ट संख्याताः षट्त्रिंशत् तुषिता मताः॥
आभास्वराश्चतुष्षष्टिर्वाताः पञ्चाशदूनकाः। महाराजिकनामानो द्वे शते विंशतिस्तथा॥
साध्या द्वादशविख्याता रुद्राश्चैकादशस्मृताः।

अर्थात् आदित्य १२, विश्वेदेव १०, वसु ८, तुषित ३६, आभास्वर ६४, मरुत् ४९, महाराजिक २२०, साध्य १२ और रुद्र ११ होते हैं।

इकतालीसवाँ अध्याय

विभिन्न कल्पोंमें त्रिदेवोंका परस्पर प्राकट्य तथा ब्रह्माद्वारा महेश्वरकी नामाष्टकस्तुतिका वर्णन

इन्द्र उवाच

पुनः ससर्ज भगवान् प्रभ्रष्टाः पूर्ववत्प्रजाः।
सहस्रयुगपर्यन्ते प्रभाते तु पितामहः॥ १

एवं परार्धे विप्रेन्द्र द्विगुणे तु तथा गते।
तदा धराम्भसि व्याप्ता ह्यापो वह्नौ समीरणे॥ २

वह्निः समीरणश्चैव व्योम्नि तन्मात्रसंयुतः।
इन्द्रियाणि दशैकं च तन्मात्राणि द्विजोत्तम॥ ३

अहङ्कारमनुप्राप्य प्रलीनास्तत्क्षणादहो।
अभिमानस्तदा तत्र महान्तं व्याप्य वै क्षणात्॥ ४

महानपि तथा व्यक्तं प्राप्य लीनोऽभवद् द्विज।
अव्यक्तं स्वगुणैः सार्धं प्रलीनमभवद्भवे॥ ५

ततः सृष्टिरभूत्तस्मात्पूर्ववत्पुरुषाच्छिवात्।
अथ सृष्टास्तदा तस्य मनसा तेन मानसाः॥ ६

न व्यवर्धन्त लोकेऽस्मिन् प्रजाः कमलयोनिना।
वृद्ध्यर्थं भगवान् ब्रह्मा पुत्रैर्वै मानसैः सह॥ ७

दुश्चरं विचचारेशं समुद्दिश्य तपः स्वयम्।
तुष्टस्तु तपसा तस्य भवो ज्ञात्वा स वाञ्छितम्॥ ८

ललाटमध्यं निर्भिद्य ब्रह्मणः पुरुषस्य तु।
पुत्रस्नेहमिति प्रोच्य स्त्रीपुंरूपोऽभवत्तदा॥ ९

तस्य पुत्रो महादेवो ह्यर्धनारीश्वरोऽभवत्।
ददाह भगवान् सर्वं ब्रह्माणं च जगद्गुरुम्॥ १०

इन्द्र बोले—तत्पश्चात् एक हजार चतुर्युगीके व्यतीत हो जानेपर प्रभात वेलामें भगवान् ब्रह्माने नष्ट हुई प्रजाओंका पुनः पूर्ववत् सृजन किया। हे विप्रेन्द्र! इस प्रकार ब्रह्माके परार्धका दूना समय बीत जानेपर पृथ्वी जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें और वायु आकाशमें अपनी-अपनी तन्मात्रासहित व्याप्त हो गये। हे द्विजश्रेष्ठ! दसों इन्द्रियाँ, मन तथा तन्मात्राएँ अहंकारको प्राप्तकर तत्क्षण उसीमें विलीन हो गयीं। अहंकार उस महत्को व्याप्त करके एवं महत् भी अव्यक्तको व्याप्त करके उसी क्षण उनमें विलीन हो गया। हे द्विज! अव्यक्त भी अपने गुणोंके साथ महेश्वरमें समाहित हो गया। इसके अनन्तर उन्हीं परम पुरुष शिवसे पूर्वकी भाँति सृष्टि होने लगी॥ १—५$^{१}/_{२}$॥

एतदनन्तर पद्मयोनि ब्रह्माजीने अपने मनसे मानस पुत्रोंका सृजन किया। इस लोकमें जब प्रजाओंकी वृद्धि न हो सकी, तब प्रजा-वृद्धिके लिये स्वयं भगवान् ब्रह्मा अपने मानस पुत्रोंके साथ महेश्वरके निमित्त कठोर तप करने लगे। तब उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर वे महेश्वर शिव उनकी कामना समझकर उन पुरुषरूप ब्रह्माके ललाटके मध्य-भागका भेदन करके 'मैं आपका पुत्र हूँ'—ऐसा

कहकर स्त्री-पुरुषरूपमें प्रकट हो गये। उनके पुत्र वे

अथार्धमात्रां कल्याणीमात्मनः परमेश्वरीम्।
बुभुजे योगमार्गेण वृद्ध्यर्थं जगतां शिवः॥ ११

तस्यां हरिं च ब्रह्माणं ससर्ज परमेश्वरः।
विश्वेश्वरस्तु विश्वात्मा चास्त्रं पाशुपतं तथा॥ १२

तस्माद् ब्रह्मा महादेव्याश्चांशजश्च हरिस्तथा।
अण्डजः पद्मजश्चैव भवाङ्गभव एव च॥ १३

एतत्ते कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम्।
परार्धं ब्रह्मणो यावत्तावद्भूतिः समासतः॥ १४

वैराग्यं ब्रह्मणो वक्ष्ये तमोद्भूतं समासतः।
नारायणोऽपि भगवान् द्विधा कृत्वात्मनस्तनुम्॥ १५

ससर्ज सकलं तस्मात्स्वाङ्गादेव चराचरम्।
ततो ब्रह्माणमसृजद् ब्रह्मा रुद्रं पितामहः॥ १६

मुने कल्पान्तरे रुद्रो हरिं ब्रह्माणमीश्वरम्।
ततो ब्रह्माणमसृजन्मुने कल्पान्तरे हरिः॥ १७

नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणं च पुनर्भवः।
तदा विचार्य वै ब्रह्मा दुःखं संसार इत्यजः॥ १८

सर्गं विसृज्य चात्मानमात्मन्येव नियोज्य च।
संहृत्य प्राणसञ्चारं पाषाण इव निश्चलः॥ १९

दशवर्षसहस्राणि समाधिस्थोऽभवत्प्रभुः।
अधोमुखं तु यत्पद्मं हृदि संस्थं सुशोभनम्॥ २०

पूरितं पूरकेणैव प्रबुद्धं चाभवत्तदा।
तदूर्ध्ववक्त्रमभवत्कुम्भकेन निरोधितम्॥ २१

तत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थापयामास चेश्वरम्।
तदोमिति शिवं देवमर्धमात्रापरं परम्॥ २२

मृणालतन्तुभागैकशतभागे व्यवस्थितम्।
यमी यमविशुद्धात्मा नियम्यैवं हृदीश्वरम्॥ २३

महादेव अर्धनारीश्वरके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। तब उन्होंने जगद्गुरु ब्रह्मासहित सब कुछ दग्ध कर दिया॥ ६—१०॥

इसके बाद शिवजीने समग्र जगत्की वृद्धिके लिये योगमार्गके द्वारा कल्याणमयी अर्धमात्रास्वरूपिणी अपनी अर्धांगिनी परमेश्वरीके साथ संसर्ग किया। विश्वेश्वर विश्वात्मा परमेश्वर शिवने उन परमेश्वरीसे विष्णु, ब्रह्मा और पाशुपत अस्त्रका सृजन किया। इसीलिये ब्रह्मा तथा विष्णुको महादेवीके अंशसे उत्पन्न कहा गया है और उन ब्रह्माको अण्डज, पद्मज और भवांगभव भी कहा जाता है। मैंने आपसे यह सम्पूर्ण पुरातन इतिहास कह दिया। जबतक ब्रह्माका परार्ध रहता है, तबतकके उनके ऐश्वर्य तथा तमोगुणसे प्रादुर्भूत उनके वैराग्यके विषयमें मैं संक्षेपमें कहूँगा॥ ११—१४½॥

भगवान् नारायणने भी अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त करके अपने उसी अंगसे सम्पूर्ण चराचरकी सृष्टि की। तब उन्होंने ब्रह्माका सृजन किया और पितामह ब्रह्माने रुद्रका सृजन किया। हे मुने! दूसरे कल्पमें रुद्रने विष्णु, ब्रह्मा और ईश्वर (शिव)-को उत्पन्न किया। हे मुने! तदनन्तर दूसरे कल्पमें हरि (विष्णु)-ने ब्रह्माका सृजन किया। पुनः [दूसरे कल्पमें] ब्रह्माने नारायणको और फिर भव (रुद्र)-ने ब्रह्माकी सृष्टि की। तत्पश्चात् अजन्मा भगवान् ब्रह्मा 'यह संसार दुःखरूप है'—ऐसा सोचकर सृष्टिकार्य छोड़ करके अपनेको आत्मतत्त्वमें अवस्थितकर प्राण-संचारको निरुद्ध करके पाषाणकी भाँति अचल होकर दस हजार वर्षोंतक समाधिमें स्थित रहे॥ १५—१९½॥

तब उनके हृदयमें जो नीचेकी ओर मुखवाला सुन्दर कमल विराजमान था, वह पूरक प्राणायामद्वारा वायुपूरित होकर विकसित हो उठा और पुनः कुम्भक प्राणायामद्वारा वायुनिरुद्ध होकर ऊर्ध्वमुखवाला हो गया। तब उन्होंने परमेश्वरको उसी कमलकी कर्णिकाके मध्यमें स्थापित कर दिया। तदनन्तर आत्मनियन्त्रण करनेवाले, संयमके द्वारा विशुद्ध आत्मावाले तथा पूजनके योग्य ब्रह्माने ओंकार शब्दसे सम्बन्ध रखनेवाली अर्धमात्रासे परे जो नाद है, उससे भी परे ब्रह्मसंज्ञक नादस्वरूप, मृणालतन्तुके शतभागके एक भागमें अवस्थित परम सूक्ष्म पीतवर्ण अग्निशिखा-

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

यमपुष्पादिभिः पूज्यं याज्यो ह्ययजदव्ययम्।
तस्य हृत्कमलस्थस्य नियोगाच्चांशजो विभुः॥ २४

ललाटमस्य निर्भिद्य प्रादुरासीत्पितामहात्।
लोहितोऽभूत्स्वयं नीलः शिवस्य हृदयोद्भवः॥ २५

वह्नेश्चैव तु संयोगात्प्रकृत्या पुरुषः प्रभुः।
नीलश्च लोहितश्चैव यतः कालाकृतिः पुमान्॥ २६

नीललोहित इत्युक्तस्तेन देवेन वै प्रभुः।
ब्रह्मणा भगवान् कालः प्रीतात्मा चाभवद्विभुः॥ २७

सुप्रीतमनसं देवं तुष्टाव च पितामहः।
नामाष्टकेन विश्वात्मा विश्वात्मानं महामुने॥ २८

पितामह उवाच

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे।
नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयाय ते॥ २९

शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः।
ईशाय वायवे तुभ्यं संस्पर्शाय नमो नमः॥ ३०

पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे।
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः॥ ३१

महादेवाय सोमाय अमृताय नमोऽस्तु ते।
उग्राय यजमानाय नमस्ते कर्मयोगिने॥ ३२

यः पठेच्छृणुयाद्वापि पैतामहमिमं स्तवम्।
रुद्राय कथितं विप्रान् श्रावयेद्वा समाहितः॥ ३३

अष्टमूर्तेस्तु सायुज्यं वर्षादेकादवाप्नुयात्।
एवं स्तुत्वा महादेवमवैक्षत पितामहः॥ ३४

तदाष्टधा महादेवः समातिष्ठत्समन्ततः।
तदा प्रकाशते भानुः कृष्णवर्त्मा निशाकरः॥ ३५

क्षितिर्वायुः पुमानम्भः सुषिरं सर्वगं तथा।
तदाप्रभृति तं प्राहुरष्टमूर्तिरितीश्वरम्॥ ३६

अष्टमूर्तेः प्रसादेन विरञ्चिश्चासृजत्पुनः।
सृष्ट्वैतदखिलं ब्रह्मा पुनः कल्पान्तरे प्रभुः॥ ३७

सहस्रयुगपर्यन्तं संसुप्ते च चराचरे।
प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तत उग्रं तपो महत्॥ ३८

सदृश, यम-नियम आदि योगांग पुष्पोंके द्वारा पूजनीय तथा अविनाशी ईश्वरको अपने हृदयमें ध्यानावस्थित करके उनकी पूजा की॥ २०—२३$^{१}/_{२}$॥

तब हृदयकमलमें विराजमान रहनेवाले उन ब्रह्माके अंशसे जायमान सर्वव्यापी रुद्र उनके ललाटका भेदन करके पितामहसे उत्पन्न हुए। शिवके हृदयसे प्रादुर्भूत पुरुष रुद्र स्वभावतः स्वयं नील होते हुए भी अग्निके संयोगके कारण लोहित (रक्त) वर्णके हो गये। चूँकि वे कालाकृति पुरुष रुद्र नील और लोहित वर्णके हुए, अतः वे ब्रह्मदेव प्रभु रुद्रको 'नीललोहित'—ऐसा कहने लगे। कालरूप भगवान् रुद्र ब्रह्माजीसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे महामुने! तदनन्तर विश्वात्मा पितामह ब्रह्मा नामाष्टक स्तोत्रसे प्रसन्नचित्त विश्वात्मा भगवान् रुद्रकी स्तुति करने लगे॥ २४—२८॥

पितामह बोले—हे भगवन्! हे रुद्र! हे भास्कर! अमित तेजस्वी आपको नमस्कार है; अम्बुमय तथा रस-स्वरूप आप भगवान् भवको नमस्कार है। गन्धमय पृथ्वीरूप शर्वको नित्य नमस्कार है; स्पर्शगुणयुक्त वायुरूप ईशको बार-बार नमस्कार है। अमित तेजस्वी अग्नि-रूप पशुपतिको नमस्कार है। शब्दतन्मात्रावाले व्योमरूप आप भीमको नमस्कार है। आप अमृतमय चन्द्रस्वरूप महादेवको नमस्कार है; आप कर्मयोगी यजमानरूप उग्रको नमस्कार है। जो मनुष्य समाहितचित्त होकर पितामह ब्रह्माके द्वारा रुद्रके लिये कहे गये इस स्तोत्रका पाठ करता है या श्रवण करता है अथवा विप्रोंको सुनाता है, वह एक वर्षमें ही अष्टमूर्ति भगवान् रुद्रका सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ २९—३३$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार स्तुति करके जब पितामहने महादेवकी ओर देखा, तब वे सभी ओर आठ प्रकारसे विभक्त होकर सुशोभित होने लगे। उसी समयसे सूर्य, चन्द्र, अग्नि प्रकाश करने लगे और पृथ्वी, वायु, यजमानरूप पुरुष, जल तथा सर्वव्यापी गगन अपने-अपने गुणधर्मसे समन्वित हुए। उसी समयसे लोग उन ईश्वरको 'अष्टमूर्ति' इस नामसे कहने लगे॥ ३४—३६॥

उन्हीं अष्टमूर्तिके अनुग्रहसे ब्रह्माजी पुनः सृष्टि करने लगे। इस सम्पूर्ण जगत्का सृजन करके पुनः दूसरे कल्पमें हजार युगपर्यन्त चराचर संसारके सुप्त रहनेपर

तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्तत।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो व्यजायत॥ ३९

क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः।
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूताः प्रेतास्तदाभवन्॥ ४०

सर्वांस्तानग्रजान् दृष्ट्वा भूतप्रेतनिशाचरान्।
अनिन्दत तदा देवो ब्रह्मात्मानमजो विभुः॥ ४१

जहौ प्राणांश्च भगवान् क्रोधाविष्टः प्रजापतिः।
ततः प्राणमयो रुद्रः प्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात्॥ ४२

अर्धनारीश्वरो भूत्वा बालार्कसदृशद्युतिः।
तदैकादशधात्मानं प्रविभज्य व्यवस्थितः॥ ४३

अर्धेनांशेन सर्वात्मा ससर्जासौ शिवामुमाम्।
सा चासृजत्तदा लक्ष्मीं दुर्गां श्रेष्ठां सरस्वतीम्॥ ४४

वामां रौद्रीं महामायां वैष्णवीं वारिजेक्षणाम्।
कलां विकरिणीं चैव कालीं कमलवासिनीम्॥ ४५

बलविकरिणीं देवीं बलप्रमथिनीं तथा।
सर्वभूतस्य दमनीं ससृजे च मनोन्मनीम्॥ ४६

तथान्या बहवः सृष्टास्तया नार्यः सहस्रशः।
रुद्रैश्चैव महादेवस्ताभिस्त्रिभुवनेश्वरः॥ ४७

सर्वात्मनश्च तस्याग्रे ह्यतिष्ठत्परमेश्वरः।
मृतस्य तस्य देवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ४८

घृणी ददौ पुनः प्राणान् ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः।
ब्रह्मणः प्रददौ प्राणानात्मस्थांस्तु तदा प्रभुः॥ ४९

प्रहृष्टोऽभूत्ततो रुद्रः किञ्चित्प्रत्यागतासवम्।
अभ्यभाषत देवेशो ब्रह्माणं परमं वचः॥ ५०

मा भैर्देव महाभाग विरिञ्च जगतां गुरो।
मयेह स्थापिताः प्राणास्तस्मादुत्तिष्ठ वै प्रभो॥ ५१

भगवान् ब्रह्माने प्रजाओंकी सृष्टि करनेके विचारसे अत्यन्त उग्र तप आरम्भ कर दिया॥ ३७-३८॥

इस प्रकार तप करते हुए उन ब्रह्माको जब कोई सफलता प्राप्त न हुई; तब दीर्घकालतक तप करनेसे उत्पन्न दुःखके कारण उन्हें क्रोध आ गया। तब क्रोधाविष्ट उन ब्रह्माके नेत्रोंसे अश्रुबिन्दु गिरने लगे। तदनन्तर उन अश्रुबिन्दुओंसे भूत-प्रेत प्रादुर्भूत हो गये॥ ३९-४०॥

तब उन सभी भूत-प्रेत-निशाचरोंको पहले उत्पन्न हुआ देखकर अजन्मा तथा परम ऐश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा अपनेको कोसने लगे। इससे उन भगवान् पितामहने कोपाविष्ट होकर अपने प्राण त्याग दिये॥ ४१ १/२॥

तत्पश्चात् उन प्रभुके मुखसे उदयकालीन सूर्यके समान कान्तिवाले अर्धनारीश्वरके रूपमें होकर प्राणमय रुद्र प्रकट हुए। तब वे अपनेको ग्यारह स्वरूपोंमें* विभक्त करके व्यवस्थित हो गये। उन सर्वात्मा रुद्रने अपने आधे अंशसे कल्याणकारिणी उमाको आविर्भूत किया॥ ४२-४३ १/२॥

तत्पश्चात् उमाने लक्ष्मी, दुर्गा तथा श्रेष्ठ सरस्वतीका सृजन किया; पुनः उन्होंने वामा, रौद्री, महामाया, कमलके समान नेत्रोंवाली वैष्णवी, कल-विकरिणी, काली, कमल-वासिनी, बलविकरिणी, देवी बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी और मनोन्मनीका सृजन किया। इसी प्रकार उन्होंने अन्य बहुत-सी हजारों नारियोंकी सृष्टि की॥ ४४—४६ १/२॥

तब तीनों लोकोंके स्वामी परमेश्वर महादेव समस्त रुद्रों तथा उन देवियोंके साथ उन सर्वात्मा ब्रह्माके समक्ष खड़े हो गये। तदनन्तर ब्रह्मपुत्र दयालु महेश्वर शिवने उन मरे हुए परमेष्ठी भगवान् ब्रह्माको पुनः प्राण प्रदान कर दिये। जब प्रभु शिवने ब्रह्मामें आत्मस्थित प्राणोंका संचार किया, तब उन्हें कुछ-कुछ चेतनायुक्त देखकर भगवान् रुद्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसके बाद देवेश्वर शिवने ब्रह्माजीसे यह श्रेष्ठ वचन कहा—हे देव! डरिये मत! हे महाभाग! हे विरिञ्च! हे जगद्गुरो! मैंने आपमें प्राण स्थापित कर दिये हैं; अतः हे प्रभो! अब उठिये॥ ४७—५१॥

* भगवान् रुद्रके ग्यारह नामोंका वर्णन विभिन्न पुराणोंमें आया है, किंतु नामोंमें अन्तर है, लिङ्गपुराण पूर्वभाग अ० ६३में ११ रुद्रोंके नाम इस प्रकार बताये गये हैं—अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, भैरव, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी तथा अपराजित।

श्रुत्वा वचस्ततस्तस्य स्वप्नभूतं मनोगतम्।
पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रैः फुल्लाम्बुजप्रभैः॥ ५२
ततः प्रत्यागतप्राणः समुदैक्षन्महेश्वरम्।
स उद्वीक्ष्य चिरं कालं स्निग्धगम्भीरया गिरा॥ ५३
उवाच भगवान् ब्रह्मा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
भो भो वद महाभाग आनन्दयसि मे मनः॥ ५४
को भवानष्टमूर्तिर्वै स्थित एकादशात्मकः।

तब उनका स्वप्नभूत मनोगत वचन सुनकर पितामह प्रसन्नचित्त हो गये। तदनन्तर लब्धप्राण ब्रह्माजीने अपने खिले हुए कमलके समान नेत्रोंसे महेश्वरको देखा। बहुत समयतक उन्हें देखते रहनेके पश्चात् भगवान् ब्रह्माने उठ करके दोनों हाथ जोड़कर स्नेहयुक्त गम्भीर वाणीमें उनसे कहा—हे महाभाग! आप मेरे मनको आनन्दित कर रहे हैं; एकादश रूपोंमें प्रतिष्ठित अष्टमूर्ति आप कौन हैं?॥ ५२—५४½॥

इन्द्र उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा व्याजहार महेश्वरः॥ ५५
स्पृशन् कराभ्यां ब्रह्माणं सुखाभ्यां स सुरारिहा।

इन्द्र बोले—उनका वचन सुनकर देवशत्रुओंका संहार करनेवाले महेश्वर अपने सुखप्रद हाथोंसे ब्रह्माजीका स्पर्श करते हुए उनसे कहने लगे॥ ५५½॥

श्रीशङ्कर उवाच

मां विद्धि परमात्मानमेनां मायामजामिति॥ ५६
एते वै संस्थिता रुद्रास्त्वां रक्षितुमिहागताः।
ततः प्रणम्य तं ब्रह्मा देवदेवमुवाच ह॥ ५७
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा।
भगवन् देवदेवेश दुःखैराकुलितो ह्यहम्॥ ५८
संसारान्मोक्तुमीशान मामिहार्हसि शङ्कर।

श्रीशंकर बोले—मुझे परमात्मा तथा इन्हें अजन्मा माया समझिये और सामने खड़े ये रुद्र आपकी रक्षा करनेके लिये यहाँ आये हैं॥ ५६½॥

तदनन्तर उन देवाधिदेवको प्रणाम करके ब्रह्माने हाथ जोड़कर हर्षपूर्ण गद्गद वाणीमें कहा—हे भगवन्! हे देवदेवेश! मैं दुःखोंसे अत्यन्त व्याकुल हूँ। हे ईशान! हे शंकर! मुझे इस संसारसे मुक्त करनेमें आप समर्थ हैं॥ ५७-५८½॥

ततः प्रहस्य भगवान् पितामहमुमापतिः॥ ५९
तदा रुद्रैर्जगन्नाथस्तया चान्तर्दधे विभुः।

तत्पश्चात् पितामह ब्रह्माकी इस बातपर हँसकर सर्वव्यापी तथा जगत्के स्वामी उमापति भगवान् शिव रुद्रों एवं उन भगवती उमाके साथ अन्तर्धान हो गये॥ ५९½॥

इन्द्र उवाच

तस्माच्छिलाद लोकेषु दुर्लभो वै त्वयोनिजः॥ ६०
मृत्युहीनः पुमान् विद्धि समृत्युः पद्मजोऽपि सः।
किन्तु देवेश्वरो रुद्रः प्रसीदति यदीश्वरः॥ ६१
न दुर्लभो मृत्युहीनस्तव पुत्रो ह्ययोनिजः।
मया च विष्णुना चैव ब्रह्मणा च महात्मना॥ ६२
अयोनिजं मृत्युहीनमसमर्थं निवेदितुम्।

इन्द्र बोले—हे शिलाद! अतः समस्त लोकोंमें अयोनिज तथा मृत्युरहित पुरुष सर्वथा दुर्लभ है। [यहाँतक कि] वे पद्मयोनि ब्रह्मा भी मृत्युयुक्त हैं—ऐसा जानिये। किंतु यदि देवेश्वर भगवान् रुद्र प्रसन्न हो जायँ, तो आपके लिये मृत्युरहित तथा अयोनिज पुत्र दुर्लभ नहीं है। मैं, विष्णु एवं महात्मा ब्रह्मा भी मृत्युहीन तथा अयोनिज पुत्र देनेमें असमर्थ हैं॥ ६०—६२½॥

शैलादिरुवाच

एवं व्याहृत्य विप्रेन्द्रमनुगृह्य च तं घृणी॥ ६३
देवैर्वृतो ययौ देवः सितेनेभेन वै प्रभुः॥ ६४

शैलादि बोले—इस प्रकार विप्रेन्द्रसे कहकर तथा उनपर अनुग्रह करके वे दयालु इन्द्र देवताओंके साथ श्वेतवर्णवाले ऐरावतपर आरूढ़ होकर चले गये॥ ६३-६४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे इन्द्रवाक्यं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'इन्द्रवाक्य' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

शिलादद्वारा तप करनेसे भगवान् महेश्वरका नन्दी नामसे उनके पुत्रके रूपमें प्रकट होना और शिलादद्वारा नन्दिकेश्वर शिवकी स्तुति

सूत उवाच

गते पुण्ये च वरदे सहस्राक्षे शिलाशनः।
आराधयन् महादेवं तपसातोषयद्भवम्॥ १

अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य द्विजस्य तु।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं क्षणमिवाद्भुतम्॥ २

वल्मीकेनावृताङ्गश्च लक्ष्यः कीटगणैर्मुनिः।
वज्रसूचीमुखैश्चान्यै रक्तकीटैश्च सर्वतः॥ ३

निर्मांसरुधिरत्वग्वै निर्लेपः कुड्यवत्स्थितः।
अस्थिशेषोऽभवत्पश्चात्तममन्यत शङ्करः॥ ४

यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण च स्मरारिणा।
तदैव मुनिशार्दूलश्चोत्ससर्ज क्लमं द्विजः॥ ५

तपतस्तस्य तपसा प्रभुस्तुष्टोऽथ शङ्करः।
तुष्टस्तवेत्यथोवाच सगणश्चोमया सह॥ ६

तपसानेन किं कार्यं भवतस्ते महामते।
ददामि पुत्रं सर्वज्ञं सर्वशास्त्रार्थपारगम्॥ ७

ततः प्रणम्य देवेशं स्तुत्वोवाच शिलाशनः।
हर्षगद्गदया वाचा सोमं सोमविभूषणम्॥ ८

शिलाद उवाच

भगवन् देवदेवेश त्रिपुरार्दन शङ्कर।
अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सत्तम॥ ९

सूत उवाच

पूर्वमाराधितः प्राह तपसा परमेश्वरः।
शिलादं ब्रह्मणा रुद्रः प्रीत्या परमया पुनः॥ १०

सूतजी बोले—वर प्रदान करनेवाले पुण्यशाली सहस्रनेत्र इन्द्रके चले जानेपर वे शिलाद महादेव शिवकी आराधना करते हुए तपके द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करने लगे॥ १॥

इस प्रकार निरन्तर तपस्यामें संलग्न उन द्विज शिलादके एक हजार दिव्य वर्ष एक क्षणकी भाँति अद्भुतरूपसे व्यतीत हो गये॥ २॥

उनका शरीर वल्मीक (बाँबी)-से ढँक गया, वे मुनि वज्रसूची (वज्र तथा सूईके समान) मुखवाले तथा अन्य रक्तभोजी कीटोंसे लिपटे शरीरवाले परिलक्षित हो रहे थे, वे मांस-रुधिर-त्वचासे विहीन होकर अस्थिमात्र शरीरवाले हो गये थे; फिर भी वे निर्लिप्त भावसे भित्तिकी भाँति निश्चल खड़े थे। तब उन्हें [इस रूपमें तप करते हुए] भगवान् शंकरने जान लिया। [वहाँ प्रकट होकर] कामरिपु शिवने ज्यों ही अपने हाथसे मुनिका स्पर्श किया, त्यों ही मुनिश्रेष्ठ द्विज शिलादका [तपस्याजनित] क्लेश समाप्त हो गया॥ ३—५॥

तदनन्तर तपस्यारत उन मुनिके तपसे सन्तुष्ट होकर भगवान् शंकरने उनसे कहा—मैं अपने गणों तथा उमासहित आपपर प्रसन्न हूँ। हे महामते! इस तपस्यासे आपका क्या प्रयोजन! मैं आपको सर्वज्ञ तथा समस्त शास्त्रोंके रहस्योंका पारगामी विद्वान् पुत्र प्रदान करता हूँ॥ ६-७॥

तब देवेश शिवको प्रणाम करके और उनकी स्तुति करके शिलादमुनि हर्षपूर्ण गद्गद वाणीमें चन्द्रभूषण शिवसे कहने लगे॥ ८॥

शिलाद बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे त्रिपुरार्दन! हे शंकर! हे सत्तम! मैं अयोनिज तथा मृत्युहीन पुत्र चाहता हूँ॥ ९॥

सूतजी बोले—पूर्वमें ब्रह्माजीके द्वारा तपस्यासे आराधित परमेश्वर रुद्रने परम प्रसन्नताके साथ मुनि शिलादसे कहा॥ १०॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

श्रीदेवदेव उवाच

पूर्वमाराधितो विप्र ब्रह्मणाहं तपोधन।
तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमैः॥ ११

तव पुत्रो भविष्यामि नन्दिनाम्ना त्वयोनिजः।
पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतां मुने॥ १२

एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्य प्रणिपत्य स्थितं घृणी।
सोमः सोमोपमः प्रीतस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १३

लब्धपुत्रः पिता रुद्रात्प्रीतो मम महामुने।
यज्ञाङ्गणं महत्प्राप्य यज्ञार्थं यज्ञवित्तमः॥ १४

तदङ्गणादहं शम्भोस्तनुजस्तस्य चाज्ञया।
सञ्जातः पूर्वमेवाहं युगान्ताग्निसमप्रभः॥ १५

ववर्षुस्तदा पुष्करावर्तकाद्या
जगुः खेचराः किन्नराः सिद्धसाध्याः।
शिलादात्मजत्वं गते मय्युपेन्द्रः
ससर्जाथ वृष्टिं सुपुष्पौघमिश्राम्॥ १६

मां दृष्ट्वा कालसूर्याभं जटामुकुटधारिणम्।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं बालं शूलटङ्कगदाधरम्॥ १७

वज्रिणं वज्रदंष्ट्रं च वज्रिणाराधितं शिशुम्।
वज्रकुण्डलिनं घोरं नीरदोपमनिःस्वनम्॥ १८

ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुः सर्वे सुरेन्द्रश्च मुनीश्वराः।
नेदुः समन्ततः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ १९

ऋषयो मुनिशार्दूल ऋग्यजुःसामसम्भवैः।
मन्त्रैर्माहेश्वरैः स्तुत्वा सम्प्रणेमुर्मुदान्विताः॥ २०

ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च शक्रः साक्षाच्छिवाम्बिका।
जीवश्चेन्दुर्महातेजा भास्करः पवनोऽनलः॥ २१

ईशानो निर्ऋतिर्यक्षो यमो वरुण एव च।
विश्वेदेवास्तथा रुद्रा वसवश्च महाबलाः॥ २२

श्रीदेवदेव शिव बोले—हे विप्र! हे तपोधन! मुनियों तथा श्रेष्ठ देवताओंसहित ब्रह्माजीने अवतार ग्रहण करनेके लिये पूर्वकालमें तपस्याके द्वारा मेरी आराधना की थी। अतः मैं नन्दी नामसे तुम्हारे अयोनिज पुत्रके रूपमें जन्म लूँगा। हे मुने! आप मुझ जगत्पिताके भी पिता होंगे॥ ११-१२॥

ऐसा कहकर सम्मुख स्थित मुनिकी ओर प्रेमपूर्वक देखकर उन्हें प्रणाम करके अमृततुल्य भगवान् शिव उमासहित वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १३॥

हे महामुने! भगवान् रुद्रसे पुत्रप्राप्तिका वरदान पाकर यज्ञविदोंमें श्रेष्ठ मेरे पिताजी यज्ञ करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक विशाल यज्ञशालामें पहुँचे; तब मैं पूर्व ही भगवान् रुद्रकी आज्ञासे उनके पुत्रके रूपमें उस अंगणमें प्रादुर्भूत हो गया, उस समय मैं प्रलयाग्निके समान प्रभासे समन्वित था॥ १४-१५॥

उस समय शिलादमुनिके पुत्ररूपमें मेरे आविर्भूत होनेपर पुष्कर, आवर्तक आदि मेघ बरसने लगे; किन्नर, सिद्ध, साध्य आदि गगनचारी देवतागण गान करने लगे और इन्द्र पुष्पराशिमिश्रित वृष्टि करने लगे॥ १६॥

उस समय कालसूर्यके समान आभावाले, जटा-मुकुट धारण किये, तीन नेत्रोंसे युक्त, चार भुजाओंवाले, हाथोंमें शूल-टंक-गदा धारण करनेवाले, वज्र लिये हुए, हीरेके सदृश उज्ज्वल दाँतोंवाले, इन्द्रके द्वारा आराधित, कानोंमें हीरेका कुण्डल धारण किये हुए, घोर विग्रहवाले तथा मेघसदृश गम्भीर ध्वनिसे सम्पन्न मुझ बाल-शिशुको देखकर ब्रह्मा आदि, इन्द्र तथा सभी मुनीश्वर स्तुति करने लगे और सभी अप्सराएँ चारों ओरसे वाद्ययन्त्र बजाने लगीं तथा नृत्य करने लगीं॥ १७—१९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके माहेश्वर मन्त्रोंके द्वारा आनन्दपूर्वक मेरी स्तुति करके ऋषियोंने मुझे प्रणाम किया॥ २०॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, साक्षात् अम्बिका शिवा, देवगुरु बृहस्पति, चन्द्रमा, महातेजस्वी सूर्य, वायु, अग्नि, ईशान, निर्ऋति, यक्ष, यम, वरुण, विश्वेदेव,

लक्ष्मीः साक्षाच्छची ज्येष्ठा देवी चैव सरस्वती।
अदितिश्च दितिश्चैव श्रद्धा लज्जा धृतिस्तथा॥ २३

नन्दा भद्रा च सुरभी सुशीला सुमनास्तथा।
वृषेन्द्रश्च महातेजा धर्मो धर्मात्मजस्तथा॥ २४

आवृत्य मां तथालिङ्ग्य तुष्टुवुर्मुनिसत्तम।
शिलादोऽपि मुनिर्दृष्ट्वा पिता मे तादृशं तदा॥ २५

प्रीत्या प्रणम्य पुण्यात्मा तुष्टावेष्टप्रदं सुतम्।

शिलाद उवाच

भगवन् देवदेवेश त्रियम्बक ममाव्यय॥ २६

पुत्रोऽसि जगतां यस्मात्त्राता दुःखाद्धि किं पुनः।
रक्षको जगतां यस्मात्पिता मे पुत्र सर्वग॥ २७

अयोनिज नमस्तुभ्यं जगद्योने पितामह।
पिता पुत्र महेशान जगतां च जगद्गुरो॥ २८

वत्स वत्स महाभाग पाहि मां परमेश्वर।
त्वयाहं नन्दितो यस्मान्नन्दी नाम्ना सुरेश्वर॥ २९

तस्मान्नन्दय मां नन्दिन्नमामि जगदीश्वरम्।
प्रसीद पितरौ मेऽद्य रुद्रलोकं गतौ विभो॥ ३०

पितामहाश्च भो नन्दिन्नवतीर्णे महेश्वरे।
ममैव सफलं लोके जन्म वै जगतां प्रभो॥ ३१

अवतीर्णे सुते नन्दिन् रक्षार्थं मह्यमीश्वर।
तुभ्यं नमः सुरेशान नन्दीश्वर नमोऽस्तु ते॥ ३२

पुत्र पाहि महाबाहो देवदेव जगद्गुरो।
पुत्रत्वमेव नन्दीश मत्वा यत्कीर्तितं मया॥ ३३

त्वया तत्क्षम्यतां वत्स स्तवस्तव्य सुरासुरैः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि मम पुत्र प्रभाषितम्॥ ३४

श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या मया सार्धं स मोदते।
एवं स्तुत्वा सुतं बालं प्रणम्य बहुमानतः॥ ३५

सभी रुद्र, महाबली वसुगण, साक्षात् लक्ष्मी, इन्द्राणी, देवी ज्येष्ठा, सरस्वती, अदिति, दिति, श्रद्धा, लज्जा, धृति, नन्दा, भद्रा, सुरभी, सुशीला, सुमना, वृषेन्द्र, महातेजस्वी धर्म तथा धर्मपुत्र मुझे घेरकर मेरा आलिङ्गन करके मेरी स्तुति करने लगे। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय पुण्य आत्मावाले मेरे पिता मुनि शिलाद भी उस प्रकारके रूपवाले इष्टप्रद पुत्रको देखकर प्रेमपूर्वक प्रणाम करके मेरी स्तुति करने लगे॥ २१—२५½॥

शिलाद बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे त्रियम्बक! हे अव्यय! आप मेरे पुत्र हैं और जगत्के रक्षक हैं, अतः अब मुझे दुःख किस बातका! हे पुत्र! हे सर्वग (सर्वव्यापी)! आप जगत्के रक्षक हैं, अतः मेरे भी पिता हैं। हे अयोनिज! आपको नमस्कार है। हे जगद्योने! हे पितामह! हे पुत्र! हे महेशान! हे जगद्गुरो! आप जगत्के पिता हैं। हे वत्स! हे वत्स! हे महाभाग! हे परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये। हे सुरेश्वर! आपने मुझे आनन्दित किया है, अतः आप 'नन्दी' नामसे विख्यात होंगे; हे नन्दिन्! मुझे आनन्द प्रदान कीजिये, मैं आप जगदीश्वरको प्रणाम करता हूँ॥ २६—२९½॥

हे विभो! आप प्रसन्न होइये। हे नन्दिन्! आप महेश्वरके [मेरे यहाँ] अवतीर्ण होनेपर आज मेरे माता-पिता रुद्रलोक चले गये; पितामह, प्रपितामह आदि भी रुद्रलोक चले गये। हे जगत्प्रभो! मेरे रक्षार्थ पुत्र-रूपमें आपके अवतार लेनेपर आज संसारमें मेरा जन्म सफल हो गया। हे सुरेशान! आपको नमस्कार है। हे नन्दीश्वर! आपको नमस्कार है। हे पुत्र! हे महाबाहो! हे देवदेव! हे जगद्गुरो! मेरी रक्षा कीजिये। हे नन्दीश! देवताओं तथा दानवोंके द्वारा स्तुतियोंसे स्तवनके योग्य हे वत्स! आपके प्रति पुत्रभाव समझकर मैंने जो भी कहा है, उसे आप क्षमा करें। हे पुत्र! जो मेरेद्वारा कहे गये इस स्तवनका भक्तिपूर्वक पाठ या श्रवण करता है अथवा द्विजोंको इसे सुनाता है, वह मेरे साथ आनन्द प्राप्त करता है॥ ३०—३४½॥

इस प्रकार बालरूप पुत्र नन्दीकी स्तुति करके अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें प्रणामकर उत्तम व्रत धारण

मुनीश्वरांश्च सम्प्रेक्ष्य शिलादोवाच सुव्रतः।
पश्यध्वं मुनयः सर्वे महाभाग्यं ममाव्ययः॥ ३६

नन्दी यज्ञाङ्गणे देवश्चावतीर्णो यतः प्रभुः।
मत्समः कः पुमाँल्लोके देवो वा दानवोऽपि वा॥ ३७

एष नन्दी यतो जातो यज्ञभूमौ हिताय मे॥ ३८

करनेवाले मुनि शिलाद मुनीश्वरोंकी ओर देखकर बोले—हे मुनिगण! आप सभी लोग मेरे महान् अक्षुण्ण भाग्यको देख लें, जो कि मेरे यज्ञांगणमें अविनाशी भगवान् महेश्वर [मेरे पुत्र होकर] नन्दीके रूपमें अवतरित हुए हैं। सम्पूर्ण जगत्में कौन मनुष्य, देवता अथवा दानव मेरे समान है; क्योंकि मेरे हितार्थ ये नन्दी मेरी यज्ञभूमिमें प्रादुर्भूत हुए हैं॥ ३५—३८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नन्दिकेश्वरोत्पत्तिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'नन्दिकेश्वरोत्पत्ति' नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

शिलादद्वारा पुत्र नन्दिकेश्वरको वेदादिकी शिक्षा प्रदान करना, ऋषियोंद्वारा नन्दिकेश्वरकी आयु अल्प बतानेपर शिलादका दुःखी होना तथा नन्दिकेश्वरद्वारा त्र्यम्बकमन्त्रका जप एवं महेश्वर-पार्वतीद्वारा उन्हें अपने पुत्ररूपमें अमर होनेका वरदान देना

नन्दिकेश्वर उवाच

मया सह पिता हृष्टः प्रणम्य च महेश्वरम्।
उटजं स्वं जगामाशु निधिं लब्ध्वेव निर्धनः॥ १

यदागतोऽहमुटजं शिलादस्य महामुने।
तदा वै दैविकं रूपं त्यक्त्वा मानुष्यमास्थितः॥ २

नष्टा चैव स्मृतिर्दिव्या येन केनापि कारणात्।
मानुष्यमास्थितं दृष्ट्वा पिता मे लोकपूजितः॥ ३

विललापातिदुःखार्तः स्वजनैश्च समावृतः।
जातकर्मादिकाश्चैव चकार मम सर्ववित्॥ ४

शालङ्कायनपुत्रो वै शिलादः पुत्रवत्सलः।
उपदिष्टा हि तेनैव ऋक्शाखा यजुषस्तथा॥ ५

सामशाखासहस्रं च साङ्गोपाङ्गं महामुने।
आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं चाश्वलक्षणम्॥ ६

हस्तिनां चरितं चैव नराणां चैव लक्षणम्।
सम्पूर्णे सप्तमे वर्षे ततोऽथ मुनिसत्तमौ॥ ७

मित्रावरुणनामानौ तपोयोगबलान्वितौ।
तस्याश्रमं गतौ दिव्यौ द्रष्टुं मां चाज्ञया विभोः॥ ८

नन्दिकेश्वर बोले—महेश्वरको प्रणाम करके पिताजी मुझको साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी कुटीमें लौट गये, जैसे निर्धन व्यक्ति निधि पाकर हर्षित हो जाता है, वैसे ही वे उस समय हर्षयुक्त थे॥ १॥

हे महामुने! जब मैं शिलादकी कुटीमें गया, तब अपना दैविक (दिव्य) रूप छोड़कर मैं मनुष्यरूपमें हो गया॥ २॥

[उस समय] किसी अज्ञात कारणवश मेरी दिव्य स्मृति नष्ट हो गयी। लोकपूजित मेरे पिताजीने मुझे मानवरूपमें देखकर अपने बन्धुओंसहित दुःखसे व्याकुल होकर अत्यधिक विलाप किया। पुत्रवत्सल तथा सर्वज्ञ शालंकायनपुत्र शिलादने मेरे जातकर्म आदि संस्कार किये॥ ३-४½॥

हे महामुने! उन्होंने ही मुझको ऋग्वेद तथा यजुर्वेदकी शाखाओं और सामवेदकी हजार शाखाओंका सांगोपांग उपदेश किया। साथ ही उन्होंने मुझे आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्वविद्या, अश्वलक्षण, हाथियोंके लक्षण, मनुष्योंके लक्षण आदिकी शिक्षा प्रदान की॥ ५-६½॥

मेरा सातवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर परमेश्वरकी आज्ञासे मुझे देखनेके लिये तप तथा योगशक्तिसे सम्पन्न मित्र-

ऊचतुश्च महात्मानौ मां निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः।
तात नन्द्ययमल्पायुः सर्वशास्त्रार्थपारगः॥ ९

न दृष्टमेवमाश्चर्यमायुर्वर्षादतः परम्।
इत्युक्तवति विप्रेन्द्रः शिलादः पुत्रवत्सलः॥ १०

समालिङ्ग्य च दुःखार्तो रुरोदातीव विस्वरम्।
हा पुत्र पुत्र पुत्रेति पपात च समन्ततः॥ ११

अहो बलं दैवविधेर्विधातुश्चेति दुःखितः।
तस्य चार्तस्वरं श्रुत्वा तदाश्रमनिवासिनः॥ १२

निपेतुर्विह्वलात्यर्थं रक्षाश्चक्रुश्च मङ्गलम्।
तुष्टुवुश्च महादेवं त्रियम्बकमुमापतिम्॥ १३

हुत्वा त्रियम्बकेनैव मधुनैव च सम्प्लुताम्।
दूर्वामयुतसंख्यातां सर्वद्रव्यसमन्विताम्॥ १४

पिता विगतसंज्ञश्च तथा चैव पितामहः।
विचेष्टश्च ललापासौ मृतवन्निपपात च॥ १५

मृत्योर्भीतोऽहमचिराच्छिरसा चाभिवन्द्य तम्।
मृतवत्पतितं साक्षात्पितरं च पितामहम्॥ १६

प्रदक्षिणीकृत्य च तं रुद्रजाप्यरतोऽभवम्।
हृत्पुण्डरीके सुषिरे ध्यात्वा देवं त्रियम्बकम्॥ १७

त्र्यक्षं दशभुजं शान्तं पञ्चवक्त्रं सदाशिवम्।
सरितश्चान्तरे पुण्ये स्थितं मां परमेश्वरः॥ १८

तुष्टोऽब्रवीन्महादेवः सोमः सोमार्धभूषणः।
वत्स नन्दिन् महाबाहो मृत्योर्भीतिः कुतस्तव॥ १९

मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न संशयः।
वत्सैतत्तव देहं च लौकिकं परमार्थतः॥ २०

वरुण नामक दो दिव्य मुनिश्रेष्ठ उनके (मेरे पिताके) आश्रममें गये॥ ७-८॥

मुझको बार-बार देखकर उन दोनों महात्माओंने कहा—हे तात! यह नन्दी सभी शास्त्रोंके ज्ञानमें पारंगत होगा, किंतु यह अल्प आयुवाला है। ऐसा आश्चर्य तो कभी नहीं देखा गया है, इसकी आयु आजसे मात्र एक वर्षकी है॥ ९ १/२॥

उनके ऐसा कहनेपर पुत्रसे स्नेह रखनेवाले विप्रवर शिलाद मेरा आलिंगन करके दुःखसे व्याकुल होकर करुण स्वरमें अत्यधिक रुदन करने लगे—हा पुत्र! हा पुत्र! हा पुत्र! अहो, दैवविधि तथा विधाताका ऐसा बल! [यह कहकर] वे दुःखित होकर भूमिपर गिर पड़े॥ १०-११ १/२॥

तब उनकी दुःखभरी वाणी सुनकर आश्रमवासी इकट्ठे हो गये। वे [इस अशुभके लिये] विह्वल होकर मंगल रक्षाकृत्य करने लगे। उन्होंने अन्य सभी सामग्रियोंसहित मधुलिप्त दस हजार दूर्वाकी त्रियम्बक मन्त्रसे आहुति देकर उमापति त्रियम्बक महादेवको सन्तुष्ट किया॥ १२—१४॥

पिताजी संज्ञाशून्य हो गये। पितामहने भी बहुत विलाप किया, वे भी चेतनारहित हो मृतकी भाँति पड़े रहे॥ १५॥

मैं मृत्युसे भयभीत हो गया और साक्षात् मृतककी भाँति [भूमिपर पड़े हुए] अपने पिता तथा पितामहको शीघ्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके एवं उनकी प्रदक्षिणा करके रुद्रजपमें संलग्न हो गया। त्रिनेत्र, दस भुजाओंवाले, शान्त, पाँच मुखोंवाले, सदाशिव भगवान् त्रियम्बकका अपने हृदयकमलमें ध्यान करके मैं जप कर रहा था; [तब मैंने देखा कि] नदीके पुण्यतटपर मैं स्थित हूँ और अर्धचन्द्रमाको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले महादेव उमासहित प्रसन्न होकर [प्रकट हुए और] मुझसे कहने लगे—॥ १६—१८ १/२॥

हे वत्स! हे नन्दिन्! हे महाबाहो! तुमको भला मृत्युसे भय कहाँ, मैंने ही उन दोनों विप्रोंको भेजा

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi 1985 Linganapuran_Section_8_1_Back

नास्त्येव दैविकं दृष्टं शिलादेन पुरा तव।
देवैश्च मुनिभिः सिद्धैर्गन्धर्वैर्दानवोत्तमैः॥ २१
पूजितं यत्पुरा वत्स दैविकं नन्दिकेश्वर।
संसारस्य स्वभावोऽयं सुखं दुःखं पुनः पुनः॥ २२
नृणां योनिपरित्यागः सर्वथैव विवेकिनः।
एवमुक्त्वा तु मां साक्षात्सर्वदेवमहेश्वरः॥ २३
कराभ्यां सुशुभाभ्यां च उभाभ्यां परमेश्वरः।
पस्पर्श भगवान् रुद्रः परमार्तिहरो हरः॥ २४
उवाच च महादेवस्तुष्टात्मा वृषभध्वजः।
निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवीं हिमवतः सुताम्॥ २५
समालोक्य च तुष्टात्मा महादेवः सुरेश्वरः।
अजरो जरया त्यक्तो नित्यं दुःखविवर्जितः॥ २६
अक्षयश्चाव्ययश्चैव सपिता ससुहृज्जनः।
ममेष्टो गणपश्चैव मद्वीर्यो मत्पराक्रमः॥ २७
इष्टो मम सदा चैव मम पार्श्वगतः सदा।
मद्बलश्चैव भविता महायोगबलान्वितः॥ २८
एवमुक्त्वा च मां देवो भगवान् सगणस्तदा।
कुशेशयमयीं मालां समुन्मुच्यात्मनस्तदा॥ २९
आबबन्ध महातेजा मम देवो वृषध्वजः।
तयाहं मालया जातः शुभया कण्ठसक्तया॥ ३०

त्र्यक्षो दशभुजश्चैव द्वितीय इव शङ्करः।
तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः॥ ३१
उवाच ब्रूहि किं तेऽद्य ददामि वरमुत्तमम्।
ततो जटाश्रितं वारि गृहीत्वा चातिनिर्मलम्॥ ३२

था, तुम मेरे ही समान हो, इसमें सन्देह नहीं है। हे वत्स! वास्तवमें तुम्हारा यह देह लौकिक नहीं है, यह दिव्य है। हे वत्स! पूर्वमें शिलाद, देवताओं, मुनियों, सिद्धों, गन्धर्वों तथा श्रेष्ठ दानवोंने तुम्हारे जिस शरीरका दर्शन किया था और जिसका पूजन किया था, वह दिव्य था। हे नन्दिकेश्वर! संसारका यह स्वभाव है कि सुख-दुःख बार-बार आते रहते हैं। मनुष्योंके लिये स्त्रीभोगका परित्याग ही सर्वथा उचित है—ऐसा विवेकी पुरुष कहते हैं॥ १९—२२½॥

मुझसे ऐसा कहकर महान् कष्टोंको दूर करनेवाले, सभी देवताओंके महेश्वर, भगवान् रुद्र, हर, वृषभध्वज तथा परमेश्वर महादेवने अपने दोनों अत्यन्त शुभ हाथोंसे मुझे स्पर्श किया और उनका मन प्रसन्न हो गया। तदनन्तर गणेश्वरोंको एवं हिमालयपुत्री पार्वतीको भलीभाँति देखकर वे सुरेश्वर महादेव प्रसन्नचित्त होकर मेरी ओर देखकर कहने लगे—॥ २३—२५½॥

तुम अपने पिता तथा सुहृज्जनोंसहित अजर-अमर, बुढ़ापारहित, दुःखसे हीन, क्षयरहित एवं अव्यय रहोगे। तुम मेरे प्रिय गणेश्वर होओ, तुम मेरे समान तेज तथा पराक्रमवाले होओ। तुम सदा मेरे इष्ट बनकर सदा मेरे समीप विराजमान रहोगे। तुम मेरे सदृश बलशाली एवं महान् योगबलसे सम्पन्न होओगे॥ २६—२८॥

मुझसे ऐसा कहकर गणोंसहित महातेजस्वी वृषध्वज भगवान् महादेवने कुशेशयमयी अर्थात् शतदलकमलसे निर्मित अपनी माला उतारकर मेरे कण्ठमें बाँध दी। कण्ठमें बँधी हुई उस सुन्दर मालासे मैं तीन नेत्रोंवाले तथा दस भुजाओंवाले दूसरे शंकरके समान हो गया॥ २९—३०½॥

तत्पश्चात् परमेश्वरने मुझको हाथसे पकड़कर कहा—बोलो, मैं तुम्हें कौन-सा उत्तम वर प्रदान करूँ? तब उन वृषध्वजने अपनी जटामें समाहित अति निर्मल

उक्त्वा नदी भवस्वेति उत्ससर्ज वृषध्वजः।
ततः सा दिव्यतोया च पूर्णासितजला शुभा॥ ३३

पद्मोत्पलवनोपेता प्रावर्तत महानदी।
तामाह च महादेवो नदीं परमशोभनाम्॥ ३४

यस्माज्जटोदकादेव प्रवृत्ता त्वं महानदी।
तस्माज्जटोदका पुण्या भविष्यसि सरिद्वरा॥ ३५

त्वयि स्नात्वा नरः कश्चित्सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ततो देव्या महादेवः शिलादतनयं प्रभुः॥ ३६

पुत्रस्तेऽयमिति प्रोच्य पादयोः संन्यपातयत्।
सा मामाघ्राय शिरसि पाणिभ्यां परिमार्जती॥ ३७

पुत्रप्रेम्णाभ्यषिञ्चच्च स्रोतोभिस्तनयैस्त्रिभिः।
पयसा शङ्खगौरेण देवदेवं निरीक्ष्य सा॥ ३८

तानि स्रोतांसि त्रीण्यस्याः स्रोतस्विन्योऽभवंस्तदा।
नदीं त्रिस्रोतसं देवो भगवानवदद्भवः॥ ३९

त्रिस्रोतसं नदीं दृष्ट्वा वृषः परमहर्षितः।
ननाद नादात्तस्माच्च सरिदन्या ततोऽभवत्॥ ४०

वृषध्वनिरिति ख्याता देवदेवेन सा नदी।
जाम्बूनदमयं चित्रं सर्वरत्नमयं शुभम्॥ ४१

स्वं देवश्चाद्भुतं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा।
मुकुटं चाबबन्धेशो मम मूर्ध्नि वृषध्वजः॥ ४२

कुण्डले च शुभे दिव्ये वज्रवैडूर्यभूषिते।
आबबन्ध महादेवः स्वयमेव महेश्वरः॥ ४३

मां तथाभ्यर्चितं व्योम्नि दृष्ट्वा मेघैः प्रभाकरः।
मेघाम्भसा चाभ्यषिञ्चच्छिलादनमथो मुने॥ ४४

तस्याभिषिक्तस्य तदा प्रवृत्ता स्रोतसा भृशम्।
यस्मात्सुवर्णान्निःसृत्य नद्येषा सम्प्रवर्तते॥ ४५

स्वर्णोदकेति तामाह देवदेवस्त्रियम्बकः।
जाम्बूनदमयाद्यस्माद् द्वितीया मुकुटाच्छुभा॥ ४६

जलको [हाथमें] लेकर कहा—नदी हो जाओ—ऐसा कहकर उन्होंने जलको छोड़ दिया। तब दिव्य जलवाली, श्याम जलसे परिपूर्ण, कमल तथा उत्पलके वनोंसे युक्त शुभ महानदी बन गयी॥ ३१—३३½॥

तदनन्तर महादेवने उस परम सुन्दर नदीसे कहा—चूँकि तुम जटाके जलसे महानदीके रूपमें निकली हो, अतः तुम्हारा नाम जटोदका होगा। तुम पवित्र तथा नदियोंमें श्रेष्ठ होओगी। कोई भी मनुष्य तुम्हारे जलमें स्नान करके सभी पापोंसे मुक्त हो जायगा॥ ३४-३५½॥

तत्पश्चात् प्रभु महादेवने 'यह तुम्हारा पुत्र है'—ऐसा कहकर मुझ शिलादतनयको देवी पार्वतीके चरणोंमें डाल दिया। तब उन्होंने मेरा सिर सूँघकर दोनों हाथोंसे मुझे [स्नेहपूर्वक] सहलाते हुए पुनः देवदेव शंकरकी ओर देखकर पुत्रप्रेममें तीन पुत्ररूप स्रोतोंके द्वारा शंखके समान श्वेतवर्णवाले जलरूप अश्रुबिन्दुओंसे मुझे अभिसिंचित कर दिया। इनके वे ही तीनों स्रोत तीन नदियाँ बन गयीं। भगवान् भव महादेवने इसे त्रिस्रोतस् (तीन धाराओंवाली) नदीकी संज्ञा प्रदान की॥ ३६—३९॥

उस त्रिस्रोतस् नदीको देखकर वृषने अत्यन्त प्रसन्न होकर नाद किया, तब उस ध्वनिसे एक दूसरी नदी आविर्भूत हो गयी। देवदेव शंकरने उस नदीका नाम वृषध्वनि रखा॥ ४०½॥

इसके बाद भगवान् वृषध्वजने विश्वकर्माके द्वारा निर्मित, स्वर्णमय, सभी रत्नोंसे जटित, अलौकिक, शुभ, अद्भुत तथा दिव्य अपने मुकुटको मेरे सिरपर बाँध दिया। उन महेश्वर महादेवने हीरे तथा वैदूर्यमणिसे मण्डित दो शुभ तथा दिव्य कुण्डल [मेरे कानोंमें] स्वयं पहना दिये॥ ४१—४३॥

हे मुने! मुझको इस प्रकार पूजित देखकर सूर्यने आकाशमें मेघोंके जलसे मुझ नन्दीका अभिसेचन किया। तब उस अभिषेकके जलसे सोनेकी नदी बन गयी। उस स्वर्णजलसे निकलकर यह नदी बनी, इसलिये देवोंके देव त्रियम्बक शिवने उसे स्वर्णोदका (स्वर्ण जलवाली) कहा। उसी प्रकार सोनेके मुकुटसे

प्रावर्तत नदी पुण्या ऊचुर्जाम्बूनदीति ताम्।
एतत्पञ्चनदं नाम जप्येश्वरसमीपगम्॥ ४७

यः पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्येश्वरेश्वरम्।
पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशयः॥ ४८

दूसरी पवित्र तथा शुभ नदी उत्पन्न हुई, अतः उसे जाम्बूनदी कहा जाता है। इस प्रकार ये पाँच नदियाँ भगवान् जप्येश्वरके समीप जानेवाली हैं। जो पंचनदपर पहुँचकर इसमें स्नान करके भगवान् जप्येश्वरेश्वरकी पूजा करता है, वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४४—४८॥

अथ देवो महादेवः सर्वभूतपतिर्भवः।
देवीमुवाच शर्वाणीमुमां गिरिसुतामजाम्॥ ४९

देवि नन्दीश्वरं देवमभिषिञ्चामि भूतपम्।
गणेन्द्रं व्याहरिष्यामि किं वा त्वं मन्यसेऽव्यये॥ ५०

इसके बाद सभी भूतोंके स्वामी भगवान् महादेवने हिमालयपुत्री, अजन्मा, शर्वाणी, उमा देवीसे कहा—हे देवि! मैं भूतोंके स्वामी देव नन्दीश्वरका अभिषेचन करता हूँ और उन्हें गणेन्द्र नामवाला कहूँगा, हे अव्यये! [इस विषयमें] तुम क्या सोचती हो?॥ ४९-५०॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भवानी हर्षिताननाः।
स्मयन्ती वरदं प्राह भवं भूतपतिं पतिम्॥ ५१

सर्वलोकाधिपत्यं च गणेशत्वं तथैव च।
दातुमर्हसि देवेश शैलादिस्तनयो मम॥ ५२

उनका यह वचन सुनकर हर्षयुक्त मुखवाली भवानीने वर प्रदान करनेवाले तथा भूतोंके स्वामी अपने पति शिवसे मुसकराते हुए इस प्रकार कहा—हे देवेश! शैलादि मेरा पुत्र है, अतः आप इसे सभी लोकोंका स्वामित्व और गणेशत्व प्रदान करनेकी कृपा कीजिये॥ ५१-५२॥

ततः स भगवान् शर्वः सर्वलोकेश्वरेश्वरः।
सस्मार गणपान् दिव्यान् देवदेवो वृषध्वजः॥ ५३

तत्पश्चात् सभी लोकेश्वरोंके भी ईश्वर, देवोंके देव, शर्व, भगवान् वृषध्वजने अपने दिव्य गणेश्वरोंका स्मरण किया॥ ५३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नन्दिकेश्वरप्रादुर्भावनन्दिकेश्वराभिषेकमन्त्रो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'नन्दिकेश्वरप्रादुर्भाव तथा नन्दिकेश्वराभिषेकमन्त्र' नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवद्वारा नन्दिकेश्वरको गणोंके अधिपतिके रूपमें प्रतिष्ठित करना एवं सभी देवोंके द्वारा नन्दिकेश्वरका अभिषेक तथा शिवनाममन्त्रकी महिमा

शैलादिरुवाच

स्मरणादेव रुद्रस्य सम्प्राप्ताश्च गणेश्वराः।
सर्वे सहस्रहस्ताश्च सहस्रायुधपाणयः॥ १

त्रिनेत्राश्च महात्मानस्त्रिदशैरपि वन्दिताः।
कोटिकालाग्निसङ्काशा जटामुकुटधारिणः॥ २

दंष्ट्राकरालवदना नित्या बुद्धाश्च निर्मलाः।
कोटिकोटिगणैस्तुल्यैरात्मना च गणेश्वराः।
असंख्याता महात्मानस्तत्राजग्मुर्मुदा युताः॥ ३

शैलादि बोले—रुद्रके स्मरण करते ही गणेश्वर लोग उपस्थित हो गये। उन सभीकी हजार-हजार भुजाएँ थीं, उन्होंने हाथोंमें हजार अस्त्र धारण कर रखे थे, उनके तीन नेत्र थे, वे महान् गण देवताओंसे वन्दित हो रहे थे, वे करोड़ों कालाग्निके समान थे, वे जटामुकुट धारण किये हुए थे, दाढ़ोंके कारण वे विकराल मुखवाले थे, वे शाश्वत, शुद्ध तथा प्रबुद्ध थे, वे अपने ही समान करोड़ों-करोड़ों अनुचरोंसे युक्त थे—ऐसे असंख्य महात्मा गणेश्वर प्रसन्नताके साथ वहाँ आये॥ १—३॥

गायन्तश्च द्रवन्तश्च नृत्यन्तश्च महाबलाः।
मुखाडम्बरवाद्यानि वादयन्तस्तथैव च॥ ४
रथैर्नागैर्हयैश्चैव सिंहमर्कटवाहनाः।
विमानेषु तथारूढा हेमचित्रेषु वै गणाः॥ ५

वे महान् बलसे सम्पन्न गण गाते, दौड़ते, भागते, नाचते तथा अनेक मुखवाद्योंको बजाते हुए आये। वे रथों, हाथियों, घोड़ों, सिंहों और बन्दरोंपर सवार थे। कुछ गण स्वर्णचित्रित विमानोंपर भी आरूढ़ थे॥ ४-५॥

भेरीमृदङ्गकाद्यैश्च पणवानकगोमुखैः।
वादित्रैर्विविधैश्चान्यैः पटहैरेकपुष्करैः॥ ६
भेरीमुरजसंनादैराडम्बरकडिण्डिमैः।
मर्दलैर्वेणुवीणाभिर्विविधैस्तालनिःस्वनैः॥ ७
दर्दुरैस्तलघातैश्च कच्छपैः पणवैरपि।
वाद्यमानैर्महायोगा आजग्मुर्देवसंसदम्॥ ८

महायोगसे सम्पन्न वे गणेश्वर भेरी, मृदंग, पणव, आनक, गोमुख, पटह, एकपुष्कर, मुरज, आडम्बर, डिण्डिम, मर्दल, वेणु, वीणा, दर्दुर, तलघात, कच्छप, पणव एवं अन्य प्रकारके वाद्योंको बजाते हुए तथा विविध तालध्वनियाँ करते हुए भगवान् शिवकी सभामें आये॥ ६—८॥

ते गणेशा महासत्त्वाः सर्वदेवेश्वरेश्वराः।
प्रणम्य देवं देवीं च इदं वचनमब्रुवन्॥ ९
भगवन् देवदेवेश त्रियम्बक वृषध्वज।
किमर्थं च स्मृता देव आज्ञापय महाद्युते॥ १०

महान् शक्तिसे युक्त तथा सभी देवेश्वरोंके ईश्वर उन गणेश्वरोंने महादेव एवं पार्वतीको प्रणाम करके यह वचन कहा—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे त्रियम्बक! हे वृषध्वज! आपने हमलोगोंका स्मरण किसलिये किया है? हे देव! हे महाद्युते! आदेश दीजिये॥ ९-१०॥

किं सागरान् शोषयामो यमं वा सह किङ्करैः।
हन्मो मृत्युसुतां मृत्युं पशुवद्धन्म पद्मजम्॥ ११
बद्ध्वेन्द्रं सह देवैश्च सह विष्णुं च वायुना।
आनयामः सुसङ्क्रुद्धा दैत्यान् वा सह दानवैः॥ १२
कस्याद्य व्यसनं घोरं करिष्यामस्तवाज्ञया।
कस्य वाद्योत्सवो देव सर्वकामसमृद्धये॥ १३

क्या हमलोग समुद्रोंको सोख लें? क्या यमको उनके सेवकोंसहित मार डालें अथवा मृत्युपुत्री (जरा) तथा मृत्युको मार डालें अथवा पद्मयोनि ब्रह्माका पशुकी भाँति वध कर दें। क्या अत्यन्त कुपित होकर हमलोग देवताओंसहित इन्द्रको, वायुसहित विष्णुको अथवा दानवोंसहित दैत्योंको बाँधकर यहाँ ले आयें? हमलोग आपकी आज्ञासे आज किसका घोर अनर्थ कर डालें? हे देव! सभी कामनाओंकी समृद्धिके लिये आज किसका उत्सव है?॥ ११—१३॥

तांस्तथावादिनः सर्वान् गणेशान् सर्वसम्मतान्।
उवाच देवः सम्पूज्य कोटिकोटिशतान् प्रभुः॥ १४
शृणुध्वं यत्कृते यूयमिहाहूता जगद्धिताः।
श्रुत्वा च प्रयतात्मानः कुरुध्वं तदशङ्किताः॥ १५
नन्दीश्वरोऽयं पुत्रो नः सर्वेषामीश्वरेश्वरः।
विप्रोऽयं नायकश्चैव सेनानीर्वः समृद्धिमान्॥ १६
तमिमं मम सन्देशाद्यूयं सर्वेऽपि सम्मताः।
सेनान्यमभिषिञ्चध्वं महायोगपतिं पतिम्॥ १७

भगवान् शंकरने वैसा कहनेवाले उन करोड़ों-करोड़ों सभी सर्वपूज्य गणेश्वरोंका सम्मान करके उनसे कहा—हे जगत्के हितकारको! सुनिये, जिसलिये मैंने तुमलोगोंको यहाँ बुलाया है, उसे सुन करके हे शुद्धात्माओ [गणेश्वरो]! निःशंक होकर कीजिये। यह नन्दी हमारा पुत्र है। यह सभीका ईश्वर है। यह समृद्धिशाली विप्र तुमलोगोंका नायक तथा सेनानी है। अतः मेरे आदेशसे तुम सभी लोग अपना स्वामी एवं सेनानी मानकर इस महायोगपतिका अभिषेक करो॥ १४—१७॥

एवमुक्ता भगवता गणपाः सर्व एव ते।
एवमस्त्विति सम्मन्त्र्य सम्भारानाहरंस्ततः॥ १८

भगवान् शिवके इस प्रकार कहनेपर वे सभी

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

तस्य सर्वाश्रयं दिव्यं जाम्बूनदमयं शुभम्।
आसनं मेरुसङ्काशं मनोहरमुपाहरन्॥ १९

नैकस्तम्भमयं चापि चामीकरवरप्रभम्।
मुक्तादामावलम्बं च मणिरत्नावभासितम्॥ २०

स्तम्भैश्च वैडूर्यमयैः किङ्किणीजालसंवृतम्।
चारुरत्नकसंयुक्तं मण्डपं विश्वतोमुखम्॥ २१

कृत्वा विन्यस्य तन्मध्ये तदासनवरं शुभम्।
तस्याग्रतः पादपीठं नीलवज्रावभासितम्॥ २२

चक्रुः पादप्रतिष्ठार्थं कलशौ चास्य पार्श्वगौ।
सम्पूर्णौ परमाम्भोभिररविन्दावृताननौ॥ २३

कलशानां सहस्रं तु सौवर्णं राजतं तथा।
ताम्रजं मृण्मयं चैव सर्वतीर्थाम्बुपूरितम्॥ २४

वासोयुगं तथा दिव्यं गन्धं दिव्यं तथैव च।
केयूरे कुण्डले चैव मुकुटं हारमेव च॥ २५

छत्रं शतशलाकं च बालव्यजनमेव च।
दत्तं महात्मना तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥ २६

शङ्खहाराङ्गगौरेण पृष्ठेनापि विराजितम्।
व्यजनं चन्द्रशुभ्रं च हेमदण्डं सुचामरम्॥ २७

ऐरावतः सुप्रतीको गजावेतौ सुपूजितौ।
मुकुटं काञ्चनं चैव निर्मितं विश्वकर्मणा॥ २८

कुण्डले चामले दिव्ये वज्रं चैव वरायुधम्।
जाम्बूनदमयं सूत्रं केयूरद्वयमेव च॥ २९

सम्भाराणि तथान्यानि विविधानि बहून्यपि।
समन्तान्निन्युरव्यग्रा गणपा देवसम्मताः॥ ३०

ततो देवाश्च सेन्द्राश्च नारायणमुखास्तथा।
मुनयो भगवान् ब्रह्मा नवब्रह्माण एव च॥ ३१

देवैश्च लोकाः सर्वे ते ततो जग्मुर्मुदा युताः।
तेष्वागतेषु सर्वेषु भगवान् परमेश्वरः॥ ३२

गणेश्वर 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर आपसमें परामर्श करके सामग्रियाँ एकत्र करने लगे॥ १८॥

वे स्वर्णनिर्मित, दिव्य, सुन्दर, मेरुसदृश तथा मनोहर सिंहासन ले आये। उन्होंने अनेक स्तम्भोंवाले, उत्तम स्वर्णकी प्रभासे युक्त, लटकती हुई मोतियोंकी झालरोंसे सुशोभित, मणियों एवं रत्नोंसे जटित, वैदूर्यमणिके स्तम्भोंवाले, किंकिणियोंसे सुशोभित, सुन्दर रत्नोंसे समन्वित तथा सभी ओर मुखवाले एक मण्डपका निर्माण करके उसके मध्यमें उस सुन्दर आसनको स्थापितकर पादप्रतिष्ठाके लिये उसके आगे नीलवज्रसे जटित एक पादपीठ रखा। उसके दोनों ओर उन्होंने दो कलश रखे, जो सुगन्धित जलसे भरे हुए थे तथा उनके मुख कमलपुष्पोंसे ढँके हुए थे। सोने, चाँदी, ताँबे और मिट्टीके हजारों कलश वहाँ रखे थे, जो सभी तीर्थोंके जलसे परिपूर्ण थे॥ १९—२४॥

महात्मा परमेष्ठी ब्रह्माने दिव्य वस्त्रयुगल, दिव्य गन्ध, केयूर, कुण्डल, मुकुट, हार, सौ शलाकाओं (तीलियों)-वाला छत्र और एक बालव्यजन प्रदान किया॥ २५-२६॥

शंख तथा मोतियोंकी मालाके समान गौरवर्णवाले दण्डसे सुशोभित और चन्द्रमाके समान शुभ्र व्यजन, स्वर्णका दण्ड (मूठ) लगा हुआ चामर, भलीभाँति पूजित ऐरावत तथा सुप्रतीक—ये दो हाथी, विश्वकर्माके द्वारा बनाया हुआ एक सोनेका मुकुट, दो स्वच्छ तथा दिव्य कुण्डल, श्रेष्ठ आयुध वज्र, सोनेका सूत्र तथा दो केयूर वहाँ रखे गये। देवताओंके द्वारा पूजित उन गणेश्वरोंने चारों ओर अनेक प्रकारकी अन्य आवश्यक सामग्रियोंको सावधान होकर वहाँ उपस्थित कर दिया॥ २७—३०॥

तदनन्तर इन्द्रसहित विष्णु आदि देवता, मुनिगण, भगवान् ब्रह्मा, नवब्रह्माण*, देवताओंसहित सभी लोकपाल प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये। उन सभीके वहाँ आ जानेपर भगवान् परमेश्वरने समस्त संस्कारविधि सम्पन्न करानेके

* मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि तथा वसिष्ठ—ये नौ ऋषि ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न होनेके कारण तथा ब्रह्मवादी और ब्रह्मात्मक होनेसे 'नवब्रह्माण' कहलाते हैं। (लिङ्गपु० पू० ७०। १८१—१८३)

सर्वकार्यविधिं कर्तुमादिदेश पितामहम्।
पितामहोऽपि भगवान् नियोगादेव तस्य तु॥ ३३

चकार सर्वं भगवानभिषेकं समाहितः।
अर्चयित्वा ततो ब्रह्मा स्वयमेवाभ्यषेचयत्॥ ३४

ततो विष्णुस्ततः शक्रो लोकपालास्तथैव च।
अभ्यषिञ्चन्त विधिवद् गणेन्द्रं शिवशासनात्॥ ३५

ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव पितामहपुरोगमाः।
स्तुतवत्सु ततस्तेषु विष्णुः सर्वजगत्पतिः॥ ३६

शिरस्यञ्जलिमादाय तुष्टाव च समाहितः।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा जयशब्दं चकार च॥ ३७

ततो गणाधिपाः सर्वे ततो देवास्ततोऽसुराः।
एवं स्तुतश्चाभिषिक्तो देवैः सब्रह्मकैस्तदा॥ ३८

उद्वाहश्च कृतस्तत्र नियोगात्परमेष्ठिनः।
मरुतां च सुता देवी सुयशाख्या बभूव या॥ ३९

लब्धं शशिप्रभं छत्रं तया तत्र विभूषितम्।
चामरे चामरासक्तहस्ताग्रैः स्त्रीगणैर्युता॥ ४०

सिंहासनं च परमं तया चाधिष्ठितं मया।
अलङ्कृता महालक्ष्म्या मुकुटाद्यैः सुभूषणैः॥ ४१

लब्धो हारश्च परमो देव्याः कण्ठगतस्तथा।
वृषेन्द्रश्च सितो नागः सिंहः सिंहध्वजस्तथा॥ ४२

रथश्च हेमच्छत्रं च चन्द्रबिम्बसमप्रभम्।
अद्यापि सदृशः कश्चिन्मया नास्ति विभुः क्वचित्॥ ४३

सान्वयं च गृहीत्वेशस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः।
आरुह्य वृषमीशानो मया देव्या गतः शिवः॥ ४४

तदा देवीं भवं दृष्ट्वा मया च प्रार्थयन् गणैः।
मुनिदेवर्षयः सिद्धा आज्ञां पाशुपतीं द्विजाः॥ ४५

अथाज्ञां प्रददौ तेषामर्हाणामाज्ञया विभोः।
नन्दिको नगजाभर्तुस्तेषां पाशुपतीं शुभाम्॥ ४६

लिये पितामह ब्रह्माको आदेश दिया॥ ३१-३२½॥

तब उनका आदेश पाते ही भगवान् ब्रह्माने भी ध्यानपूर्वक सम्पूर्ण अभिषेक-कर्म सम्पन्न कराया। तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने पूजन करके स्वयं उनका अभिषेक किया। इसके बाद शिवके आदेशसे विष्णुने, फिर इन्द्रने और लोकपालोंने गणेन्द्रका विधिपूर्वक अभिषेक किया॥ ३३—३५॥

तदनन्तर ऋषियों तथा पितामह आदिने उनकी स्तुति की। तब उन सभीके स्तुति कर लेनेपर समस्त जगत्के स्वामी विष्णुने सिरपर अंजलि बाँधकर एकाग्र-चित्त होकर उनकी स्तुति की और हाथ जोड़े हुए झुककर जय-जयकार किया। तत्पश्चात् सभी गणेश्वरों, देवताओं और असुरोंने भी क्रमसे सम्पूर्ण कृत्य किया॥ ३६-३७½॥

इस प्रकार ब्रह्मासहित सभी देवताओंके द्वारा उनका अभिषेक तथा स्तवन हो जानेके बाद परमेष्ठीकी आज्ञासे उन्होंने विवाह किया। सुयशा नामक जो मरुतोंकी पुत्री थी, वह उनकी भार्या हुई। उस सुयशाको चन्द्रमाके समान प्रभायुक्त और विशेष शोभासम्पन्न एक छत्र भेंट किया गया। हाथोंमें चामर लिये हुए स्त्रियोंसे युक्त उस सुयशाको दो चामर भी प्रदान किये गये। मेरे साथ उसने भी एक अत्यन्त सुन्दर सिंहासन ग्रहण किया। भगवती महालक्ष्मीने मुकुट आदि सुन्दर आभूषणोंसे उसे अलंकृत किया॥ ३८—४१॥

उसे देवीके गलेका अति सुन्दर हार भी प्राप्त हुआ। वृषेन्द्र, श्वेत हाथी, सिंह, सिंहध्वज, रथ और चन्द्रमण्डलके समान प्रभावाला स्वर्णछत्र भी भेंट किया गया। अब मेरे समान कहीं भी कोई प्रभु नहीं था॥ ४२-४३॥

मुझको परिवारसहित लेकर सम्बन्धियों तथा बान्धवोंको भी साथ लेकर देवीके साथ भगवान् महेश्वर वृषभपर आरूढ़ हो चल पड़े॥ ४४॥

तब मेरे तथा गणोंके साथ शिव एवं पार्वतीको देखकर मुनियों, देवर्षियों, सिद्धों और द्विजोंने शिवकी आज्ञाहेतु प्रार्थना की॥ ४५॥

तत्पश्चात् हिमालयकी पुत्रीके पति प्रभु शिवकी

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

तस्माद्धि मुनयो लब्ध्वा तदाज्ञां मुनिपुङ्गवात्।
भवभक्तास्तदा चासंस्तस्मादेवं समर्चयेत्॥ ४७

आज्ञासे नन्दीने उन पूजनीय लोगोंके लिये शुभ पाशुपत आज्ञा प्रदान की॥ ४६॥

तब मुनिश्रेष्ठ (नन्दी)-से उन शिवकी आज्ञा (दीक्षा) पाकर वे मुनिलोग शिवभक्त हो गये। अतः सभीको शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ४७॥

नमस्कारविहीनस्तु नाम उद्गिरयेद्भवे।
ब्रह्मघ्नदशसंतुल्यं तस्य पापं गरीयसम्॥ ४८

तस्मात्सर्वप्रकारेण नमस्कारादिमुच्चरेत्।
आदौ कुर्यान्नमस्कारं तदन्ते शिवतां व्रजेत्॥ ४९

यदि कोई मनुष्य बिना नमस्कारके ही शिवके नामका उच्चारण करता है, तो उसे दस ब्रह्महत्याके समान घोर पाप लगता है। अतः सब प्रकारसे नामके आदिमें नमस्कार (नमः)-का उच्चारण करना चाहिये। आदिमें नमः अवश्य लगाना चाहिये, ऐसा करनेवाला शिवत्वको प्राप्त होता है*॥ ४८-४९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नन्दिकेश्वराभिषेको नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'नन्दिकेश्वराभिषेक' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

भगवान् रुद्रके विराट् स्वरूप तथा सात पाताललोकोंका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सुव्यक्तमखिलं कथितं शङ्करस्य तु।
सर्वात्मभावं रुद्रस्य स्वरूपं वक्तुमर्हसि॥ १

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने शंकरजीके विषयमें सब कुछ स्पष्ट रूपसे कह दिया, अब आप रुद्रके सर्वात्मभाव तथा स्वरूपको बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनः साक्षात्तपस्तथा।
सत्यलोकश्च पातालं नरकार्णवकोटयः॥ २

तारकाग्रहसोमार्का ध्रुवः सप्तर्षयस्तथा।
वैमानिकास्तथान्ये च तिष्ठन्त्यस्य प्रसादतः॥ ३

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य—ये लोक, पाताल, करोड़ों नरक-सागर, तारागण, ग्रहगण, चन्द्र, सूर्य, ध्रुव, सप्तर्षिगण, वैमानिक देवतागण तथा अन्य सभी उन्हीं शिवकी कृपासे प्रतिष्ठित हैं॥ २-३॥

अनेन निर्मितास्त्वेवं तदात्मानो द्विजर्षभाः।
समष्टिरूपः सर्वात्मा संस्थितः सर्वदा शिवः॥ ४

इन्हींके द्वारा ये सब बनाये गये हैं। हे श्रेष्ठ द्विजो! ये सब उन्हींके आत्मस्वरूप हैं। वे सर्वात्मा शिव सभीमें सर्वदा समष्टिरूपसे स्थित हैं॥ ४॥

सर्वात्मानं महात्मानं महादेवं महेश्वरम्।
न विजानन्ति सम्मूढा मायया तस्य मोहिताः॥ ५

तस्य देवस्य रुद्रस्य शरीरं वै जगत्त्रयम्।
तस्मात्प्रणम्य तं वक्ष्ये जगतां निर्णयं शुभम्॥ ६

उन्हींकी मायासे मोहित होकर अज्ञानी लोग सर्वात्मरूप, महात्मा, महादेव तथा महेश्वरको नहीं जानते हैं। उन भगवान् रुद्रका शरीर ही तीनों लोक है, अतः उन्हें प्रणाम करके मैं जगत्के शुभ विस्तारका वर्णन करूँगा॥ ५-६॥

* शिवमन्त्रकी दीक्षा प्राप्तकर विधिपूर्वक जप करनेके लिये यह वचन है। नामजपकी महिमाके अनुसार श्रद्धापूर्वक नामजप भी किया जा सकता है।